भूमिका ।

प्रिय पाठक गण,

मुझे अत्यन्त हर्ष है कि मैं आपके सन्मुख अत्यन्त परिश्रमके पश्चात ये पुस्तक रखने में सफल हुआ हूं। मैंने इसमें जो भी रचा है वो सब श्री १०८ श्री रविषेण आचार्य प्रणीत श्री पद्मपुराणजी के आधार पर, यद्यपि यह ग्रन्थ बहुत बड़ा और विस्तार पूर्वक है किन्तु फिर भी आज कल की आवश्यक्ता के अनुसार ही उसमें से चुन चुनकर लोगों के हृदय से असत्यता को दूर करने और सत्य वृतांत का प्रकाश करने के लिये अत्यन्त संक्षेप से रचना की है। इसमें और तो सब बातों पर उन्हीं पर प्रकाश डाला गया है जो आज कल प्रचलित हैं। विशेष बातें केवल इतनी ही दिखाई गई हैं जो कि प्रचलित नहीं हैं किंतु उनकी आवश्यक्ता थी, जैसे रावण का जन्म उसका राज्य तथा कैलाश पर्वत को उठाना यज्ञों की उत्पत्ती कब और किस प्रकार हुई, हनुमान का जन्म और रावण से उसका क्या सम्बन्ध था, जनक की राजधानी पर म्लेच्छों का उत्तर की ओर से हमला, लव कुश का जन्म सीता की अग्नि परिक्षा।

इसमें पांचों भागों में पांच नकल रखी गई हैं सो वो भी सुधार की दृष्टी से हैं किसी द्वेष वश नहीं हैं। फिर भी यदि इस पुस्तक में की कोई बात चुभने वाली हो तो क्षमा करें।

प्रार्थी:—विमल

समर्पण

श्रीमान् माननीय फूपाजी, (ला० मुर्शीधरजी सर्राफ किरतपुर बिजनौर) आपने मेरे प्रति जो जो उपकार किये हैं मेरे लिये भांति भांति के कष्ट सहे हैं तथा ज्ञान की प्राप्ती कराई है जिससे मैं आज इस अवस्था में आ सका हूं। उसका मैं अत्यन्त आभारी हूं और ऋणी हूं। यदि मैं उस ऋण से छूटना चाहूं तो जन्म जमान्तर में भी नहीं छूट सकता। किन्तु मुझे आपने इस प्रकार उन्नत बनाया, उसके फल स्वरूप मैं अपनी तुच्छ बुद्धी की इस कृति को आपके कर कमलों में समर्पण करता हूं। आशा है आप इसे हृदय से अपनायेंगे।

आपके उपकारों के भार से नम्रीभूतः—
'विमल'

साथ ही साथ मैं (श्री प्रद्युम्न कुमारजी रईस सहारनपुर पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस, सेठ मदन-मोहनजी जैन उज्जैन तथा श्री रा० ब० द्वारकाप्रसादजी नहरौर) इन सज्जनों के उपकार का आभारी हूं। आप सज्जनों ने मुझे ज्ञान प्राप्त करने में जिस प्रकार समय समय पर सहयोग दिया है, उसे मैं अपने सारे जीवन में नहीं भूल सकता। मैं आशा करता हूं आप सज्जन वृन्द अपने इस बालक की टूटी फूटी भाषा को पढ़कर हर्ष मनायेंगे

धन्यवाद

सब से प्रथम धन्यवाद तो उस देवाधिदेव वीतराग भगवान को है जिसका स्मरण करके प्रारंभ करने से संपूर्णता को प्राप्त हुई ।

द्वितिय धन्यवाद पूज्य पिताजी (बा० खुन्नामलजी रिटायर्ड गुड्स क्लर्क) को है । जिनकी छत्र छाया में मैंने यह पुस्तक लिखी और प्रकाशित की ।

तृतीय धन्यवाद श्री डा० गुलाबचन्दजी पाटनी को है जिन्होंने मुझे इस पुस्तक के लिखते समय उत्साहित किया और जो सदा मुझे उन्नत मार्ग पर लगाने के इच्छुक रहते हैं ।

चतुर्थ धन्यवाद बा० बिरधीचन्द्रजी रारा (जिन्होंने गानोंका संशोधन किया) तथा पं० बनारसीदासजी प्रतिष्ठाचार्य को है । आप सज्जनोंने अपना अमूल्य समय देकर यह देखा कि कहीं धर्म विरुद्ध बात तो नहीं आई है ।

इसमें दूसरे और पांचवें भाग में श्रीमान ज्योतिप्रसादजी की कर्ता खण्डन लावनी और द्यानतरायजी का सीता का भजन ये दो चीजें रखी गई हैं इसके लिये उक्त सज्जनों को धन्यवाद है ।

संशोधन में जो अशुद्धियां रह गई हैं उनके लिये मुझे दुख है, पाठक गण मुझे उसके लिये क्षमा कर और शुद्ध करलें ।

प्रार्थना-माला,

कर्मारी, कर्मारी, भगवन तू है कर्मारी।
कर्मों से दुनिया हारी, हैं नेकों देही धारीं॥
फिरती आतम है मारी, कर रखी मोक्ष से न्यारी।
तुम तो हो आत्मधिकारी॥
कर्मारी, कर्मारी, भगवन तू है कर्मारी।
कर्मों की सेना मारी, बनकर तुम केवल धारी॥
हो प्रभु जगके हितकारी, तुम परणी मुक्ती नारी।
होगये मोक्ष अधिकारी॥
कर्मारी, कर्मारी, भगवन तू है कर्मारी॥

भाग प्रथम

अँक प्रथम—दृश्य प्रथम

(एक साधू जटाधारी, त्रिशूलधारी, मृग की खाल पहने माला लिये आते हैं। गाते हुवे)

एक ढोंगी साधु—जय श्री राम राम राम।

कौशल्या सुत सीताराम॥

धनुष तोड़ सीता को ब्याही।

केकई ने फिर बन भिजवायी॥

पूरो भक्तों के सब काम।

जय श्री राम राम राम॥

(राम नाम की माला जपने लगता है। इतने ही में एक जैन ब्रह्मचारी आते हैं।)

ब्र०—मिथ्यात है फैला हुआ, संसार में चहूं ओर ही।

निज पूर्वजों के नाम पर, अन्याय करते घोर ही॥

है झूंठ दिन २ बढ़ रहा, और ह्रास होता सत्यका।

अपमान होता धर्म का, उसके अनोखे तत्थ का॥

साधू—जय सीताराम, कहो बाबा कहां जा रहे हो और कहां से आ रहे हो।

ब्र०—मैं ससार के नरकादि अनेक दुःखों में फँसा हुआ था। वहां से किसी प्रकार छूटकर भागा चला आरहा हूँ। वह सब मेरे पीछे कालकी तरह लगे हुवे हैं। मैं बडी कठिनता से ब्रह्मचर्य की सातवीं सीढी पर चढ पाया हूँ। अभी मुझे चार सीढियां और चढनी हैं। फिर मैं मोक्ष के मार्ग पर लग जाऊँगा तो निर्भय होकर गमन करूँगा।

साधू—अरे बावले! तुम कोई पागल तो नहीं हो। क्या सीढियां २ चिल्ला रहे हो। यदि उन पर चढते हुवे गिर गये तो याद रखना सीधे पाताल लोक को ही चले जाओगे।

ब्र०—यही तो मुझे भी डर है कि यदि गिर गया अर्थात इन प्रतिमाओं से च्युत हो गया तो मेरे लिये सीधा नरक का द्वार खुला हुआ है।

साधू—अरे बाबा! तुमतो बडे गहरे चलते हो। अब मैं तुम्हारा मतलब समझ गया तुम संसार छोड कर मुक्ति चाहते हो।

ब्र०—हां मैं मुक्ति चाहता हूं। क्या तुम मुझे उस पर पहुँचा सकते हो?

साधू—क्यों नहीं राम चरित्र जपो, उसमें लौ लगाओ फिर मर कर मुक्ती जाओ।

ब्र०—कृपा करके यह और बताओ कि उनकी कौनसी अवस्था को मनन करूँ।

साधू—कौनसी अवस्था क्या जब से उनका जन्म हुआ और जब तक वापिस बन से राज गद्दी पर बैठे तब तक की चाहे जौनसी भी अवस्था को जपो वही तुम्हारे लिये मुक्ति की कारण होगी।

अ०—मैं त्यागी हूँ। बालावस्था बालकों के लिये खेल कूद में विद्या प्राप्त करने में उपयोगी है उससे मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं सधता। युवावस्था युवा पुरुषों के लिये उनको अपनी नारी से प्रेम करने भाई से प्रेम करने माता पिता की आज्ञा पालने, नीती का प्रयोग करने आदि में सहायक है उससे भी मेरा प्रयोजन नहीं सधता। क्योंकि मैं इन दोनों को छोड कर अब तीसरी अवस्था में गमन कर रहा हूँ।

साधू—यह तो बड़ा विचित्र आदमी है, क्या हम बिल्कुल पागल ही हैं जो उनका नाम जपते हैं।

अ०—नहीं, पागल नहीं अज्ञानी हो, तुम्हें सच और झूँठ की परख नहीं है। तुम्हारा विश्वास असम्भव बातों में बहुत जल्दी जम जाता है। बुरे आदमी को भला कहते और भले को बुरा कहते तुम्हें सँकोच नहीं आता।

साधू—हमने सारी रामायण पढ़ डाली। तो भी तुम हमें अज्ञानी बताते हो।

अ०—तुमने रामायण पढ़ी किन्तु उसमें जो भी कुछ

लिखा सब पर विश्वास कर लिया। मनसे कुछ नहीं विचारा।

साधू—तो तुम ही बताओ उसमें क्या झूठ है और क्या सच है।

अ०—यदि मुझसे पूछते हो तो ठहरो। मैं तुम्हें बजाय पुस्तक बतलाने के नाटक में उसका असली और नकलीपना बतलाऊँगा।

(दोनों चले जाते हैं।)

अँक प्रथम—दृश्य दूसरा

(भयानक बनमें रत्नश्रवा राजा विद्या साधन कर रहा है। केकसी उसकी रक्षा में खड़ी हुई है। इधर उधर से भूत पिशाच भयानक रूप धर कर आते हैं। वह उन्हें मारकर भगा देती है। फिर रत्नश्रवा का धूलमें सना हुआ बदन पूंछती है। रत्नश्रवा अपने ध्यान को छोड़ता है और उसे खड़ी देखकर मनमें संकुचित होता है)

रत्नश्रवा—हे सुन्दरी, क्या आपसे पूंछ सकता हूँ कि आप इतनी सुन्दर कोमलांगी होकर भी इस भयानक बनमें मेरी सेवा में क्यों तत्पर हैं।

केकसी—हे देव, मैं राजा व्योमविन्दु और रानी नन्दवती की केकसी पुत्री हूं। मेरे पिताने मुझे यहां आपकी सेवा करने को छोडी है। क्योंकि चारण मुनी ने कहा था कि मेरा विवाह

आप से होगा। सो मैं आपके चरणों की सेवा करके कृतार्थ हुई मुझे आप स्वीकार कीजिये।

रत्नश्रवा—अहा! मेरे धन्य भाग्य हैं जो तुम सरीखी रूपवती गुणवती और धीर स्त्री प्राप्त हुई। आइये, मैं विद्या द्वारा नगर की रचना करके उसमें तुमसे ब्याह करूँगा। (स्वगत) अहा धन्य है! जिन धर्म को, इसके साधने वालों को किस २ वस्तु की प्राप्ती नहीं होती। मैं ज्यों ही विद्या का साधन करके उठा कि मुझे विद्या तो प्राप्त हुई ही साथ में स्त्री रत्न की भी प्राप्ती हुई।

केकसी—प्राणनाथ! मैं अपने जीवन को धन्य समझती हुँ जो मुझे आप सरीखा सर्व गुणों से विभूषित वर मिला! संसार में सब कुछ स्त्रियोंके लिये सुलभ है किन्तु उनकी प्रकृति के अनुसार पुरुष का मिलना दुर्लभ है। इससे बढ़कर मेरे लिये दूसरी बात न होगी कि आप सरीखे धर्मात्मा और गुणवान युवक मुझे अपनी अर्धांगिनी स्वीकार करें।

रत्नश्रवा—वास्तव में पवित्र प्रेम का मिलना दुर्लभ है।

गाना।

प्रेम मय है सारा संसार ॥ टेक ॥

प्रेम की नौका प्रेम समन्दर, प्रेमकी हों पतवार।

दो प्रेमीजन बैठ चलें तब, होय अवस्था पार ॥प्रेम०॥

कैकसी–प्रेमकी साड़ी प्रेम की बींदी, प्रेमही का शृंगार।

प्रेम बिना यह जग सूना है, प्रेम गले का हार ॥प्रेम०॥

रत्नश्रवा—प्रेम पगा हो प्रेमी जन में।

कैकसी—प्रेम सगा हो हर एक मनमें।

रत्नश्रवा—प्रेम ही का दरबार।

कैकसी—प्रेमी जन ही मिलकर बैठें, गावें प्रेम मल्हार।

हां हां गावें प्रेम मल्हार ॥ प्रेम० ॥

(दोनों चले जाते हैं।)

अँक प्रथम—दृश्य तीसरा

(आगे आगे ढोल बजते चले आ रहे हैं। पीछे करीब १२ वर्ष का दुलहा और १४ वर्ष की दुलहन का गठ जोड़ा है। उसके पीछे लोग लुगाइयां गाती हुई चली आ रही हैं।)

(गाना सब लुगाइयों का)

बना ब्याहकर बहू लाया, मुबारिक हो मुबारिक हो।

सभी का मन है हर्षाया, मुबारिक हो मुबारिक हो॥

बरस चौदह की है बनड़ी, बरस बारह का बनड़ा है।

इन्हों का सुखद यह जोड़ा, मुबारिक हो ०

(गाते हुवे सब चले जाते हैं, केवल सेठजी रहजाते हैं। सामने से एक आदमी आकर पूंछता है।)

आदमी—सेठजी आप तो बड़े न्यायमार्गी और धर्मात्मा हैं फिर आपने यह अनमेल विवाह क्यों किया?

से०—भाई तुम समझते नहीं ये न्याय और धर्मके मामले नहीं हैं यह ब्याह शादी के मामले हैं।

आ०—तो आपने यह बेजोड जोडा क्योंकर मिला दिया।

से०—बेजोड क्या मैंने कहीं हथनी और घोडे का ब्याह थोडे ही किया है। लडके की शादी लडकीके साथ की है।

आ०—यह तो ठीक है, लेकिन लडका छोटा और लडकी बडा यह कैसे।

से०—सब आदमी लडका बडा और लडकी छोटी देखते हैं ताकि वह लडके से दबकर रहे। मैं स्त्री समाज की स्वतन्त्रता का पक्षपाती हूँ। इस लिये मैंने यह एक सुधारका काम किया है। लडकी चौदह वर्ष की है और लडका १२ वर्ष का है। इसमें क्या बेजा?

आदमी—लेकिन इसमें आपने कुछ नफा नुकसान भी सोचा?

से०—क्यों नहीं, सेठ धाजीलालजी बहुत बडे सेठ हैं उन्होने यह शर्त निकाली थी कि जो छोटा लड़का मेरी लड़की से व्याह करे उसे मैं १ मोटर और लडकी की बराबर १ सोने की पुतली दहेज में दूंगा । इसी से तो हमने अपने लडके की शादी की है ।

आ०—आपने अपने ही लिये धन का फायदा देख लिया लेकिन यह नहीं देखा कि इसका आगे क्या नतीजा निकलेगा ।

से०—अरे बावले, आगे की किसने देखी है ।

आ०—किसी ने न देखी हो लेकिन आपको अवश्य ही अपने मुहँ पर स्याही देखनी पडेगी । इसका परिणाम बहुत बुरा होगा क्यों कि लड़का अभी अपनी गृहस्थी योग्य आयु से ६ वर्ष छोटा है । और लडकी पूरी है वह अब किसी प्रकार भी नहीं रोकी जा सकती ।

से०—ओ जा मेरे पास इतना धन है कि सब के मुहँ बन्द कर दूं । आया कहीं से मुझे शिक्षा देने । (चल देते हैं)

आ०— मैं तो जाता हूँ मगर मेरी बातों को आप अवश्य याद रखना । (चला जाता है)

अंक प्रथम—दृश्य चौथा

(महाराजा रत्नश्रवा का दरबार)

(नाच गाना बन्द होता है कुछ किसान लोग आते हैं।)

किसान लोग—दुहाई है महाराज की दुहाई है।

रत्नश्रवा—कहो तुम लोगों को क्या कष्ट है?

१ किसान—महाराज जितना नाज हर साल पैदा होता है उससे अब की बार चौथाई पैदा हुआ है। जिसमें से चौथाई आपके यहां आगया १ चौथाई नौकरों को उनकी नौकरी का दे दिया। आधे बचे हुवे में से आधा राज कर्मचार्यों ने हमसे ले लिया। अब हमारे पास केवल १ चौथाई रह गया था जिसे खा चुके अब हम लोग भूख के मारे मरे जाते हैं।

२ किसान—महाराज आप अन्न दाता हो हम लोगों की रक्षा करो।

रत्नश्रवा—कहो कोठारीजी कोठार में नाज कितना है?

कोठारी—महाराज, उसमें तो केवल इतना है कि राज परिवार का केवल चार वर्ष का काम चल सक्ता है।

रत्नश्रवा—अच्छा जाओ राजपरिवार के लिये केवल १ वर्ष का नाज रहने दो और ३ वर्ष का नाज इन्हों को देदो।

किसानलोग—बोलो श्री रत्नश्रवा महाराज की जै।

(कोठारी और सब किसान चले जाते हैं।)

१ दूत—(भागा आकर) महाराज बधाई । राज महल में महारानी केकसी के पुत्र उत्पन्न हुआ है ।

२ दूत—(भागा आकर) महाराज बधाई ! पुत्र ने तुरन्त ही आपके पिता मेघवाहनजी के द्वारा प्राप्त किया हुआ हजार नागकुमार देवों से सुरक्षित हार को उठा लिया ।

रत्नश्रवा—तब तो हमारे यहां एक असाधारण पुरुष का जन्म हुआ है । चारण मुनी ने मुझसे कहा था कि तेरे प्रति नारायण की उत्पत्ती होगी, सो वह पुत्र वास्तव में प्रति नारायण ही उत्पन्न हुआ है ।

३ रा दूत—(भागा आकर) महाराज बधाई है । जब पुत्र के गले में हार डाला गया तो उसके डालने से उसके दानों में प्रतिबिंब पड़ने से उसके दस मुख दिखाई देने लगे ।

रत्नश्रवा—तब तो वह पुत्र अवश्य ही सारी पृथ्वी को अपने वश करके दशों दिशाओं में अपना यश फैलायेगा । प्रतिबिंब के पड़ने से उसके दश आनन दीखे हैं इस लिये उसका नाम मैं दशानन, ही रखता हूँ !

रत्नश्रवा—(ज्योतिशी से) महाराज आप इस पुत्र के भविष्य के विषय में बताइयेगा ।

ज्योतिशी—हे राजा धिराज, इस पुत्र के शुभ नक्षत्र हैं । यह बड़ा पराक्रमी न्यायवान, साहसी, धर्मात्मा और राक्षस बंश

का भूषण है। इसको नारायण के सिवा दूसरा नहीं मार सकेगा। और मृत्यु आने के समय इसकी बुद्धि मलीन हो जायगी जिसके कारण पँचम काल में यह लोगों के द्वारा अपमान की दृष्टि से देखा जायगा। इसका नाम रावण निकलता है। इसके बाद में कुम्भकरण की उत्पत्ति होगी फिर चन्द्रनखा की और फिर बिभीषण की, इनमें बिभीषण सबसे अधिक धर्मात्मा होगा।

रत्नश्रवा—धन्य है, आपको आप ने जो कुछ कहा मैं उस पर विश्वास करता हूँ।

(सब दरबारी गण)—बोलो महाराज रत्नश्रवा की जै।

(पर्दा गिरता है) दृश्य खतम

अँक प्रथम—दृश्य पांचवा

(महारानी केकसी अपने चारों बच्चों को साथ लिये हुवे आती है। सबसे बड़ा रावण है उससे छोटा कुम्भकण उससे छोटी चन्द्रनखा उससे छोटा विभीषण, आंख मिचौनी खेलते हुवे आते हैं। माता सबसे अगाड़ी भागी हुई आती है। रावण उसके पीछे और वह तीनों बहन भाई एक दूसरे को ढकेलते आते हैं।)

रावण—(माता को छूकर) छूलिया, २। अबतो आपको ही चोर बनना पडेगा।

चन्द्रनखा—मेरी मां को चोर मत बनाओ। उसकी वजाय

मुझे बना दो।

केकसी—नहीं बेटी तू नहीं मैंही बनूंगी मेरी लाल, (उसे उठाकर उसका मुँह चूमती है) मेरी प्यारी चन्द्रनखा।

कुम्भकर्ण—वाह जी वाह तुम तो इसे ही गोदी चढाओ। हमभी गोदी चढेंगे।

रावण—तो मैं भी गोदी चढूंगा।

विभीषण—देखो भाई साहब आप सबसे बडे हो। आप गोदी मत चढो। माताजी को कष्ट होगा।

रावण—(विभीषण को गोदी लेकर) मेरे प्यारे विभीषण तुम बडे धर्मात्मा हो। (कुम्भकर्ण को मां से लेकर) आओ कुम्भकर्ण तुम भी मेरी गोदी आ जाओ, माताजी को कष्ट मतदो।

(इतने ही में ऊपर से बाजों की आवाजें आती हैं बहुत हल्ला सुनाई देता है, आकाश मार्ग से सेना जा रही है रावण के सिवाय तीनों माता से चिपट जाते हैं। रावण दृढ़ता से ऊपर को देखता रहता है, वह अभी केवल बच्चा ही है। धीरे धीरे सब बन्द होजाता है।)

रावण—माताजी, यह आकाश मार्ग से किसकी सेना जा रही है।

केकसी—बेटा ये वैश्रवण की सेना है। जो तेरी मोसी का बेटा है।

रावण—माता, यह मालूम होता है अभिमान से चूर्ण हो रहा है।

केकसी—हां पुत्र यह बहुत पराक्रमी है। सब विद्यायें इसको सिद्ध हैं यह सब पृथ्वी पर श्रेष्ठ है। राजा इन्द्र का लोक पाल है। इन्द्र ने तुम्हारे दादा के बड़े भाई का युद्ध में हरा कर उन्हें कुल परम्परा से चली आई राजधानी लँका से निकाला और इसको वहां रक्खा है। इसी लका के लिये तुम्हारे पिता अनेक उपाय करते हैं किन्तु वह प्राप्त नहीं कर सके। हम लोग अपने स्थान से भृष्ट हैं और अनेक प्रकार का चिन्तायें सहते हुये इधर उधर फिरते हैं। पुत्र हमें वह दिन देखने की अभिलाषा है जब तुम अपने दोनों भाइयों सहित अपना यश जग में फैला कर वैश्रवण को और अभिमानी राजा इन्द्र को हरा कर लँकापुरी में फिर से सुख पूर्वक राज्य करोगे। अपने बड़ों की सम्पत्ति को प्राप्त करोगे।

विभीषण—माता आप इतने दुख भरे बचन क्यों बोलती हो आपने वीर पुत्रोंको जन्म दिया है। हमारे बड़े भाई साहब रावण का पराक्रम कुछ कम नहीं है। इनकी एक ही फटकार से वह लंका को छोड़ कर भाग जायगा।

रावण—हे माता मैं गर्वके बचन नहीं बोलता, किंतु तो भी इतना अवश्य करूँगा कि पृथ्वी पर के सारे विद्याधर भी आदि

एकत्र होकर मुझसे युद्ध करें तो हार ही मान कर जायेंगे। किन्तु हमारे कुल में पहले विद्या साधने की रीति चली आई है। इस लिये पहले मैं विद्या साधने के लिये दोनों भाइयों को साथ लेकर बन में जाता हूँ।

केकसी—जाओ, पुत्र तुम सबसे पहले अपने कुल की रीत निभाओ।

(तीनों पुत्र माता को नमस्कार करके जाते हैं)

आओ बेटी चन्द्रनखा तुम्हारे पिता के पास चलें।

(दोनों चली जाती हैं।)

दृश्य समाप्त।

अंक प्रथम—दृश्य छटा

(भयानक बनमें तीनों भाई ध्यान में लीन हैं। नाना प्रकार के डरावने शब्द हो रहे हैं। भूत पिशाच आदि आ आ कर नाचते हैं। उनका ध्यान नहीं डिगता फिर एक देव अपनी दो स्त्रियों सहित आता है।)

१ स्त्री—अहा। ये क्या ही सुन्दर युवक हैं। इनकी ये अवस्था खेल कूद के योग्य है। बन में बैठकर तप करने योग्य नहीं है।

२ स्त्री—इनके माता पिता कैसे निर्दई हैं जो उन्होंने ऐसे युवकों को बनमें जाकर तप करने की आज्ञा दी।

१ स्त्री—(पास में जाकर) हे युवकों ! ये अवस्था तुम्हारे लिये तप करने की नहीं है। उठो ! अभी कुछ नहीं बिगडा है, तुम लोग अपने घर जाओ।

२ स्त्री—क्यों तुम लोग अपने इन कोमल शरीरों को कष्ट दे रहे हो, बोलो ?

१ स्त्री—अरे, यह तो बिल्कुल पत्थर की शिलाके समान अचल हैं।

२ स्त्री—क्या किसी कारीगरने लकडी के खिलौने बना कर तो नहीं रख दिये जिससे स्त्रियां आयें और इन्हों पर मुग्ध हों।

देव—नहीं ये रत्नश्रवा के तीनों पुत्र हैं। यहां पर विद्या साधने के लिये आये हुवे हैं। ये मूर्ख हैं। इनकी बालक बुद्धि है। मैं अभी अपने सेवकों को बुलाकर इन्हों का ध्यान डिगाता हूँ।

(ताली बजाता है, कुछ देव आकर उपस्थित होते हैं।)

देखो जिस प्रकार भी बने तुम इन्हों का ध्यान डिगाओ।

राक्षस—जो आज्ञा महाराज।

(देव अपनी दोनों स्त्रियों सहित एक ओर खड़ा होजाता है। वह तीनों निश्चल बैठे हैं। देव लोग नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं। उनके कानों में बहुत भयावने

शब्द करते हैं। सामने पत्थर ला ला कर पटक्ते
हैं। गले में सांप डालते हैं। अनेक भांति से
उनको ध्यान से डिगाने का प्रयत्न करते हैं।
परन्तु निष्फल होते हैं। फिर स्वामी के
पास आते हैं।)

१ देव—महाराज यह तो बिल्कुल पिघलते ही नहीं। जाड़े में उडद की दालकी तरह अकड गये हैं। हिलाये से हिलते नहीं बुलाये से बोलते नहीं। डराये से डरते नहीं। तो बोलो हम क्या करें।

१ स्त्री—महाराज आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं प्रयत्न करूँ

देव—अच्छा तुम भी प्रयत्न करो।

१ स्त्री—(देवों से) देखो, तुम लोग भीलों की सी आवाज करना और पकड लो बांध लो घसीट लो नोच लो इत्यादि शब्द करना मैं उसकी माता केकसी बन कर उससे पुकार करूँगी।

राक्षस—जैसी आज्ञा।

(चारों भीलों की सी वैसी ही आवाज करते हैं)

स्त्री—अरे दुष्टों छोडो, मुझ बेकसूर को क्यों मारे डालते हो। क्या तुम्हें मेरे पुत्र रावण का भय नहीं है।

राक्षस—चुप रह, हम तुझे देवी की भेंट चढायेंगे। क्या देखते हो इसका एक २ बाल नोच डालो।

स्त्री—हाय, मरी, पुत्र रावण, कुंभकरण, विभीषण, क्या तुम

सब बहरे होगये ! तुम तीनों साहसी पुत्र होकर भी मेरी रक्षा नहीं कर सकते। हाय, विभीषण तुमने रावण की झूँठी ही प्रशँसा की थी। रावण तुम किस लिये विद्या का साधन कर रहे हो। तुम्हारी विद्याओं से क्या लाभ। जब कि तुम अपनी दुखित माता की ही रक्षा नहीं कर सकते।

२राक्षस—अहा आज हम अवश्य ही देवी को इसके रक्त से प्रसन्न करेंगे।

१स्त्री—रावण, दुष्ट कुँभकरण, क्या तुम्हें मेरे हाल पर जरा भी तरस नहीं आता। मैंने इतने कष्ट सह कर तुम्हें जन्मा किन्तु आज आपत्ति में तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते।

(फिर यह सब शान्त हो कर देव के पास आते हैं। तीनों बिल्कुल अचल बैठे हैं)

१स्त्री—महाराज वह तो बिल्कुल दृढ होकर विद्या का साधन कर रहे हैं। उनको हमतो क्या बडे बडे देव भी नहीं चिगा सकते।

देव—धन्य है इनके माता पिताओं को जिन्हों ने ऐसे पुत्रों को जन्म दिया।

(इतने में ऊपर से तीनों के ऊपर पुष्पों की वर्षा होती है आकाश में बाजे बजते हैं। जय के शब्द होते हैं। इसके अनन्तर आकाशवाणी होती है।)

आकाशवाणी---हे रावण, हे कुम्भकर्ण, हे विभीषण तुम धन्य हो तुम्हारी दृढता से आज सारा देव लोक प्रशन्न है। उठो और अपनी विद्याओं के जो कि तुम्हें प्राप्त हुई हैं नाम सुनो।

(तीनों उठ जाते हैं। भगवान की स्तुती करते हैं)

स्तुति।

हे प्रभो आनन्द कारी, तू ही निर्वीकार है।
कर्म को तैं नाश कीने, मुक्ती का भर्तार है॥
नाम तेरे से जगत में, जीव सुख पाते सभी।
नित्य तू अविनाशी तू है, और निर आहार है॥

आकाशवाणी—हे रावण, तुम्हारा अपार पुण्यका उदय है, इस लिये तुम्हें अनेक विद्यायें प्राप्त हुई हैं, तुम इस जग में विद्याओं के प्रताप से कभी भी दुख नहीं देखोगे। हर एक युद्ध में तुम्हारी जय होगी, तुम चाहे जितने बोझ को उठाने में समथ होवोगे। युद्धमें सिर कट जाने पर तुम्हारे दूसरे सिर लगते चले जायेंगे। तुम्हें बुढापा नहीं आवेगा, तुम चाहो तो जल को पवन को अग्नि को रोक सकते हो, जब चाहे मेघ बरसा सकते हो, चाहे जितना कार्य करते हुये भी तुम्हारी शक्ती क्षीण नहीं होगी, इसी पकार तुम्हें अनेक विद्यायें प्राप्त हुई हैं कुंभकरण, तुम्हें

५ विद्यायें सर्वहारिणी, अतिसंवर्धिनी जिसके प्रभाव से चाहे जितने भयँकर और बडे बन सकते हो। जृंभिनी, आकाश गामिनी और निद्राणी जिसके प्रभाव से जितना चाहो सो सकते हो।

विभीषण, तुम्हें केवल चार विद्यायें प्राप्त हुई हैं। सिद्धार्थी, शत्रुदमनी, व्याघाता और आकाश गामिनी। अब तुम सब अपने घर जाओ। और माता पिताओं से मिल कर उनका चित्त प्रसन्न करो।

देव—महाराज कुमार मैंने आप लोगों पर अज्ञानता वश बहुत उपसर्ग किये उनके लिये आप क्षमा प्रदान करें। मैं अनेक विद्याओं का और यक्षों का स्वामी हूँ। मेरे स्मरण करने से मैं उपस्थित होकर आपके सर्व संकटों का हरण करूँगा।

रावण—अहा जिन धर्म को धन्य है कि जिसके प्रभाव से मुक्ति के सुख प्राप्त होते हैं। ये सब कुछ जिन धर्म का ही प्रताप है कि हम इतने वैभव शाली हैं। आओ प्यारे भाइयों अब हम लोग माता पिता के पास चलें।

(पर्दा गिरता है। सीन खतम)

अँक प्रथम—दृश्य सातवां

(एक ओर से केकसी और रत्नश्रवा आते हैं। दूसरी ओर से तीनों पुत्र आते हैं।)

रावण—माताजी तथा पिताजी के चरणों में हम तीनों भाइयों का नमस्कार स्वीकार हो।

रत्नश्रवा—आओ पुत्र, तुम्हें लौटे देख कर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। कहो तुम लोगों ने निर्विघ्न विद्यायें साध ली न?

केकसी—पुत्र तुम्हें लौटा हुआ देखने के लिये मेरा हृदय बडा छटपटा रहा था।

कुम्भकरण—माताजी आपके प्रताप से हम लोगों ने विघ्न सहते हुवे भी विद्यायें प्राप्त करलीं।

रत्नश्रवा—पुत्र तुम अब हमारे सब सँकटों को दूर करने में समर्थ होवोगे, रावण तुम्हारा अतुल बल है, तुम इस भूमण्डल पर अद्वितीय पुरुष हो, एक समय जब मेरे पिताजी कैलाश की यात्रा करने गये तो वहां उन्हें, एक मुनी से पूछने से पता चला कि तुम्हारे पुत्र के यहां प्रति नारायण की उत्पत्ती होगी। और वह तुम्हें फिर से लँका में प्रवेश करायेगा। सो हे पुत्र तुम अब हमारे सँकटों को दूर करो।

रावण—पिताजी जो कुछ आपने कहा सब सत्य है जिस जिन धर्म की कृपासे हमें इतनी विद्यायें सिद्ध हुई हैं, उसी के प्रभावसे अब हमारी मातृभूमि के भी दर्शन मिलेंगे।

केकसी—ऐसे कहने से क्या लाभ, जो मनुष्य होते हैं वो करके दिखलाते हैं।

यदि बाहू में कुछ बल है, बडों का खून है तुममें।
यदि तुम नर कहाते हो, नरोंका जोश है तुममें॥
तो मिलकर एक होजाओ, हो तीनों एक माता के।
रखो तुम मेल आपस में, गले मिलकरके भ्राताके॥
लड़ो जाकरके शत्रू से, भगादो देश से उसको।
बढ़ो आगे लड़ो रणमें, दिखाते जोश हो किसको॥
वि०--करें निज देश की रक्षा, हमारा धर्म कहता है।
सुरक्षित देश हो तब ही, नरों में धर्म रहता है॥
कु०--मैं जाकर हाथ से शत्रु के, लंकाको छुडाऊंगा।
किये अन्याय का उसके, उसीको फल चखाऊंगा॥

रत्नश्रवा—क्यों पुत्र रावण, तुमने इस समय मौन किस लिये धारण कर रखा है। क्या तुम अपने को लँका जीतने में समर्थ नहीं समझते।

रावण—पिताजी अपने दोनों भ्राताओं की बल प्रशंसा को सुनकर मेरा मन अत्यन्त हर्षित हो रहाहै। मैं यही सोच रहाहूं कि हमारे पास सेना की कमी है, शत्रु चाहे जितना भी कमजोर क्यों न हो किन्तु फिर भी उसे अपने से अधिक समझकर ही

उसका सामना करने की सामग्री इकट्ठी करनी चाहिये ।

रत्नश्रवा—पुत्र, तुम सच कहते हो । हमारे पास सेना बहुत कम है । उसकी सेना का आठवां हिस्सा भी नहीं है । आह, तो क्या हमें लंका से हाथ धो बैठना पड़ेगा ।

रावण—नहीं पिताजी, चिन्ता की कोई आवश्यक्ता नहीं, मैंने ऐसी विद्या प्राप्त की है जिससे मेरे सिर कटने पर फौरन दूसरा सिर लग जाता है । उसी विद्या के द्वारा मैं हजारों सिपाहियों को पृथ्वी पर सुलाने में समर्थ हूँ । आओ भाइयों हम तीनों मिल कर लँका को चलें ।

रत्नश्रवा—किन्तु पुत्र सेना का होना अत्यन्त आवश्यक है ।

रावण—यदि ऐसा है तो कोई चिन्ता नहीं । मैं अभी अपनी विद्या के प्रभाव से वैश्रवण से चौगुनी सेना बुलाता हूँ ।

(रावण ध्यान लगाता है । धरणेन्द्र आता है)

धरणेन्द्र—हे रावण मेरे लिये क्या आज्ञा है ।

रावण—जितनी सेना वैश्रवण को है उतनी २ इन दोनों भाइयों के साथ भेज दो । उतनी ही पिताजी की रक्षा के लिये रख दो और उतनी ही मेरे साथ भेजो ।

धरणेन्द्र—जो आज्ञा । (चला जाता है)

रत्नश्रवा—पुत्र तुम्हें धन्य है ।

रावण—अच्छा पिताजी अब हम तीनों भाई कार्य सिद्धि के अर्थ श्री सिद्ध भगवान को नमस्कार करके जाते हैं ।

तीनों—ॐ नमः सिद्धेभ्य, ॐ नमः सिद्धेभ्य, ॐ नमः सिद्धेभ्य ।

(सब चले जाते हैं)

अँक प्रथम—दृश्य आठवां

(वैश्रवण का राज दर्बार)

वैश्रवण—कहो सेनापति, सेना का आज कल क्या प्रबन्ध है ।

सेनापति—महाराज आपकी कृपा से सैनिक लोग बहुत आनन्द में है ।

वैश्रवण—यह समय आनन्द का नहीं । तुम्हें मालूम होना चाहिये कि रावणने सब विद्यायें साध कर अपने दानों भाइयों सहित लँका का जीतने की प्रतिज्ञा की है । इस लिये सेना को सदा तत्पर रहना चाहिये ।

सेनापति—जो आज्ञा । (चला जाता है)

वैश्रवण—प्रधानजी कहिये प्रजा तो शान्ती से है ।

प्रधान—महाराज, जब से रावण ने प्रतिज्ञा की है तब से प्रजा में एक नवीन उत्साह जाग्रत हो गया है । अब वह सब देश रक्षा के गीत गाते हैं । और निर्भय होकर चलते हैं ।

१ दूत—(भागा आकर) महाराज कुम्भकरण सारी उत्तर पश्चिम की नगरियों से सेना को मार कर २ भगा रहा है। सारी प्रजा उसके साथ है। (चला जाता है)

२ दूत—(भागा आकर) महाराज विभीषण दक्षिण पूरब की वस्तियों में से सेना को मार २ कर भगा रहा है। और सारी प्रजा उसके साथ है। (चला जाता है)

३ दूत—(भागा आकर) महाराज सारी प्रजा आपके विरुद्ध हो गई है।

वैश्रवण—जाओ सेनापति को आज्ञा करो कि वह उसको दबावे।

१ दूत—(भागा आकर)महाराज, रावण ने राज्य पर चढाई कर दी है।

वैश्रवण—क्या रावण ने चढाई करदी ?

२ दूत—(भागा आकर) हां महाराज वह राज दर्बार में आने के लिये ६ दरवाजों को पार कर चुका।

वैश्रवण—(घबराकर) प्रधान, भागो। चलो अपनी रक्षा करें।

(इतने में रावण आजाता है। दोनों तरफ से घोर युद्ध होता है)

(ड्राप गिरता है।)

अँक द्वितिय—दृश्य प्रथम

(लंका में रावण का दर्बार)

(रत्नश्रवा विभीषण और कुम्भकरण भी हैं)

(गाना और नाचना)

बलिहारी, बलिहारी, श्री रावण पर बलिहारी।

तुम मातृ भूमि में आये।

परजा आनन्द मनाये॥

नारी सब मंगल गायें,

बलिहारी, बलिहारी श्री रावण पर बलिहारी॥

दुष्टों का कीना आन दमन,

सब ही का फूला हृदय चमन।

फूला है पिता माता का मन।

बलिहारी, बलिहारी, श्री रावण पर बलिहरी॥

रत्नश्रवा—पुत्र तुमने दुष्टों से अपनी मातृ भूमि की रक्षा की है। इससे राक्षस बँश में बडी खुशी हो रही है। तुमने यह बहुत बडा काम किया है।

रावण—पिताजी, आप मेरी बडाई करके, क्यों मुझे लज्जित करते हैं। मैंने तो केवल अपना अपनी पितृ भूमी की

रक्षा में कर्त्तव्य पालन किया है। जो कि हर एक बच्चे बच्चे का कर्त्तव्य है।

दूत—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो !

रावण—कहो क्या समाचार लाये हो।

दूत—महाराज आप से हार माना हुआ वैश्रवण वैराग्य को प्राप्त हुआ है। उसने वन में जा कर दीक्षा ग्रहण करली है। और घोर तपस्या कर रहा है !

रावण—धन्य हो, वैश्रवण योग्य पुरुष हैं। सज्जन लोगों का यही नियम है। कि वह हार मानने पर उल्टा क्रोध न करके अपना जीवन सफल बनाने की चेष्टा करते हैं। मैं अवश्य ही वन में जा कर उनको नमस्कार करूँगा।

कुम्भकरण—भाई साहब वह तो हम लोगों का शत्रु है।

रत्नश्रवा—हारे हुऐ शत्रुके सामने सिर झुकाना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य नहीं है।

रावण—यदि देखा जाय तो वह हमारा मौसेरा भाई है। इन्द्र ने दुष्टता से उसे लंका का राज्य दे दिया था। सो इसमें उसका कोई अपराध नहीं है। और वह जिस समय हमारा शत्रु था उस समय था किन्तु इस समय उसने धर्म धारण किया है वह धर्मात्मा है। हमें उसकी पूजा करनी चाहिये।

धर्म है धर्मात्मा से, धर्म में ही सार है।
धर्म बिन यह नर पशु है, धर्म जग आधार है॥
धर्म को धारण करें जो, उनकी हम पूजा करें।
धर्मात्मा से प्रेम बिन, जीवन सभी धिक्कार है॥

१ मंत्री— किन्तु महाराज, धर्मात्मा भी हो किन्तु अपने से द्वेष रखता हो तो उसको नमस्कार करना वृथा है।

विभीषण—धर्मात्मा पुरुष यदि हम से द्वेष रखता है तो हमारा यह कर्त्तव्य है कि जाकर उससे क्षमा मांगें और जिस भांति होसके अपने प्रति उसका द्वेष निकाल दें।

रावण—विभीषण, तुम्हारी बातें मुझे बडी प्यारी लगती हैं तुम सच्चे धर्मात्मा हो आओ हम लोग वैश्रवण मुनि के पास जा कर उनसे अपने दोषों की क्षमा मांगे और उनके हृदय को अपनी ओर से निर्मल कर दें।

रत्नश्रवा—पुत्र तुम्हे धन्य है। जैसे तुम शक्तिशाली हो उसीके अनुसार तुम धर्मात्मा भी हो तुम्हारी बुद्धी की मैं कहां तक प्रशंसा करूँ।

केकसी—(दर्बार में आकर) पुत्र रावण,

रावण—(नीचे उतर कर) माताजी के चरणकमलों में पुत्र का प्रणाम।

केकसी—पुत्र मैं तुम्हें तुम्हारे कर्तव्य की बधाई देने आई हूँ। मैंने सुना है कि तुम्हारा भाई वैश्रवण वन में जाकर मुनी हो गया है। उसने जिन दीक्षा लेली है।

रावण—हां माताजी, मैं उन्ही की वंदना के लिये जा रहा हूँ।

केकसी—क्या तुम्हारे हृदय से शत्रुपने की बात दूर हो गई! धन्य है पुत्र तुम्हें धन्य है। तुम सरीखा बुद्धिमान बलवान और धर्मात्मा पुत्र को पा कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

(पर्दा गिरता है)

अँक द्वितिय—दृश्य द्वितिय

(राजमल के पिता और राजमल की माता दोनों आते हैं)

राजमल की मां—अब तो खुशी मनाओ। राजमल की बहू के छोरा होगा उसे अब तीसरा महीना है।

बाप—इतनी थोडी उमर में और गर्भ का तीसरा महीना यह कैसे?

मां—थोडी उमर मैं कैसे, उसे तो ब्याही आये हुवे भी २ वर्ष हो गये अब वह सोलह वर्ष की है। सोलह वर्ष की के तो बाजी के दो २ हो जाते हैं। आये कहीं से नजर लगाने वाले।

बाप—लेकिन राजमल तो बहुत छोटा है वह तो अभी चौदह का ही है। और उसके पास जाते भी शर्माता है।

मां—बस एकही बात पकडली, आज कल के छोरे आसमान से बातें करते हैं। आपके सामने वह ऐसा ढोंग बनाता है जिससे आप उसे सीधा समझें। वैसे वह बडा गुन्ना है। तुम्हारे हमारे सब के कान काटले।

बाप—काटता होगा, मुझे तो ताज्जुब होता है कि गर्भ कैसे रह गया। अरे याद आया, गर्भ नहीं होगा। वैसे ही पेट में खराबी होगई होगी सो महावारी बन्द होगई है। किसी को दिखाया भी ?

मां—तुम्हें तो सिवाय वहम के और ताज्जुब के दूसरा काम ही नहीं, दिखाया कैसे नहीं, दाईने तीन महीने का बताया है।

बाप—अच्छा जाओ (इतने लोगों के सामने मत कहो वरना ये हंसी उडायेंगे)

(चली जाती है)

राजमल—(आकर) पिताजी, क्या सोच रहे हो, खुशी मनाओ। अबतो बहू के छोरा होगा। मैं उसे खूब खिलाया करूँगा।

बाप—(चपत मार कर) छोरा होगा २ लगाई, चौदह बरस का बैल हो गया अभी तक खाक की भी अकल नहीं आई।

(राजमल रोता है। बाप मनाता है। राजमल उठ जाता है। चुप हो जाता है)

राजमल—आपने मुझे क्यों मारा ?

बाप—बेटा मैंने कोई दूसरा समझा था। अच्छा तुम अब गेंद नहीं खेलते ? खूब खेला करो खाया करो, तुम्हें यहां किस बात की कमी है।

राजमल—आप मुझे नई गेंद लिवा देना, तब मैं म्युनिसपिल्टी के ग्राउन्ड में खेलने जाया करूँगा।

बाप—वहां जाने की क्या जरूरत है, तुम्हारे बैल खाने की जमीन ही गेंद खेलने को काफी है।

राजमल—नहीं पिताजी यहां नहीं। यहां तो मेरी गेंद उड़न छू होजाती है।

बाप—बेटा, उड़न छू किसे कहते हैं।

राजमल—वाह, पिताजी आप उड़न छू का भी मतलब नहीं समझते।

बाप—नहीं बेटा तू बतलादे क्या बात है।

राजमल—देखो पिताजी सुनो, एक दिन मैं गेंद खेल रहा था सो, वह दूसरी तरफ जाकर भुस की कोठरी में जा पड़ी, जब मैं वहां पर लेने गया तो बहूजी और कल्लू वहां पड़े हुवे थे। मैंने कल्लू से पूछा कि यहां गेंद आई है ? उसने कहा कि

यहां गेंद नहीं आई। अगर आती भी है तो उड़न छू होजाती है। इस लिये अब कभी भी यहाँ गेंद लेने न आना। इस लिये पिताजी यहाँ पर खेलकर कौन अपना नुकसान करे।

पिताजी—(आश्चर्य से) कौन कल्लू !

राजमल—वही काला कल्लू जो बैलोंको भुस खिलाता है।

पिताजी—अच्छी बात है। मैं अभी जाकर उसे अपने घर से निकालता हूँ।

(चला जाता है, राजमल रह जाता है)

राजमल—अहाजी अब तो गेंद आयगी।

बहू—(आकर) प्राणनाथ !

राजमल—जाजा, फिर गेंद का नाम सुनकर उडन छू करने आगई।

बहू—नहीं मैं गेंद उडन छू नहीं करूँगी। मैं तुमसे प्यार करूँगी।

राजमल—अच्छा प्यार करेगी तो पहले मुझे गोदी चढाले।

बहू—अब तुम बडे हो गये। अब मैं गोदी नहीं चढाती,

राजमल—बडा मैं ही थोडे ही हो गया तू भी तो हो गई। और तेरे तो अब छोरा होगा, मुझे खिलाने को दिया करेगी ?

बहू—खिलाने को क्या वह तो तुम्हारा ही होगा।

राजमल—कहीं लडकों के भी छोरे होते हैं? बावली कहीं की।

बहू—प्राणनाथ, आप नाराज न हों, मैं तो आपकी सती स्त्री हूँ।

राजमल—जैसी सीता सती थी वैसी ही है?

बहू—इसमें क्या कुछ संदेह है?

राजमल—ठीक रामचन्द्रजी काले थे! उनकी स्त्री सीता सती थी। लक्ष्मण उनका सेवा किया करते थे। ऐसे ही हमारे यहां कल्लू है उसकी स्त्री तुम हो। और तुम अपने को सती कहती हो, तब तो मुझे तुम्हारी पूजा करनी चाहिये। क्यों कि किताबों में लिखा है कि सती की सेवा करना परम धर्म है।

बहू—तुम तो मेरी हँसी उड़ाते हो! कैसा कल्लू! कल्लू को मैं क्या जानूं।

राजमल— पिताजी कल्लू को घर से निकाल रहे हैं तुम्हें भी उनका बन के लिये साथ करना चाहिये। मैं तो उसी के साथ जाऊँगा।

(चला जाता है। बहू को सोच होजाता है)

बहू—हाय मेरे माता पिता ने मुझे इससे व्याह कर मेरी तकदीर फोड दी। मेरी बहन शान्ती की सगाई की थी, उसका

दूल्हा उससे चार बरस बडा था। वह सुख से अपने पती के साथ प्रेम पूर्वक रहती है। यहां पर आकर बेचारे कल्लू का सहारा था। उसको भी अब ये निकाल रहे हैं। अब मैं अपनी बाली उमर किसके संग बिताऊँगी।

गाना

बाली उमर नादान, छोटासा मेरा बालमा।
रंग नहीं जानत, ढंग नहीं जानत, ठंग नहीं जानत।
प्रेम का है अनजान, नन्हा सा मेरा बालमा ॥बा०॥
जोवन मेरा छल छल छलके, छल छल छलके।
पीया मिलनको जीया ललके, जीया ललके।
तड़फत हूं हैरान, आवे ना मेरा बालमा ॥बाली०॥

(सामने से रामू को आते देख कर)

बहू—रामू आरहा है, (रोने लगती है)

रामू—बहूजी क्या बात है? कहिये तबियत तो ठीक है।

बहू—हां जरा पैर में दर्द है।

रामू—अगर सरकार का हुकम हो तो पैर दबा दूँ?

बहू—हां जरा दरद जाता रहेगा।

(रामू पैर दबाता है। वो फिर रोने लगती है)

रामू—क्यों बहूजी अब कहां दर्द है।

बहू—हाथ में होने लगा।

रामू—लाइये हाथ भी दबा दूँ।

(वह हाथ दबाता है। बहू फिर रोने लगती है।)

रामू—क्यों अब कहां दर्द है?

बहू—दिल में।

रामू—दिल का दर्द मैं तो जब तक आप इस महल से बाहर नहीं चलें, तब तक नहीं दबा सकता।

बहू—क्यों?

रामू—एक ने दबाया था। उसे तो नौकरी से जुदा कर दिया। मुझे भी जुदा कर देंगे।

बहू—तो फिर?

रामू—तो फिर क्या। आज मावस की रात है जितना गहना जेवर लेकर चला जाये, मेरे साथ भाग चलो। हर तरह से तुम्हारी सेवा करूँगा। लेकिन यहां पर तो कुछ नहीं कर सकता।

बहू—अच्छी बात है। तो रातको तुम मुझे कहां मिलोगे?

रामू—वहीं, वह बाहर वाली मसजिद के पास।

बहू—अच्छा तो तुम अब जाओ। मैं वहीं पर आऊँगी।

रामू—अच्छा जाता हूँ। (चला जाता है)

बहू—सचमुच यहां पर रह कर बहुत बड़ा डर है। अब मैं खुशी से इसे अपना पती बना कर हमेशा इसके साथ

रहा करूँगी।

(चली जाती है। सेठजी आते हैं।)

सेठजी—सचमुच, उस आदमी ने मुझसे ठीक कहा था।

नौकर—(आकर) सेठजी बहू तो भाग गई।

सेठजी—कहां (आश्चर्य से)

नौकर—मुझे क्या पता, यह तो आपको पता होगा या मा जी को।

सेठजी—बडे अफसोस की बात है। अपने मायके में बिना पूछे ही चली गई। हम कोई जाने को मना थोड़े ही करते थे। हम तो अपने आप भेज देते। मैंने राजमत से दस बार कहा कि उसे मारा न कर किन्तु बड़ा ही दुष्ट है। आखिर को वह चली ही तो गई।

नौकर—सेठजी आज तो रामू भी नौकरी पर नहीं आया।

सेठजी—उसे तो मैंने बम्बई को एक काम से भेजा है।

नौकर— नहीं सेठजी वही बहूजी को भगा कर ले गया है।

सेठजी—चल गधे के बच्चे। बडे घर की सती स्त्रियोंके लिये ऐसे वचन बोलता है। खबरदार, अगर फिर कभी जबान से यह बात निकाली तो जबान काट लूंगा। (नौकर जाता है)

सेठजी—हाय, फूट गई तकदीर। अब न जाने यह बात

कहां तक फैलेगी। उस आदमी ने ठीक कहा था। मेरे मुँह पर तो स्याही ही पुत गई। लेकिन एक बात अच्छी हुई है। वो यहां पर रहती तो रात दिन मेरा जी जला करता। मैं उसे घर से निकालना ही चाहता था किन्तु भाग्यसे वह स्वयं ही निकल गई देखो जहां तक होगा मैं इस बात को दबाने की कोशिश करूँगा, और अब कभी भी किसी को यह सलाह न दूँगा कि तुम लड़के से बड़ी बहू व्याहो। सबसे यही कहूँगा कि लड़के से चार बरस छोटी बहू हो। देखो भाइयों, तुम्हें तो सब मालुम ही है। मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि तुम यह बात किसी से न कहना वरना मेरा भण्डा फोड़ होजायगा। और मेरा लड़का व्याह से रह जायगा। (जाने लगा) देखियो भइया इसका खूब ध्यान रखना। राजमल भी बेचारा तुम्हारा ही छोटा भाई है। मुझ बुढ़े के ऊपर नहीं तो उसके ऊपर तो अवश्य ही दया करना। अच्छा अब जाता हूँ।

(चला जाता है।)

दृश्य समाप्त

अँक द्वितिय—दृश्य तीसरा

(रावण सकुटम्ब आते हैं)

रावण—इस श्री सम्मेद शिखर जैसे पवित्र स्थान को धन्य

है। जहां से अनेक मुनी और तीर्थंकर मोक्ष गये। ऐसी पवित्र भूमि की जो एक बार भी शुभ भावों से वन्दना करता है उसको नरक और पशु गति का बँध नहीं होता। कहा भी है:—

एक बार बन्दै जो कोई। नरक पशू गति बन्ध न होई॥

विभीषण—भाई साहब आपने हम सबको श्री सम्मेद शिखरजी की बन्दना कराई, आप बड़े ही पुन्य शाली हैं। किंतु आपने यहां आकर हस्ती को पकडा सो अच्छा नहीं किया।

रावण—विभीषण तुम्हारे बचन मुझे बहुत प्यारे लगते हैं मैं जानता हूँ कि मैंने अच्छा नहीं किया, किन्तु वह मुझे बहुत प्रिय था। इसी लिये मुझसे बिना उसके पकड़े नहीं रहा गया।

विभीषण—क्षमा कीजिये भाई साहब! धर्म के स्थान में प्रिय वस्तुओं का त्याग किया जाता है। किन्तु आपने बिल्कुल इससे उल्टा किया जो कि घोर पाप का कारण है। उस हस्ती के चित्त को परतन्त्रता में पड़कर कितना दुःख हुआ। यह आपने बहुत बड़ा पाप किया है। कहा है:—

अन्य स्थाने कृतं पापं, धर्मस्थाने विनश्यती।
धर्मस्थाने कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यती॥

अर्थात:—दूसरे स्थान में किया पाप धर्म स्थान में नाश को प्राप्त होता है। किन्तु धर्म स्थान में किया हुआ पाप कहीं पर भी नाश नहीं होसकता।

दूत—(आकर) महाराज दुहाई है।

रावण—कहो क्या समाचार लाये हो?

दूत—महाराज आपके आधीन जो पाताल लँका नामक देश में सूर्यरज और रक्षरज राज्य करते थे, उन्होंने आपके मद में आकर राजा इन्द्र का ससुर जो यम नामक किहकूपुर का राजा उस पर चढ़ाई की थी। उसमें वह दोनों हार गये। यमराज ने बिल्कुल अन्याय कर रखा है। एक स्वर्ग बना रखा है। और एक नर्क उसमें वह, जो उसकी प्रशंसा करता है जिस पर वह प्रसन्न होता है, उसे स्वर्ग में रखकर सुख देता है। और जिस पर रुष्ट होता है उसे नरक में डाल देता है। और अनेक प्रकार के कष्ट देता है। उसमें पड़कर बहुत से मर जाते हैं। और बहुत से नाना प्रकार के कष्ट सहते हैं। उस दुष्ट ने वानरवंशी राजा सूर्यरज और रक्षरज को भी उसीमें डाल रखा है। हे महाराज आप उनके रक्षक हैं उन्हें इस कष्ट से तुरन्त ही मुक्त कीजिये।

रावण—बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥

बेचारे रक्षरज और सूर्यरज ने मुझसे बिना ही पूछे मेरे प्रति युद्ध करके यम को जीतना चाहा। किन्तु न जीत सके उन्होंने चाहा था कि यम को बांधकर मेरे पास लावें, किन्तु बेचारे स्वयं ही बंध गये। खैर कोई बात नहीं मैं अभी सेना

लेकर चलता हूँ। और यम को हराकर उन दोनों वानर वंशियों को छुड़ाता हूँ।

(सब चले जाते हैं। वही ब्रह्मचारी और साधू आते हैं।)

साधू—जिस रावण को हम लोग इतना बुरा मानते हैं उसे तुम इतना सन्मान देते हो। इससे सिद्ध होता है कि तुम बुरे रास्तों को अच्छा समझकर उस पर गमन करते हो।

ब्रह्मचारी—किसी के मानने से कोई बुरा भला नहीं हो जाता। बुरा भला अपने कामों से होता है। बिना समझे बूझे द्वेष वश होकर किसी को बुरा कह देना सर्वथा भूल है।

साधू—खैर इस बात को जाने दो। किन्तु यह बताओ कि रावणने कहा था कि जो एक बार सम्मेद शिखर की वन्दना करता है वह नरक में नहीं जाता। और तुम मानते हो कि रावण तीसरे नरक में है। सो यह कैसे? क्या उसने भाव पूर्वक वन्दना नहीं की? या वह तुम्हारे कथनानुसार धर्मात्मा होते हुवे भी किसी के द्वारा द्वेष वश नरक में पटक दिया गया?

ब्रह्मचारी—नरक स्वर्ग में पटकने वाला अपने बुरे अच्छे कर्मों के सिवाय दूसरा नहीं है। तुम्हारे वचनों का खँडन विभीषण के वाक्यों से होजाता है। उसने स्पष्ट कहा है कि धर्म स्थान में किया हुआ पाप वज्र लेप होता है। उसने ऐसे पवित्र स्थान पर जा कर हस्ती को पकड़ा और वहां से अपने

क्रोध भाव करके युद्ध के लिये गमन किया, इसके कारण उसे नरक का बन्ध हुआ।

साधू—अच्छा चलो अब अगाडी दिखाओ क्या होता है।

(दोनों चले जाते हैं)

अँक द्वितिय—दृश्य चतुर्थ

(कृत्रिम नरक में पड़े हुवे लोग दुखी हो रहे हैं। रावण अपनी सेना सहित आता है)

रावण—आह, इस दुष्ट यम ने यह क्या राक्षसी माया रच रखी है। यह मनुष्य होकर मनुष्यों पर ही अन्याय करता है हा सँसार भी क्या ही एक तमाशा है।

मनुप मनुप का बैरी बन कर, मनुष मनुप को मारे हैं।
मनुष मनुप को दुख देता, है मनुष मनुप से हारे हैं॥
आश्रित जन को नहीं समझते, मनुष जात इसकी भी है।
करें सदा अन्याय जहां पर, दुखी लोग पग धारे हैं॥

आह, ये भी मनुष्य हैं जो यहां पर इस प्रकार एक मनुष्य के द्वारा ही इतना दुःख उठा रहे हैं। और वो भी मनुष्य है जो इन पर विपत्ती डालकर चैन से राजमहल में सुख भोग रहा है। (सेवकों से) इन्हें इसी समय इस बन्धन से मुक्त करो।

(सब छोड़ दिये जाते हैं। सब रावण की जय बोलते हैं रक्षरज और सूर्यरज रावण के चरण पकड़ लेते हैं)

सूर्यरज—महाराज क्षमा कीजिये, हमने आपके बिना पूछे ही इस पर चढाई कर दी थी जिससे हमारी यह दशा हुई।

दूत—(आकर) महाराज यमराज सेना सहित युद्ध को आ रहा है।

रावण—सूर्यरज और रक्षरज, तैयार होजाओ। मैं तुम्हारे द्वारा ही इस को हराकर इसका मान भँग करूँगा। विभीषण, तैयार होजावो, सेना को तैयार करदो, अब हमें एक दुष्ट से युद्ध करना है।

(सब तैयार होते हैं। सामने से यम आता है)

यम—कहां है, कहां है, वह दुष्ट रावण, जिसने नरक में से सब मनुष्यों को निकाला है।

रावण—वह मैं ही रावण हूँ जिसने तुम्हारे राक्षसी कार्य को मानुषिक कार्य में परिणत किया है। तुम मनुष्य होकर ऐसा कार्य करते हो। यदि कोई तुम्हें उसमें रखे तो कितनी वेदना होगी।

यम—चार दिन के छोकरे। तू इतना बढकर न बोल। मैं जरा ही देर में तेरा अभिमान चूर कर दूँगा।

रावण—जब तक ऊँट पर्वत के नीचे से नहीं निकलता तभी तक वह अपने को बड़ा समझा करता है। जब तू मुझसे युद्ध करेगा तो मालुम होजायगा किसका अभिमान चूर होता है।

यम—तू क्या मुझसे युद्धकर सकता है । यदि करेगा तो तेरा भी वही हाल होगा जो सूर्यरज और रक्षरज का हुआ ।

रावण—अच्छा तो जिन पर तू घमंड जिताता है उन्हीं से अब तुझे हार खानी पड़ेगी । तूने समझा होगा कि रावण की अनुपस्थिती में मैं इन्हें चाहे जैसा कष्ट दे लूँ । किन्तु अब तुझे मालूम होजायगा ।

यम—क्यों खाली तू अपनी प्रशंसा करता है, यदि कुछ दम रखता है, तो आ मुझसे युद्धकर ।

रावण—मैं नहीं ! तेरे लिये वह दोनों भाई ही काफी हैं सूर्यरज और रक्षरज क्या देखते हो । युद्ध करो ।

(दोनों ओर से युद्ध होता है । पर्दा गिरता है)

अँक द्वितिय—दृश्य पँचम

(इन्द्र का दर्बार)

(बड़े ठाट से राजा इन्द्र आता है ।)

इन्द्र—आज मेरा यश सब जगत में फैल रहा है । जिधर देखो उधर मेरे नाम की जय जयकार है । बड़े बड़े राजा लोग मेरे भय से कांपते हैं । बनों में नगरों में शहरों में जहां देखो मेरा नाम गाया जा रहा है । नदियां मेरा नाम लेकर ही कल कल शब्द करती हुई बहती हैं । वायू जब चलती है तो उसमें मेरा

ही नाम मिलता है। जैसी स्वर्ग में इन्द्र की विभूति होती है वही सब प्रकार की विभूति मेरे यहां है। क्या कोई कह सकता है कि स्वर्ग लोक के इन्द्र में और मुझमें कुछ अन्तर है! कभी नहीं, वह इन्द्र मुझ इन्द्र को देखकर लजाता है।

दूत—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो। किहकूपुर से महाराज यम पधारे हैं।

इन्द्र—आने दो।

(दूत जाता है। यम आता है।)

यम—महाराज दुहाई है। रावण का पराक्रम देखकर मेरा हृदय कांप रहा है। महाराज मेरी रक्षा करो।

इन्द्र—आखिर बात क्या है?

यम—महाराज, न पूछो। बात न पूछने में ही भला है। पहले आप मुझे निर्भय कीजिये। (चौंक कर) देखो वह आ रहा है, वह आया भागो २ वरना वह रावण आपको भी हरा देगा।

इन्द्र—तुम इतने व्याकुल क्यों होते हो निर्भय हो कर बात कहो।

यम—महाराज आपकी जय हो। सूर्यरज और रक्षरज ने मेरे ऊपर चढाई की थी मैंने उन्हें हरा कर नरक में डाल दिय था।

इन्द्र—कैसा नरक?

यम—मैंने अपने कैद खाने को नरक के समान बना रखा

है। तो उनकी बात किसी ने रावण से जा कर कह दी। रावण ने आकर उन्हें मुक्त कर दिया और उन्हें ही मुझ से लड़ाया। मैं हार गया और यहां पर आपकी शरण में भाग कर आया। उन दोनों को उसने मेरी नगरियों का अधिपति बना दिया। किष्किधा तो सूर्यरज को देदी और किहकूपुर रक्षरज को दे दिया।

इन्द्र—ओह, रावण ने इतना उधम मचा रखा है।

यम—महाराज इस समय पृथ्वी पर उसके समान बल-वान नहीं है।

इन्द्र—तुम मेरे सामने उसकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हो मैं अभी चल कर उसके अभिमान को चूर करता हूँ।

मंत्री—महाराज ठहरिये, यमराज जो कहते हैं वह सत्य है उसके समान बलधारी इस पृथ्वी पर नहीं है। उससे लड़कर आप वृथा ही क्यों आपत्ती मोल लेते हैं। यदि आपकी पराजय होगी तो ये सब भोग सामग्री जाती रहेंगी। और मालूम नहीं वह आपको क्या २ दुख दे। आप स्वयं उससे युद्ध न कीजिये जब वह आपसे युद्ध करे तब आप अपना पराक्रम दिखावें।

इन्द्र—मंत्री तुम्हें धन्य है तुमने मुझे ऐसी अच्छी सलाह दी। हे यमराज तुम अपने मान भंग के कारण दुखी न बनो। तुम्हारा पराक्रम प्रशंसनीय है। रावण ऐसा ही बलवान है।

उससे यदि तुम हार भी गये तो कुछ नहीं सूर्यरज और रक्षारज को तो तुमने हराया ही था। तुम चिन्ता न करो और यहीं सुख-पूर्वक रहो। मैं तुम्हें असुर संगीत नगर का राज्य देता हूँ।

यम—महाराज, यदि मुझे रावण स्वयं पराजित करता तो इतना दुख नहीं होता किन्तु उसने तो उनसे ही पराजित कराया जिनको मैं भांति २ के कष्ट देता था। बस यही बात मेरे चित्त में खटक रही है।

इन्द्र—खैर जाने दो। सुख पूर्वक राज्य करो और आनन्द उड़ाओ। (पुकार कर) क्षेत्रपाल,

छेत्रपाल—(आकर) आज्ञा महाराज ?

इन्द्र—जाओ मेरे स्वर्ग लोक में से सब से सुन्दर और बढ़िया नृत्य गान करने वाली दो अप्सराओं को भेजो।

यम—(स्वगत) जब इन्हे ही अपने मान अपमान की चिन्ता नहीं, भोग विलास में फँस कर सब भुला रहे हैं। तो मैं क्यों चिन्ता करूँ, मेरी पुत्री इनकी पटरानी है ही। मेरा हर भांति से ये सन्मान करते हैं। वहां से मान भंग हो गया तो क्या हुआ यहां पर तो दुगना मान मिल गया। मैं भी असुर संगीत नगर में जाकर चैन से राज्य करूँगा। (जाता है)

(अप्सरायें आती हैं)

गाना

श्री इन्द्र देव महाराजा, बज रहा खुशी का बाजा।
हां गाओ, हां गाओ, हर्षित होकर यश गाओ ॥
जिनकी महिमा अगणित है, सबही में जिनका हित है।
हां गाओ, हां गाओ, हर्षित होकर यश गाओ ॥

(पटा क्षेप) दृश्य समाप्त

अँक द्वितिय— दृश्य छटा

(वानर वंशी महाराजा सूर्यरज का किष्किन्धा में दर्बार)

(पास में ही उनके दोनों पुत्र बाली और सुग्रीव बैठे हैं।)

सूर्यरज—पुत्र बाली, तुम राज कार्य में सर्वथा योग्य हो। मैं अब वृद्ध होगया हूँ। यह संसार महा दुख दाई है। नहीं मालूम मैं कितनी बार चौरासी लाख योनियों में भ्रमा हूँ। मैंने यह मनुष्य जन्म पाया है। इसको सफल करना चाहिये। तुम इस राज्य सिंहासन के स्वामी बनो मैं बन में जाकर तपस्या करूँगा। और कर्मों को काटने का उपाय करुंगा।

बाली—महाराज, मैं यद्यपि इस कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य हूँ किन्तु आपकी आज्ञा का उलंघन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

सूर्यरज—पुत्र! तुम्हारी पितृभक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। लो मैं तुम्हें राज्य तिलक करता हूं। (राज्यतिलक करता है) बेटा सुग्रीव! तुम्हें मैं युवराज पद देता हूं। बाली, इस बात का सदा ध्यान रखना कि प्रजा किसी प्रकार दुख न देखे। तुम्हारे चाचा रक्षरज के पुत्र नल और नील उनको भी तुम अपना भाई समझ कर ही उनसे व्यवहार करना!

सुग्रीव—पिताजी आप हम लोगों को अकेला छोड़ कर जाते हैं इससे मुझे बड़ा दुख होता है।

सूर्यरज—पुत्र इसमें दुःख की क्या बात है। यह तो हमारी परम्परा से चली आई नीति है। मैं तो अपना भला करने जा रहा हूं। संसार में रहते २ मैं थक गया हूं सो उससे विश्राम पाने के लिये बन में जारहा हूं। तुम अपने बड़े भाई बाली को अपना सब कुछ समझो। वह किसी प्रकार तुम्हारे ऊपर आपत्ति नहीं आने देगा।

बाली—पिताजी! आप हमें छोड़ कर बन में जा रहे हैं। इस समय हमें दुख और आनन्द बराबर होते हैं।

बाली और सुग्रीव का गाना।

जा रहे छोड़ कर हो बन को,
कुछ दुःख भी है आनंद भी है।

हम पिता कहेंगे अब किसको,
इसका बस हमको रंज भी है ॥
अब तक आनन्द उड़ाते थे,
चिन्ता हमको कुछ भी ना थी।
रह गये अकेले हम दोनों,
अंधेर भी है और चन्द भी है ॥
जाकर तुम बन में तप द्वारा,
कर्मों की सेना जीतोगे।
अविकार राज्य को पाओगे,
बस इस ही से आनन्द भी है ॥

सूर्यरज—पुत्र, तुम दोनों बड़े ही बुद्धिमान हो। इस समय संसार की दशा मेरी आंखों के सामने चित्र पट बना रही है।

वह देखो नरकों के प्राणी, दुख उठा रहे कैसे कैसे।
बह रही रक्त की नदियां हैं, गिर रहे अंग कट कर कैसे ॥ १
हा, भूख प्यास चिल्लाते हैं, दाना पानी नहिं पाते हैं।
निज करनी के फल पाते हैं, नहीं कह सकता हूँ किन जैसे ॥ २
तिर्यंचगती में भी देखो, सब प्राणी दुःख उठाते हैं।

हैं बोझ खींचते अरु पिटते, भूखे प्यासे दुखिया भैंसे ॥ ३
जो बंधे कसाई के घर में, भय खाते खैर मनाते हैं।
किन्तु कटते हैं बेचारे, उसके हाथों भुट्टे जैसे ॥ ४
जंगल में भी जो रहते हैं, वो एक एक से डरते हैं।
आखेट खेलने जो जाते, निर्दई होकर मारें ऐसे ॥ ५ ॥
कोई कहे देव सुख पाते हैं, वो भी ईर्षा से जलते हैं।
जब आयू थोड़ी रहजाती, रोते विधवा नारी जैसे ॥६॥
मनुजों में भी ये ऊँच नीच, का भाव सदा दुख देता है।
इक राजा बनकर बैठा है, एक मांग रहा धेले पैसे ॥ ७ ॥

पर्दा गिरता है। दृश्य समाप्त

अँक द्वितिय—दृश्य सातवां

कुम्भकरण—(भागा आकर) कहां गया, कहां गया वह दुष्ट खर दूषन ?

विभीषण—(दूसरी ओर से आकर) वह निकल गया। हमारी बहन चन्द्रनखा को हर कर ले गया।

कुंभकरण—मैं उसे इसका फल दूंगा। अभी उसके नगर पर धावा बोल कर उसे हराऊंगा और बहन को वापिस लाऊंगा।

बिभीषण—जाने दीजिये भाई साहब। वह बहुत बलवान

है हमारे से नहीं जीता जायगा। उसे चौदह हजार विद्यायें सिद्ध हैं। दूसरे इस समय बड़े भाई साहब भी उपस्थितनहीं हैं।

कुंभकरण—क्या हुआ, यदि मैं युद्ध में लड़कर मर भी जाऊँगा तो कोई बात नहीं, किन्तु उससे युद्ध अवश्य करूँगा।

रावण—(आकर आश्चर्य से) क्या बात है। तुम लोग क्यों घबरा रहे हो ?

विभीषण—महाराज राक्षस वंशी महापराक्रमी राजा खरदूषन हमारी बहन चन्द्रनखा को छल से उठा ले गया।

रावण—क्या कहा बहन को उठा ले गया ? उसने इतना बड़ा काम किसके बूते पर किया। क्या उसे मेरे बलका पता नहीं है। मैं अभी जाकर उसे छुड़ाकर लाता हूँ।

विभीषण—भाई साहब की आज्ञा होतो सेना सजाई जाये।

रावण—नहीं मैं अकेला ही उसके लिये काफी हूँ। तुम दोनों यहां रहकर नगर की रक्षा करना।

(जाने लगता है। पीछे से मन्दोदरी आकर पैर पकड़ लेती है)

रावण—क्यों मन्दोदरी तुम मुझे क्यों रोकती हो। क्या एक क्षत्राणी का यही धर्म है कि वह रण में जाते हुवे पतीको रोके।

मन्दोदरी—नहीं पतिदेव, मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं

आपको रण में जाने से रोकूं।

रावण— तो फिर ?

मन्दोदरी—एक पतीवृता नारीका यह धर्म है कि वह आपत्ति में पड़ने से अपने पती की रक्षा करे।

रावण—कैसी आपत्ति। रावण के लिये क्या किसी ने आपत्ति का नाम सुना है ?

मन्दोदरी—यह सच है प्राणनाथ, किन्तु वह चौदह हजार विद्याओं का स्वामी है। आप उससे कदापि नहीं जीत सक्ते।

रावण—मन्दोदरी तुम पतिवृता स्त्री होकर अपने पती को हतोत्साहित करती हो।

मन्दोदरी—नहीं इसमें एक और भी रहस्य है।

रावण—वह क्या ?

मन्दोदरी—वह यह कि यदि आप उससे पराजित होगये तो आपका मान भंग होगा, और यदि वह युद्धमें हार गया तो आपकी बहन बिधवा होजायगी। वह दूषित हो चुकी है। यदि आप उसे ले भी आयँगे तो कोई दूसरा नृपति स्वीकार नहीं करेगा। इस प्रकार आपका घोर अपयश फैलेगा। इस लिये आप मेरा कहना स्वीकार कीजिये और उसके प्रति अपना वात्सल्य भाव दर्शाइये। क्यों कि आपकी बहन के लिये बिना खोजे ही वह बहुत योग्य बर मिल

गया है। आपके धन्य भाग्य हैं। जो ऐसे पृथ्वी पर श्रेष्ठपुरुष से आपकी बहिन का गंधर्व विवाह हुआ।

रावण—प्रिये तुम सत्य कहती हो। मैं तुम्हारी बात को स्वीकार करता हूं तुम्हारे जैसी विचार वान शुभ मंत्रणा देने वाली नारी संसार में बहुत कम जन्म लेती हैं।

(सब चले जाते हैं)

अँक द्वितिय—दृश्य आठवां

(बाली का दर्बार)

दूत—(प्रवेश करके) महाराज की जय हो। लँकापुरी से रावण का दूत आया है। आपसे भेंट करना चाहता है।

बाली—उसे आदर पूर्वक यहां बुला लाओ।

(दूत जाता है रावण का दूत आता है)

रावण का दूत—महाराज बाली की जय हो।

बाली—कहो महाराजा रावण सकुटुम्ब सुखी हैं? वहां से क्या समाचार लाये हो?

दूत—महाराज की कृपा से सब प्रसन्न चित्त हैं। महाराजाधिराज रावण ने आपके पास समाचार भेजे हैं कि आपके पिताजी जिनको हमने संकट से बचा कर राज्य दिया था अब वह बन में दीक्षा ले गये हैं। हम आपके प्रति सहानुभूति प्रगट करते हैं और आज्ञा करते हैं कि आप हमारे यहां आकर हमें प्रणाम करो

हमारा प्रेम आपके प्रती आपके पिता से भी अधिक है। आप हमें अपनी बहिन श्रीप्रभा ब्याहो और नमस्कार करो जिससे परम्परा से चली आई मित्रता निभती चली जाय।

बाली—तुमने जो कहा सो मैंने सुना। मैं और सब बातें स्वीकार करता हूं किन्तु मेरी यह प्रतिज्ञा है कि सिवाय देव शास्त्र और गुरु के किसी को मस्तक नहीं नवाऊंगा मैं तुम्हारे साथ लँकापुरी को चल सकता हूं अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह रावण से कर सकता हूं। किन्तु प्राण जाने पर भी अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।

दूत—हे बानर वंश में श्रेष्ठ, तुम रावण के वचनों का पालन करो। राज्य पाकर गर्व न करो। या तो दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करो या आयुध पकड़ो। या तो रावण को शीष नवाओ या खैंचकर धनुष चढ़ाओ। या तो रावण को आज्ञा को कर्ण आभूषण करो नहीं तो धनुष का पिनच खैंचकर कानों तक लाओ, या तो रावण के चरणों के नखों में मुख देखो। या खड्ग रूपी दर्पण में मुँह देखो। अर्थात या तो जाकर उन्हें शीस नवाओ, या युद्ध के लिये तैयार होजाओ।

योद्धा—अरे दुष्ट दूत क्यों ऐसे कठोर वचन स्वामी के लिये बोलता है। मालूम होता है तेरी मृत्यु निकट है। ले मरने को तैयार होजा।

बाली—नहीं, इसे मत मारो। इसमें इसका कोई अपराध नहीं है। जिसका अपराध है, जिसके बूते पर यह बोल रहा है, मैं उसे ही जाकर मजा चखाता हूं।

मंत्री—महाराज शान्त होइये। रावण की समानता आप नहीं कर सकते। वह इस समय बहुत बलवान है। सारे पृथ्वी मण्डल पर श्रेष्ठ है। आप उससे युद्ध करके पराजय को प्राप्त होंगे।

बाली—मंत्री तुम यह क्या शब्द कह रहे हो। मनुष्य एक वस्तु को तभी तक सबसे सुन्दर गिनता है जब तक वह उससे सुन्दर वस्तु नहीं देख लेता। मेरा बल पराक्रम तुम्हें ज्ञात नहीं है। (तलवार खींचकर) मैं अभी उसका सारा अभिमान चूर करुंगा। (तलवार छूटकर गिरती है) यह क्या, मेरे हाथ में से खड्ग क्यों छूट पड़ा? बस बस हो चुका, मैंने जितना राज्य करना था कर लिया। मेरे हाथ इस बात के लिये राजी नहीं होते कि जिनसे में नित्य-प्रती मन्दिर में जाकर पूजन प्रक्षाल करता हूँ। उनसे लाखों जीवों की हत्या करुं। इस कारण मैं अब राज्य कार्य के योग्य नहीं।

सुग्रीव—भाई साहब आपके विचार एक दम कैसे बदल गये? रणवीर होकर आप धर्मवीर क्यों बने जारहे हैं? आपके बिना इस राज्य भार को कौन सम्हारेगा।

बाली—भाई सुग्रीव, मै तुम्हें राज्यतिलक करता हूँ। तुम जैसा उचित समझो वैसा करना। चाहे युद्ध करना, चाहे जाकर उसको प्रणाम करना। मैं ऐसे संसार में जिसमें एक मनुष्य दूसरे का विरोधी है, रहना नहीं चाहता। मैं भी पिताजी की तरह दिगम्बरी दीक्षा धारण करूँगा।

सुग्रीव—नहीं भाई साहब, यह नहीं हो सकता। आपके आसरे पर मुझे पिताजी ने छोड़ा अब आपभी मुझे अकेला छोड़ कर जारहे हैं। पिताजी तो वृद्ध होगये थे इस लिये वह बन में गये आप तो अभी युवक ही हैं।

बाली—सुग्रीव तुम चिन्ता न करो। मुझे इस सत्कार्य में जाने से न रोको मुझे संसार भयावना दिख रहा है। लो मैं तुम्हें राज्यतिलक करता हूं। सुख पूर्वक राज्य करना। (राज्य तिलक करते हैं।)

सुग्रीव—आप मुझे अकेला छोड़ कर जा रहे हैं मुझे दुःख होता है।

गाना

आज मैं संसार में हूं, हा! अकेला रह गया।
भ्रात के जाने से मेरे, चित्त में दुख बह गया॥
इक तो वियोग पिताका था, फिर आप भी जाने लगे।
आपही बतलाईये अब, किससे नाता रह गया॥

पर्दा गिरता है। दृश्य खतम होता है। द्वितिय अंक समाप्त।

अंक तृतीय

दृश्य प्रथम

स्थान—कैलाश पर्वत की तलहटी

(कैलाश के ऊपर बहुत से जिन चैतालय बने हुवे हैं। बाली मुनि तपस्या कर रहे हैं। रावण अपनी स्त्री और मंत्री सहित आता है।)

रावण—चलते चलते मेरा विमान क्यों रुक गया? मंत्रीजी क्या आप इसका कारण बता सकते हैं?

मंत्री—महाराजाधिराज, यह कैलाश पर्वत है। यहां पर अनेक जिन चैत्यालय हैं। महा मुनि बैठे हुवे तपस्या कर रहे हैं इनमें यह शक्ति है कि कोई भी विमान बिना वन्दना किये हुवे उलांघ कर नहीं निकल सकता।

रावण—अच्छा मैं समझा, जिन धर्म का बहुत उच्च महत्व है। (पर्वत की ओर देख कर) यह सामने कौनसे मुनि तपस्या कर रहे हैं? मालूम होता है यह बाली है इसने मुझसे वैर निकालने के लिये ही मेरा विमान रोका है।.........अरे दुष्ट बाली! तू क्यों यह झूठी दिखावटी तपस्या कर रहा है। तू कषायों से प्रज्वलित हो रहा है और वीतरागता का ढोंग रचता है। तूने मुझसे वैर निकालने के लिये मेरा विमान रोका है। अच्छा देख मैं तुझे अभी इसका फल देता हूं।

(कैलाश पर्वत को खोदता है। उसके अन्दर घुस कर पर्वत को उठाता है। सारी प्रथ्वी पर भूकम्प आजाता है।)

बाली—मालूम होता है यह सब रावण का कर्तव्य है। मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता इन जिन चैत्यालयों की है पर्वत को हानि पहुंचने से इन्हें हानि पहुंचेगी।

(पैर के अंगूठे को दबाते हैं। रावण पर्वत के नीचे दब जाता है। बिल्कुल कछुवा बन कर हा हा कार करता है। देव मुनि के ऊपर फूल बर्षाते हैं। रावण की रानी बाली से प्रार्थना करती है)

रानी—छोड़िये छोड़िये भगवन ! आप परम कृपालू हैं। पति के मरण से मैं विधवा कहलाऊंगी। दया कीजिये।

(बाली पैर के अंगूठे को ढीला छोड़ते हैं। रावण बाहर निकल कर आता है।)

रावण—क्षमा, क्षमा भगवान क्षमा, मैंने जो यह घोर अपराध किया इसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। आप परम तपस्वी हैं आपने जो यह व्रत धारण किया था कि मैं सिवाय देव शास्त्र और गुरु के किसी को नमस्कार नहीं करूंगा सो वह आपका व्रत अटल है। आपका नाम भी बाली है और आपके गुण भी बली हैं। मेरी मूर्खता थी कि मैंने आपके सच्चे स्वरूप को न

समझा। आपने मुझे प्राण दान दिया उसके लिये मैं कहां तक आपकी स्तुति कर सकता हूं।

बाली—यदि तुम इस घोर अपराध का प्रायश्चित लेना चाहते हो तो भगवान की भक्ती में मन लगाओ जिससे यह जीव उनके पदको प्राप्त करता है।

रावण—धन्य है आपको, आपके लिये शत्रु और मित्र एक समान हैं।

धन्य धन्य गुरु देव आपको, करते हो सबका कल्याण।
वीतरागता है दृढ तुमको, शत्रु मित्र सब एक समान॥
अनहित करता के हित करता, शत्रू के हो मित्र तुम्हीं।
परिषह विजयी, हित उपदेशी, शान्ति के हो चित्र तुम्हीं॥
निज पर के हित साधन में तुम, निश दिन तत्पर रहते हो।
ऐसे ज्ञानी साधु तुम्हीं हो, दुख समूह को हरते हो॥
आया गुरु शरण में तेरी, अपराधी अन्यायी हूँ।
दूर होंय सब दुष्कृत मेरे, तुम पर्वत मैं राई हूँ॥

धरणेन्द्र—(प्रगट होकर) रावण, मैं भगवान का भक्त हूं। और इन श्री १०८ मुनिराज बाली महाराज का शिष्य हूँ। मैं तेरी भक्ती से प्रसन्न हूँ। तुझे भाई समझकर यह अमोघ विजया नामक शक्ती देता हूं। यह संकट में तेरे काम आयेगी। इसका वार

कभी खाली नहीं जायगा। तेरे मारने वाले पर भी यह अवश्य अपना असर दिखायेगी।

रावण—मैंने अपने अपराध क्षमा कराने के लिये गुरु देव की प्रार्थना की थी, इस लिये नहीं, कि तुमसे शक्ती ग्रहण करूँ, यदि तुम मुझे भगवान की भक्ती के उपलक्ष में यह देते तो मैं कभी इसे ग्रहण नहीं करता। क्यों कि जिसकी भक्ती से मोक्ष के सुख मिलते हैं तो मैं ऐसी छोटी सी वस्तु को लेकर क्या करता। किन्तु तुम भाई के नाते से दे रहे हो। इस लिये इसे सहर्ष स्वीकार करता हूं।

सब मिलकर गाते हैं।

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र

पर्दा गिरता है।

अंक तृतिय—दृश्य द्वितिय

(बिल्कुल फटे भेष में राजमल की बहू आती है।)

बहू—अन्धकार, अन्धकार, आज मेरे लिये चारों ओर

अन्धकार है। पक्षियों, तुम्हें, शरण है। पशुओं, तुम्हारे लिये भी शरण है। जरासी चींटी के लिये इस संसार में शरण है। किन्तु मैं अशरण हूं। मैं कुल्टा हूं! पापिनी हूं!! कलंकिणी हूं!! पतिदेव, मैंने तुम्हें काम के आवेश में आकर त्याग दिया। आह आज मुझे सारा संसार त्यागे हुवे है। कहां गये, कहां गये? मेरे धन और यौवन के साथी कालू और रामू। जिन्होंने मुझे इस अवस्था तक पहुँचाया। मेरे विनाश कर्ता कहां हैं? रामू! तूने मुझे सारी उमर निभाने का वचन दिया था। अब तू क्यों मुझे छोड़ बैठा है? नहीं, नहीं, तेरा कोई अपराध नहीं है। तो फिर मैं किसका अपराध कहूँ? ये सब मेरा ही अपराध है। नहीं, नहीं, ये अपराध दुष्ट माता पिता का है। मेरे साथ की सहेलियां अपने पतियों के संग चैन से रहती हैं। और पतिव्रता कहलाती हैं। मेरा बेजोड़ विवाह करके माता पिताने मुझे कलंकिणी बना डाला। हे ईश्वर मैं तुमसे यही वर मांगती हूँ कि ऐसे निर्बुद्धि अन्धे माता पिता को कभी भी संतान न हो। मेरा अन्तःकरण कहता है मुझे दुलहिन बनाने वाले माता पिता का नाश हो। मेरा जोड़ा मिलाने वाले नाई का नाश हो मेरे फेरे डालने वाले पुरोहित के घर में यही दशा हो जो मेरी हो रही है। ओ अन्धे पुरोहित! सब के सब निर्बुद्धी थे तो क्या हुआ। तू तो पढ़ा लिखा था। नीति का जानकार था वेदों का ज्ञाता था।

क्या तुझे यह नहीं सूझा कि मैं यह क्या करा रहा हूं। हे भारत माता तू ऐसे लोभी स्वार्थ में अन्धे पुरोहितों को क्यों जन्म देती है? ओ समाज के पंचो, तुम लोगों ने मेरे विवाह में लड्डू कचौड़ी खाये और अपनी थौंदों पर हाथ फेरा। किन्तु किसी ने मेरे भविष्य की ओर ध्यान नहीं दिया। तुम लोगों को मेरा यही श्राप है कि तुम्हारी इन थौंदों में कीड़े पड़ें। जो दशा आज मेरी हो रही है वैसे ही तुम्हें भी कोई आश्रय देने वाला न मिले। आज भारत वर्ष में अबलाओं की यह क्या दुर्दशा हो रही है? समाज हमें पशु समझती है, जिधर चाहती है ढकेल देती है। धन के लालच में मां बाप हमें बूढ़ों से ब्याह देते हैं। हमारे विधवा होने पर समाज हम से दुराचार करती है। बाद में ठुकराती है और हमें कलंकिणी बना कर हमारे ऊपर थूकती है। क्या कहीं हम अबलाओं का न्याय नहीं है?

गाना

आज निर आश्रय हूं मैं, यह क्या मेरी तकदीर है।
पेट खाली उघड़ा तन, यह क्या मेरी तकसीर है॥
ब्याह किया छोटे पती से, मात पित ने हाय मम।
थी जवानी मुझमें जब, कैसे बंधे मेरि धीर है॥

छोड़ कर मैंने पती रामू के संग शादी करी।
होगया जेवर खतम, तब कौन किसका मीर है॥

(कुछ लोग उधर से होकर निकलते हैं वह पैसा
मांगती है। इसके पल्ले में थूक देते हैं। लड़के
आते हैं वह उसे ढेले मारते हैं। नारियां
आती हैं वह नाख पर कपड़ा रख
कर बच कर निकलती हैं।)

सब लोग मुझ पर थूकते, लडके हैं ढेले मारते।
नारी सिकोड़ति नाख हैं, यह क्या मेरी तकदीर है॥

(उसके पिता और ससुर उस रास्ते से आते हैं)

ससुर—आजकल कहीं चैन नहीं।

पिता—घर से चले कि हरिद्वार में जाकर शान्ति मिलेगी यहां पर यह भिखमंगे जान खाये जाते है।

अबला—अरे दुष्टों तुम्हें हरिद्वार में नहीं तुम्हें सातवें नरक में शान्ति मिलेगी।

ससुर—ओ स्त्री, क्या बकती है चुप रह।

पिता—आजकल इन भिखमंगों के दिमाग चढ़ गये हैं। समझते हैं कि हमें गरीब जान कर हरएक कोई छोड़ देता है। इससे मन चाही बक देते हैं।

अबला—तुम लोग अन्धे हो। तुम्हारी आंखें नहीं हैं।

यह केवल दो सुराख हैं जो तुम हमें भिखमंगा समझते हो। हम तुम्हारे अत्याचारों के शिकार हैं।

समझो न भिखमंगी हूं मैं, मैं आग की पुतली हूं वो।
करदे भसम एक आह से, मैं प्रलय की कारी हूं वो॥
नमूना अत्याचारों का, तुम्हारे सामने हूं मैं।
तुम आंखें खोल कर देखो, तुम्हारी कामनी हूं मैं॥

पिता—हैं, कौन ? क्या तू सचमुच मेरी पुत्री कामनी है। बता बेटी इस तेरे भाग्य में मेरा क्या अपराध जो तू मुझे कोसती है।

ससुर—और देखो तो कैसी बेशरम है, सुसरे के सामने ऐसे मुंह खोले हुवे पटापट बोल रही है।

अबला—अपराध ? मुझसे अपराध पूछते हो ? तुम्हीं ने तो मुझे इस अवस्था तक पहुंचाया है।

ससुर—अरे कुछ तो शरम कर।

अबला—बस, बस, चुप रह, ओ लोभ के पुतले, अन्याय के बाप। बता मैं तुमसे क्या शरम करूं। माता पिता से शरम करी तो मेरी यह अवस्था हुई। तुमसे शरम करी तो मेरा धर्म नष्ट हुआ।

पिता—बेटी, बता मैंने तेरे लिये क्या नहीं किया। मैंने

तुझे बड़ लाड़ से पाली। इतना रुपया खरच करके तेरा विवाह किया।

अबला—तुमने सब कुछ किया। किन्तु कुछ भी नहीं किया। तुमने अपना अन्तिम कर्तव्य जो मेरे लिये योग्य पती ढूंढने का था उसे पूरा नहीं किया। उसी का यह परिणाम है कि मेरी आज यह अवस्था है।

ससुर—यदि तू घर पर रहती तो यह अवस्था कैसे होती, यह सब रामू के साथ भागने का फल है अब तू भुगत।

पिता—देखो सामने से आदमी आरहे हैं। वह अगर यह बात जान जायंगे तो हमारी हंसी ेगी।

ससुर—चलो वह सामने से सुधारक का बच्चा भी आ रहा है।

पिता—पुत्री तेरा कल्याण हो।

अबला—पिताजी तुम्हारा नाश हो (दोनों चले जाते हैं।

सुधारक—(आकर) भाइयों देखा सुधार का फल। यह बड़े बूढ़े हम युवकों को पागल बताते हैं। आप लोग सोचिये। पागल हम हैं या ये ?

अबला—भाई तुम कौन हो ?

सुधारक—अपनी दृष्टी में समाज सेवक। शिक्षित समाज

की दृष्टी में सुधारक ओर बूढ़ों की दृष्टि में वेवकूफ हूं ।

अबला—तुम जाते जाते क्यों रुक गये ?

सुधारक—तुम्हारा दुख सुनने के लिये ।

अबला—इससे क्या लाभ ?

सुधारक—लाभ यही कि तुम्हें शान्ति मिले ।

अबला—तुम मुझे कैसे जानते हो ?

सुधारक—जिस दिन तुम व्याह कर लाई गई थीं, तभी से मैं तुम्हें जानता हूं । तुम्हारे व्याह को रोकने का मैंने बहुत प्रयत्न किया था किन्तु मेरी एक न सुनी गई । तुम्हारे ससुर ने कहा कि मैंने यह कार्य सुधार का किया है ।

अबला—भाई क्या मैं तुमसे अब कुछ आशा कर सकती हूं ।

सुधारक—बहन, आप मेरे घर चलें । मैं आपको अपनी धर्म बहन बनाकर रक्खूँगा । जो कुछ मुझसे उपकार बन पड़ेगा वो भी यथा शक्ती करूँगा ।

अबला—भारत माता ! तुझे धन्य है । आज भी तेरे पुत्र ऐसे परोपकारी हैं । (सुधारक से) चलो भाई में तुम्हारे साथ चलती हूँ ।

(दोनों जाते हैं ।)

दृश्य समाप्त

अंक तृतिय—दृश्य तीसरा

(साधू और ब्रह्मचारी दोनों आते हैं।)

ब्र०—कहिये साधुजी कुछ देखा ?

सा०—तुम लोग महा झूँठे हो।

ब्र०—वो कैसे ?

सा०—तुमने रावण की एक दम इतनी तारीफ कर डाली। उसे तुम जैनी बताते हो। जैनी होकर भी कोई रावण के जैसे दुष्कर्म कर सकता है ?

ब्र०…साधू महाराज यह आपका कहना सत्य है कि जैनी होकर दुष्कर्म नहीं कर सकता। किन्तु पांचो अंगुलियों का नाम अंगुलियां ही है। एक ही हाथ के आश्रय हैं। किन्तु कोई छोटी है कोई बड़ी है। उसी प्रकार जिन धर्मके अनुयाई पुरुष भी बहुत से, इन्द्रियों के वशीभूत होकर बुरे काम भी करते हैं और बहुत से अच्छे काम भी करते हैं। जिन धर्म का काम मनुष्य को रास्ता बताने का है उस पर चलाने का नहीं है। यह मनुष्य को स्वयं अधिकार है कि वह चले या न चले।

साधू—लेकिन तुमने उसकी इतनी तारीफ क्यों की ?

ब्र०—सर्वज्ञ भगवान वीतरागी होते हैं। वह निःप्रयोजन होते हैं : उनमें यह बात नहीं होती कि द्वेष वश किसी मनुष्य की बुराई ही बुराई करें। या प्रेम वश किसी की प्रशंसा ही

प्रशंसा करें। उनके ज्ञान में जैसा झलकता है उसी के अनुसार वह कथन कहते हैं।

साधू—खैर यह भी सही। मैंने माना। किन्तु तुमने बाली को यहां तपस्या करते दिखाया है। वहां हमारे यहां तुलसीदासजी ने उसे रामचन्द्रजी के हाथ से मारा गया बताया है। कहिये कितना जमीन आसमान का फरक है।

वृ०—साधूजी, हमारे जितने पुरुष भी हुवे हैं। वह सदा अपने धर्म पर कायम रहे हैं। और आजकल भी हिन्दुस्तानमें पुरुष अपने धर्म पर कायम हैं। यह मैं नहीं कहता कि पुरुष दुराचारी नहीं थे या नहीं हैं। वह सब कुछ थे और सब कुछ हैं। वह सर्प जैसे बाहर टेढ़ा मेढ़ा फिरता है। और अपने बिल में सीधा घुसता है उसी प्रकार थे। बाहर भले ही उन लोगों ने अत्याचार किये किन्तु घर में सदाचार पूर्वक रहे। सुग्रीव की रानी सुतारा को वह अपनी बेटी समझते थे।

साधू—तो फिर राम ने बाली को मारा, क्या यह झूठ है।

वृ०—नहीं झूठ नहीं है किन्तु उलट फेर है।

साधू—वह क्या?

वृ०—वह आपको अभी मालूम पड़ जायगा। आज हम केवल इतनी ही लीला दिखाकर समाप्त करेंगे। आज हम यह दिखादेंगे कि वास्तव में यह क्या मामला है।

साधू—भाई मेरी बुद्धि तो चक्कर खाती है। अभी तक मैं अन्धकार में पड़ा हुआ था और अपने को सर्वज्ञ मानता था किन्तु आज मेरी आंखें खुल रही हैं।

वृ०—जितना आप जिनवाणी रूपी अँजन को आंखों में लगायेंगे, उतना ही आपका अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होगा।

साधू—कृपा करके आप मुझे यह और बतलायें कि यह यज्ञों की उत्पत्ती कब से है।

वृ०—आज इसके बताने के लिये समय नहीं है। आज हम सुग्रीव के विषय में बतलाकर अपना नाटक समाप्त करेंगे। कल प्रथम अँक में यज्ञों की उत्पत्ती का वर्णन करेंगे।

साधू—हम लोग अन्धकार में पड़े हुवे हैं। जिस प्रकार कोई दूसरा बता देता है उस पर विश्वास कर लेते हैं। अपनी बुद्धि से इस बात पर विचार नहीं करते कि यह झूँठ है या सच। जिस देवको हम पूजते हैं, उसके विषय में हम यह नहीं जानते कि यह पूजनीय है या माननीय। माननीय हर एक मनुष्य हो सकता है। किन्तु पूजनीय वही हो सकता है। जो ज्ञान में इतना बढ़ा हुआ हो कि तीनों लोकों की और तीनों कालों की बात एक साथ जान सकता हो। उसी के बचन हमें प्रमाण हो सकते हैं। जो न किसी से प्रेम करता हो न किसी से द्वेष

करता हो। वही हमारे लिये पूजनीय है। जो हमें मोक्ष का रस्ता बताने वाला हो। हमारे सच्चे हित का उपदेशी हो वही हमारे लिये वन्दनीय है। जिस में यह गुण नहीं हैं। जो इन बातों से रहित हैं। वह देव सच्चे देव नहीं हैं। वह माननीय हो सकते हैं किन्तु पूजनीय नहीं हो सकते।

दृश्य समाप्त

दृश्य चौथा—अँक तीसरा

(साहस गती महल में बैठा है)

साहस गती—हा दुर्भाग्य! क्या करूं सुतारा! सुतारा!! बता बता, तुझे कैसे पाऊं। मेरे जीवन की आधार, मेरी आराध्य देवी, मेरे मनुष्य जन्म का ध्येय सुतारा है। दुष्ट अग्निशिख ने अपनी बेटी सुतारा को सुग्रीव से विवाही। हाय, मुझ में क्या दुर्गुण था? क्या मैं उस इन्द्राणी के समान सुन्दर रूपवाली सुतारा के योग्य आयू वाला नहीं था? क्या मेरे यहां राज पाट की कुछ कमी थी? क्या इस नगरी में उस स्त्री रत्न के योग्य भोगोपभोग पदार्थ नहीं थे? सब कुछ था। किन्तु मेरा दुर्भाग्य। दुष्ट अग्निशिख, तूने मुझसे द्वेष करके मेरी आराध्य देवी को दूसरे से व्याही। मेरा यह जीवन सुतारा के बिना धिक्कार

है। जब तक सुतारा को न पाऊँ तब तक मेरे लिये ये सब पदार्थ हेय है। सुतारा! सुतारा!! सुतारा!!!

(यह कहकर गिर पड़ता है। कुछ देर में मूर्छा हटती है। खड़ा होता है।)

आह! वह रूप कितना सुंदर है। कितनी सुन्दर हैं वह आंखें। आह! वह नागिनी सरीखी वेणियां मुझे प्रेम पाश में जकड़े हुवे हैं। ऐ निद्रा तुझे धन्य है। तूने मुझे उसके दर्शन कराये। मैं ज्यों ही उसे पकड़ने को बढ़ा, दुष्ट निद्रे तूने मुझसे दूर होकर उसे छुड़ा दिया। खाने में पीने में उठने में वैठने में तु मेरे सामने घूमती है। किन्तु जिस प्रकार मैं तेरे प्रेम में पागल हूं क्या तू भी इसी प्रकार है? मुझे आशा नहीं कि वह मेरे किष्किन्धापुर पहुंचने पर मुझे स्वीकार करेगी। वह सती है पतीव्रता है। और अब तो अंग और अंगद नामक दो पुत्रों को जन्म भी दे चुकी है। सुग्रीव से वढ़कर उसे इस संसार में कोई दूसरा नहीं है। तो क्या मैं निराश होजाऊं? सुतारा से मिलने की आशा छोड़ दूं। (कुछ सोचकर) नहीं, याद आया, मैं विद्याधर हूं। मैं विद्या के वल पर कठिन से कठिन कार्य कर सकता हूं। अवी वन में जाकर रूप परिवर्तनी विद्या को सिद्ध करता हूं। और सुग्रीव वन कर किष्किंधा में जाता हूं। मेरे लिये एक अमूल्य अवसर यह भी है कि सुग्रीव रावण के साथ दिग्विजय में भ्रमण

कर रहा है बस मिल गई, मिल गई, मेरी नेत्रों की पुतली सुतारा मिल गई। अब मैं निर्भय होकर उसके साथ भोग भोगूंगा। वह पति भक्ता है मुझे सुग्रीव मानकर वह मुझसे प्रेम करेगी। मैं अभी बन में जाता हूँ।

(चला जाता है)

पर्दा गिरता है।

अंक तीसरा—दृश्य पांचवा

(रावण और साथ में एक ब्रह्मचारी आते हैं)

रावण—आज मेरे धन्य भाग हैं जो आपके दर्शन हुवे। आपके दर्शन स्वर्ग के इन्द्रों को भी दुर्लभ हैं।

वृ०—रावण तू अत्यन्त प्रशंसनीय है। तेरा बल, पराक्रम जिन प्रतिमा, वाणी और गुरुओं में श्रद्धान अत्यन्त प्रशंसनीय है। किन्तु विद्याधर होकर तूने भूमी गोचरी को पकड़ा सो ठीक न किया। पवन बड़े बड़े वृक्षों को ही उखाड़ती है। छोटे छोटे पौदों को तो केवल नवा कर ही छोड़ देती है। इस लिये अब तू सहस्र रश्मी को छोड़ दे।

रावण—हे महाराज, इस में मेरा अपराध नहीं हैं। मैं राजा इन्द्र को जो कि एक बहुत बड़ा विद्याधर है और जिसने मेरे दादा के भाई को मारा था मैं उसे जीतने जा रहा था। रास्ते

में यहां विश्राम किया। मैं इस नर्मदा नदी के किनारे बालू का चबूतरा बनाकर जिन प्रतिमा का पूजन कर रहा था। इसने उपर से जल क्रीड़ा का जल छोड़ा जो कि क्रीड़ा के लिये यन्त्रों द्वारा बांध रखा था। उससे पूजन में बाधा पड़ी मैं इसके समीप इसे दण्ड देने गया। इसने हमसे क्षमा न मांग कर और उलटा मेरा अपमान किया। इसी से मैंने इसे पकड़ा है अब छोड़ना तो हमारा धर्म। जिसमें भी, आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।
(नौकर से) जाओ सहस्र रश्मी को मेरे सामने लाओ।

वृ०—रावण तेरा कल्याण हो। तू महान पुरुष है।

सहस्र रश्मी नंगी तलवारों के पहरे में आता है।
वृ० जी को प्रणाम करता है)

सहस्र रश्मी—श्रीमान पूज्य साधू महाराज के चरणों में दास का प्रणाम स्वीकार हो।

वृ०—पुत्र तुम्हारा कल्याण हो।

रावण—प्रिय मित्र सहस्र रश्मी आओ। हम तीन भाई हैं चौथे तुम भी हमारे भाई बन कर हमें रथनूपुर के राजा इन्द्र को जीतने में सहायता दो। मैं तुम्हें अपना भाई बनाता हूं। और मन्दोदरी की छोटी बहन से तुम्हारा विवाह निश्चित करता हूं।

स०—हे महा पुरुष, मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं जिनको सुख

समझे था वह सुख नहीं हैं। वह शहद की छुरी है। मैं जिन स्त्रियों को रूपवती समझता था वह मुझे नरक में लेजाने वाली हैं। मैं अब दीक्षा रूपी नारी से विवाह करके मुक्ती रूपी अनन्त सुख को देने वाली रानी को प्राप्त करूँगा।

रावण—किन्तु जिन दीक्षा तो वही ग्रहण करते हैं जो वृद्ध होते हैं तुम अभी युवक हो। अभी तुम तपस्या के योग्य नहीं हो।

स०—जिस समय काल अपना मुँह फैलाता है तो वह यह नहीं देखता कि इसकी क्या अवस्था है। वह छोटे बड़े वृद्ध युवा, स्त्री पुरुष दीन धनी, बाल वृद्ध का कोई बिचार नहीं करता जो पुरुष बालकपन में यह समझते हैं कि हम युवा होकर धर्म सेवन करेंगे। युवा होने पर यह सोचते हैं कि हमारे यही दिन भोग बिलास के हैं। यदि इन्हीं में धर्म धारण करेंगे तो मनुष्य जन्म का आनन्द कब पायंगे वह महा मूर्ख हैं। मनुष्य जन्म भोग भोगने के लिये नहीं है। यह मुक्ती के मार्ग को सींचने का एक साधन है। भोग भोगने को जीव के लिये स्वर्ग बनाया है। जहां जाकर यह कुछ भी धर्म साधन नहीं कर सकता। दुख सहने को नरक है। इन्द्रिय तृप्ती के लिये पशु पक्षी की योनी है। मनुष्य जन्म को पाकर यदि इस जीव ने अपने सच्चे सुख के लिये प्रयत्न नहीं किया तो निष्फल है।

रावण—किन्तु यह तुम्हारी नव विवाहिता नारियां किस का आश्रय लेंगी ?

स०—मुझसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं। ये सब मेरे शरीर की सम्बन्ध कारिणी हैं। मैं अकेला जन्मा; था अकेला ही मरूंगा। ये सब मेरे उसी प्रकार साथी हैं, जिस प्रकार वृक्ष पर रात्री के समय सब पक्षी मिलकर बैठ जाते हैं। और एक दूसरे से स्नेह करने लगते हैं किन्तु सुबह होते ही न मैं तेरा न तू मेरा। अब तक मेरे लिये रात्री थी किन्तु अब मुझ में ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होगया है। हे महा पुरुष आप सब से अधिक मेरे कल्याण के कर्ता हैं जिनसे मुझे मुक्ती का मार्ग सूझा। आप मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। अब मैं वन में जाकर शान्ति लाभ करूँगा।

रावण—किन्तु ये बेचारी अबलायें अब किसका आश्रय पकड़ेंगी।

स०—संसार में जितने आश्रय हैं वह सब दुखदाई हैं सब से उत्तम आश्रम धर्म का है। यदि वो धर्म का आश्रय लें तो इस भव और परभव दोनों भव में उनको सुख मिलेगा।

रावण—धन्य हो मित्र तुम्हें धन्य है। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये।

(सब जैन धर्म की जय बोलकर चले जाते हैं)

अंक तीसरा—दृश्य छटा

(सुतारा रानी की वाटिका। सुतारा झूला झूल रही है। गाना सब सखियों के संग में गा रही है।)

गाना

फूली हैं ये सारी क्यारी।
देती हैं बू न्यारी न्यारी।
चुभति कर न पदप डलिन बन कड़ि।
लख सखि यह जुहि लड़ि खड़ि बन कड़ि।
मानों गातीं गीतें सारी।
मग्ना हो हो देतीं तारी।
मिलति हंसति रूठति लड़तिं सखि सभि।
मनतिं लखतिं अवति ज़वति यह सभि।
जातीं सारी वारी वारी।
मग्ना होती सारी नारी।

दासी—(प्रवेश करके) महारानीजी की जय हो।

सुतारा—कह, क्या समाचार लाई है?

दासी—महाराज लड़ाई से वापिस लौट कर आये हैं।

सुतारा—हैं, तू क्या कह रही है? महाराज लड़ाई से लौट कर आगये? नहीं, नहीं यह कभी नहीं हो सकता उनके भेष में कोई लुटेरा जान पड़ता है।

दासी—देखिये वो इधर ही आ रहे हैं।

सुतारा—(आता देख कर) दासी इन्हें यहां आने से मना करो।

दासी—महाराज आपके लिये महारानी साहब मना करती हैं।

महाराज—बस हट जाओ, तुम मुझे मना करने वाली कौन होती हो ? सुतारा ! सुतारा !!

सुतारा—बस, खबरदार जो अगाड़ी पैर बढ़ाया। (दासी से, जाओ शीघ्र ही जाकर मंत्री को बुला लाओ। (बनावटी सुग्रीव से) जा मेरे समीप से चला जा। ओ, पती का भेष धर कर आने वाले लुटेरे, पापी तुझे मालूम होना चाहिये कि सुतारा सती है, वो तेरे जैसे बहरूपियों के फन्दे में नहीं आ सकती।

सुग्रीव—सुतारा, ये अपमान, तुझे क्या अपने प्राणों का लोभ नही है। तू कोई उन्मत्त तो नहीं हो गई ? रण से लौटे हुवे पती को विजय माला पहनाने के बजाय तू दुर्वचन कह रही है।

मन्त्री—(आकर) महाराजाधिराज की जय हो। महारानीजी की जय हो।

सुग्रीव—कहो मन्त्री, राज काज अच्छी प्रकार चल रहा है न?

मन्त्री—आपकी कृपा से आपका यह सेवक राज्य की तन मन धन से सेवा करता है।

सुग्रीव—मंत्रीजी मैं तुम्हारे कार्य से अत्यन्त प्रसन्न हूं।

मंत्री—महारानीजी ने मुझे किस लिये स्मरण किया है।

महारानी—मंत्री! मुझे इसमें सन्देह है कि ये महाराज असली महाराज नहीं हैं। इन्हें मेरे पास न आने दिया जाय। और राज्य से बाहर कर दिया जाय।

सुग्रीव—मंत्री! बड़े शोक की बात है कि न मालूम सुतारा को क्या रोग लगा है जिससे यह मनुष्यों को पहचान भी नहीं सकती। कुछ दिन तक इसे यहीं पर रखा जाय और इसके पास कोई मनुष्य न आवे। मैं भी जब तक ये अच्छी न हो जायगी नहीं आऊंगा।

सुतारा—दुष्ट कहीं के लुटेरे, अपने आप अपराध कर रहा है और मुझे रोगी बताता है। निकल जा मेरी वाटिका से।

मंत्री—महाराज, इन्हें तो अवश्य ही उन्माद रोग होगया है। शीघ्र ही इनके लिये किसी वैद्य को ढूंढना चाहिये। वरना

रोग के अधिक बढ़ने की आशंका है।

सु०—नहीं वैद्य की कोई आवश्यक्ता नहीं। पागल को एक स्थान पर छोड़ दिया जाता है तो उसका रोग स्वयं जाता रहता है। इस लिये इन्हें यहीं रखा जाय और किसी भी पुरुष के आने का सख्त पहरा लगा दिया जाय।

सुतारा—मुझे पागल बताने वाले दुष्टों ठहर जाओ। मुझे भी क्रोध आगया है। (झपटती है)

(मन्त्री चिल्ला कर भाग जाता है)

सुग्रीव—बस, खबरदार जो अधिक कुछ किया। समझ लेना कड़ी से कड़ी सजा दी जायगी। मेरा अपमान करने वाली नारी तुझे धिक्कार है। धिक्कार है तेरे पतिव्रत धर्म को जो पती के लिये ऐसे दुर्वचन बोलती है।

सुतारा—तू चाहे किसी प्रकार से भी कह, मैं तेरे ऊपर विश्वास नहीं कर सकती। मुझे निश्चय है कि तू मेरा पती नहीं है। चाहे मर ही क्यों न जाऊंगी किन्तु अपना शील नहीं तजूँगी।

सुग्रीव—मुझे निश्चय हो गया कि तुझे उन्मत्तता है। कोई बात नहीं मैं तुझे इसी स्थान पर कैद रखूँगा। पुरुषों के आने की कड़ी से कड़ी मनाई कर दूंगा। फिर देखूँगा कि वह तेरा कौन असली पती है जो तेरे पास आयेगा।

(चला जाता है)

सुतारा—आह, मेरा दुर्भाग्य। न मालूम ये कौन दुष्ट मेरे पती का रूप बना कर आ गया। हे ईश्वर तेरी कृपा से अनेक सतियों का सत धरम बचा है मेरा भी बचाना।

ड्राप गिरता है।

प्रथम भाग समाप्त।
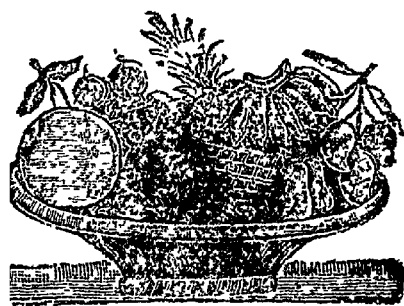
श्री वीराय नमः।

जैन नाटकीय रामायण।

द्वितीय भाग।

अंक प्रथम

दृश्य प्रथम

स्थान

(क्षीरकदम्ब की स्त्री की कुटिया। अपने गमलों में पानी दे रही है।)

गाना

नहीं आये पिया, मोर फाटे हिया।

(इतने ही में उसका पुत्र पर्वत आ जाता है)

माता—क्यों पर्वत तू अपने पिता को कहां छोड़ आया?

पर्वत—माता! मैं, वसू और नारद तीनों पिताजी के साथ गये थे सो रास्ते में पिताजी ने दिगम्बर मुनियों को बैठे देखा। उन्हें प्रणाम किया।

माता—फिर क्या हुआ?

पर्वत—उनमें से एक मुनी ने कहा कि यह चार जीव हैं। एक गुरु और तीन शिष्य। जिन में से एक गुरु और एक शिष्य तो भव्य हैं ये जग में अपना और पराया उपकार करेंगे। २ शिष्य जगत में महा मिथ्यात्व फैलाने वाले हैं। ये नरक गामी होंगे।

माता—वह दो कौन कौन ?

पर्वत—पिताजी ने पूछा किन्तु मुझे पता नहीं कि उन्हों ने बताया या नहीं बताया।

माता—किन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारे पिताजी कहां रह गये ?

पर्वत—उन्होंने हम तीनों को उपदेश देकर बिदा कर दिया। और स्वयं……

माता—स्वयं क्या ?

पर्वत—स्वयं दिगम्बर मुनी……

माता—हाय, मेरा तो भाग्य फूट गया। अब मैं बिना पती के कैसे रहूंगी। (रोती है) हे पती देव तुमने मेरे यौवन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अब मैं कहां जाऊं क्या करूं ? दुष्ट मुनियों ने मेरे पती को मोह लिया। क्या मैं वहां जाकर उनसे घर लौटने के लिये प्रार्थना करूं ? किन्तु वह कभी भी मुझे दिलासा देकर मेरे साथ नहीं आयेंगे। हे पती देव, कुछ

नहीं तो इस घर की दीन अवस्था पर तो बिचार किया होता।

पर्वत—माता धैर्य धरो। पिताजी कल्याण के मार्ग पर लग गये हैं।

माता—दुष्ट तू यही चाहता होगा कि मैं अकेला रहकर मन माने ढोल बजाऊंगा। मुझे कहता है धैर्य धरो पिता को वहां छोड़ कर यहां आ बैठा हाय पतिदेव। (रोती है)

नारद—(आकर) गुरु माता आप इतनी व्याकुल क्यों हो रही हैं? हमारे गुरु सर्व शास्त्र पारंगत थे। वह संसार की बुरी भली अवस्था को पहचानते थे। उन्होंने अपना कल्याण करने के लिये वैराग्य को धारण किया है। कोई ऐसा कार्य नहीं है जिसे वह छोड़ गये हों। हमें तीनों को उन्होंने पूर्ण विद्वान बना दिया है। अपने बाद अपने प्रतिनिधी पर्वत को छोड़ गये हैं। जो कि इस समय हर प्रकार का भार सम्हाल सकता है। आपको तो उनका कल्याण सुन कर प्रसन्न होना चाहिये।

हा, भगवन हमारे लिये वह समय कब आयेगा कि हम भी मुनि पद ग्रहण करके अपनी आत्मा की उन्नति करेंगे।

माता—पुत्र नारद, तुम्हारे बचन सुन कर मुझे हर्ष होता है किन्तु जब पती का बियोग बिचारती हूं तो (आंखों में आंसू लेकर) मेरा कलेजा फटता है। उन्होंने

अपना हित सोच लिया। वैराग्य को धारण किया किन्तु मुझे···
(आखों में आसू पोंछ कर) हमेशा के लिये रुला गये।

नारद—माताजी आप व्याकुल क्यों होती हैं। आप भी अपना कल्याण कीजिये। शान्ति पूर्वक रह कर धर्म चिन्तवन कीजिये। जब स्त्री का पती मर जाता है। तब उसे दुःख होता है किन्तु गुरुजी धर्म मार्ग पर लग कर अपनी आत्मा से कर्म मैल धो रहे हैं। किसी के जीते जी उसका रन्ज करना, यह उचित नहीं। आप बुद्धिमती हैं। बुद्धी से काम लीजिये।

माता—मैं बहुत अपने कलेजे को सम्हालती हूं किन्तु

(रोने लगती है)

नारद—मित्र पर्वत मुझे कार्य वश जाना है तुम माता जी को धैर्य बंधाओ। मताजी प्रणाम।

माता—जाओ पुत्र, मैं अब न रोऊंगी।

(नारद चला जाता है। पर्वत और माता रह जाते हैं)

पर्दा गिरता है।

दृश्य समाप्त

अंक प्रथम—दृश्य दूसरा

(एक पचास वर्ष की आयू वाले भारी बदन के बाबूजी आते हैं। जो कि अप टू डेड फैशन में हैं। चश्मा लगाये हुवे हैं। टोप पहने हैं)

बाबूजी—हमारा भाग्य बहुत बुरा है। हमारी वाइफ हमें बुढ़ापे में रंडुआ कर के चल बसी। अहा, उसकी बातें कितनी मधुर थी। मुझे कितना प्यार करती थी? यह मैं ही जानता हूं। महीने भर मर पच कर जब मैं अपनी तनख्वाह के १६०) लाकर उसे देता था तो एक ही मुस्कान से मेरी महीने भर की थकावट दूर कर देती थी। हाय अब वह सुख कहां? वह मुस्कान कहां? वह आनन्द कहां?

एक क्लर्क—(आकर) कहिये बाबूजी कौनसे आनन्द को याद कर रहे हैं?

बाबूजी—भाई कौनसे क्या, जब मैं बच्चा था। तो मेरी मां मुझे गोदी में बिठाती थी। अपने हाथ से खिलाती थी। मुझे अपने कलेजे से चिपटाती थी। (सांस भरकर) भाई उसी आनन्द को याद कर रहा हूं। बेचारी वह तो मर गई अब हमें रोना पड़ रहा है।

क्लर्क—बाबूजी मुझे तो आपके कहने में कुछ झूंठ मालूम पड़ रहा है।

बाबूजी—झूंठ ही सही भाई तुम जो चाहे समझलो। मेरा दुख तो मैं ही जानता हूं।

क्लर्क—जब तक आपकी श्रीमती जी रहीं..........

बाबूजी—(मुंह बना कर) भाई मेरी उसका नाम मत

तो मुझे रोना आता है।

कलर्क—तब तक तो आपने कभी मां को याद नहीं किया और अब उसे याद करते हो! मैं आपका मतलब समझ गया आप अपनी परी को याद कर रहे हैं।

बाबूजी—भाई चाहे कुछ समझलो! यह बुढ़ापे की उमंग बड़ी बुरी होती है।

कलर्क—तो क्या आप दूसरा विवाह करना चाहते हैं।

बाबूजी—क्या करूं, और किसी तरह इस जीवन को सुख भी तो नहीं मिल सकता।

कलर्क—किन्तु बाबूजी आपके दो लड़के हैं जिनका विवाह हो चुका। एक लड़का ब्याहने के लिये है।

बा०—इसी लिये तो मैं विवाह करना चाहता हूं कि वह छोटे लड़के का विवाह करे।

कलर्क—लेकिन वह तो आपके बड़े लड़के की बहू भी कर सकती है।

बा०—कर सकती है तो क्या लेकिन वह आनन्द नहीं आ सकता।

कलर्क—यह तो बहुत ही बुरा है। आपके यहां दो लड़के व्याये हुवे हैं। जिनके बाल बच्चे हैं। २ लड़कियां ब्याही हुई हैं। एक पोती ब्याहने को बैठी है। जब आप उसकी

बराबर ही नव विवाहिता को लावेंगे तो क्या वह उसे दादी कहती हुई अच्छी लगेगी। आप तो समाज सुधारक हैं। जो दूसरे शादी करते हैं उन्हें आप मना किया करते हैं। अब आप स्वयं क्यों ऐसा कर रहे हैं ?

बा०—भाई कुछ भी हो मैं तो व्याह करूंगा ही वरना मेरे मरने पर बिछुवे कौन उतारेगी। चूड़ी कौन फोड़ेगी।

क्लर्क—मैं तो इस काम को बहुत बुरा समझता हूं। जहां तक होगा इसे रोकने का भी प्रबन्ध करूंगा।

बा०—जा, जा, चालिस रुपये का नौकर और ये बे अदबी !

(क्लर्क चला जाता है) (राम सुख नौकर आता है)

रामसुख—यदि आज्ञा हो तो बाबूजी के लिये चाय बना कर लाऊं।

बा०—नहीं कोई जरूरत नहीं। जाओ लोभीलाल बनिये को बुला आओ।

रामसुख—जो आज्ञा (चला जाता है)

बा०—उसके पास एक छोरी है। उमर भी ठीक सोलह बरस की है। देखने में बहुत सुन्दर है। लेकिन बेचारे के पास पैसा नहीं है। बस उसी पर दबाव डाल कर बहुत थोड़े से में ही अपना काम निकालूंगा।

(रामसुख और लोभीलाल बनिया आता है)

लोभीलाल—(पीछे हटता हुआ) अरे भा भा भाई बा बा बात तो बता क्या है ।

रामसुख—(खींचता हुआ) मुझे नहीं मालूम बाबू साहब ने तुम्हें बुलाया है । वहीं चल कर मालूम हो जायगा ।

बा०—लोभीलालजी, आप इतने डरते क्यों हैं । आ जाइये मैं आपको कोई तकलीफ नहीं दूंगा ।

लोभीलाल—(सिट पिटाता हुआ) हुजूर जयरामजी की ।

बा०—जयरामजी की । यह गद्दे दार कुरसी पड़ी है । इस पर वैठ जाओ ।

(लोभीलाल वैठता है । कुरसी नीचे को दबती है । वह डर कर उठता है)

लोभीलाल—बाप रे बाप, यह फांसी लगाने की कुरसी है । हमने ऐसा क्या कसूर किया है। अन्नदाता ।

बा०—(हंस कर) अच्छा तो दूसरी कुरसी पर बैठ जाओ ।

(लोभीलाल बैठ जाता है)

लोभीलाल—कहिये बाबू साब मुझसे क्या कसूर हुआ है जो आपने मुझे वुलाया ।

बा०—(हंस कर) तुम्हारा कोई कसूर नहीं है । मुझे

अपनी जाती वालों से बहुत प्रेम है। मैं हमेशा उनका हित सोचा करता हूं।

लोभीलाल—तब तो आज हमारे भाग खुल गये। कहिये मेरे लिये क्या सेवा है। (पास में कुरसी सरका कर) कहिये मेरे लिये क्या सेवा है।

बा०—मैंने सुना है कि तुम बहुत गरीब हो।

लोभीलाल—हां हजूर। इसी लिये मैं आता हुआ भी डरता था कि यहां तो खुद ही घर में रोटी के लाले पड़ रहे हैं। अगर जुरमाना होगा तो कहां से भुगतूंगा।

बा०—और मैंने सुना है कि तुम्हारे एक लड़की भी है।

लो०—मुझे आपकी घर वाली की मौत सुन कर बड़ा दुख हुआ है। मैं यही सोचता हूं, किस तरह से आपका दुखड़ा दूर हो।

बा०—ये ही मैं भी सोच रहा हूं कि अब मेरे छोटे लड़के का विवाह होने वाला है सो तुम अपनी लड़की की सगाई मेरे...

लो०—अजी बाबू साहब हमारी इतनी हैसियत कहां है। कि हम अपनी लड़की की सगाई आपके लड़के से करें। कहां आप बाबू साहब और आपका लड़का बारवें दरजे पढ़ा हुआ और कहां मैं नोन तेल का बेचने वाला और मेरी लड़की बिल्कुल अनपढ़ मूरख।

बा०—मैं यह नहीं कहता कि मेरे लड़के के साथ में सगाई करो मै कहता हूं मेरे..........

लो०—आपके नौकर के साथ ? तौ तो मैं करने को तैयार हूं लेकिन वह अपनी जात का हो।

बा०—(झुंझला कर) तुम समझते नहीं। अपनी २ बकते हो।

लो०—हजूर समझते तो नोन तेल काहें को वेचते। हम भी आप जैसे बाबूजी कहलाते।

बा०—येही तो मैं कहता हूं कि अपनी लड़की की सगाई मुझसे करके बाबूजी के ससुर कहलाओ।

लो०—(उठ कर चलने लगता है) जरा बाहर हो आऊं।

बा०—नहीं, जब तक तुम मुझे ठीक जवाब नहीं दोगे मैं कभी भी नहीं जाने दूंगा।

लो०—तो हमारी छोरी कहीं आप जैसे बूढ़ों के लिये थोड़े ही है।

बा०—कौन कहता है कि मैं बूढ़ा हूं। अभी यदि कुश्ती लडूं तो अच्छे से अच्छे जवान को नीचा दिखादूं। याद रखो हम बूढ़ों में जवानों से अधिक ताकत है।

लो०—तो बाबुजी आप भी तो सोचो हमने उसे पाल कर इतनी बड़ी की, हजारों रुपये उसके लिये लगाये। अब

कहीं मुफ्त सुफ्ती में ही थोड़े ही दे सकते हैं।

बा०—अच्छा तो बताओ तुमने अब तक उसके लिये कितना खर्च किया।

लो०—५ हजार रुपये खर्च किये।

बा०—मैं तुम्हें उसके लिये बारह सौ रुपये दे सकता हूं।

लो०—मैं आधे का टोटा सह सकता हूं। अधिक की मेरी समवाई नहीं है।

बा०—अरे भाई तो १५ सौ रुपये लेले।

लो०—ऊं हूं। ढाई हजार से एक पैसा भी कमती नहीं ले सकता!

बा०—अच्छा तो मैं भी अठारह सौ से अधिक नहीं दे सकता।

लो०—सुनो बाबू साहब। जब हमारी तुम्हारी बात बन रही है। तो बिगड़नी ठीक नहीं। कुछ हम घटायें कुछ तुम बढ़ो तो सौदा पट जाय। आज कल भाव बहुत चढ़ा हुआ है। १४ बरस की को पांच हजार से कम में कोई नहीं देता।

बा०—तो वह तो सोलह बरस की है।

लो०—काहे की सोलह की है। सोलवीं तो अभी लगी है। आप से मैंने ढाई हजार कहे हैं कि आपके यहां आकर लड़की सुख पायेगी। आपके लड़कों में, लड़कियों में पोनो

पोतियों में उसका मन लग जायेगा। वरना पांच हजार लगाने वाले कई फिर गये। अगर आप को लेनी है और मुझे देनी है तो २२ सौ रुपये दे दीजिये।

बा—अठारह सौ से अधिक नहीं।

लो०—२ हजार भी नहीं ?

बा०—ना।

लो०—तो जाने दीजिये मेरी छोरी कोई फालतू नहीं। चीज़ देख कर दाम देना। २ हज़ार की तो उसकी एक आंख है। ये आपके लिये रिआयत है कि आपसे हमारा हर दम का वासता है।

बा०—अच्छी बात है, दो हजार हीं सही। सगाई कब भेजोगे ?

लो०—जब आप कहें। लेकिन एक हजार मुझे पहले दीजिये ताकि मैं ब्याह शादी का इन्तजाम करूं।

बा०—ब्याह कहां करोगे ?

लो०—यहीं शहर में।

बा०—यहां पर तो सुधारक लोग तंग करेंगे। पास के गांव में चल कर शादी करनी पड़ेगी।

लो०—जैसी आपकी इच्छा।

पर्दा गिरता है।

दृश्य तीसरा—अंक प्रथम

नारद—कहो मित्र पर्वत। माताजी के क्या समाचार हैं। अब तो वह नहीं रोतीं ?

पर्वत—नहीं मित्र अब नहीं रोतीं। किन्तु पिताजी के बिना मुझे बहुत कष्ट होता है।

नारद—वह क्या ?

पर्वत—सारे घर का काम मुझे ही करना पड़ता है। पिताजी के सामने मैं बिल्कुल बे फिक्र था।

नारद—भाई यह तो होता ही है। संसार में मनुष्य पुत्र को इसी लिये चाहते हैं कि उनके मरने के पश्चात वह घर का बोझ सम्हाले। आगे यदि पुत्र सपूत होता है तो घर के काम काजों मे किसी प्रकार की बुराई पैदा नहीं होती। यदि कपूत होता है तो पिता की सारी सम्पत्ती को नष्ट करके कुल का अपवाद कराता है। इसी लिये बुरे से बुरा मनुष्य भी सपूत चाहता है। मनुष्यों को आवश्यक है कि वह अपने पुत्रों का प्यार के साथ २ इनके विद्याध्ययन की ओर अधिक ध्यान दें।

पर्वत—किन्तु मित्र बहुत से शिक्षित पुत्र भी कपूत निकल जाते हैं।

नारद—यह संगति का असर होता है। माता पिता को पुत्र की संगति, इसकी रुचि इसकी विद्या, चाल चलन के ऊपर

उसके गुरुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिये। एक की भी कमी होने से शिक्षा कुशिक्षा रूप में परिणत होजाती है।

पर्वत—मित्र इस विषय को जाने दो। मुझे यह बताओ कि यज्ञ किसे कहते हैं। और उसकी क्या विधि है।

नारद—हमारे गुरुजी ने यज्ञ का अर्थ यह बताया है कि जिससे अपनी आत्मा को शान्ति मिले और विघ्न दूर हों ऐसी जो भगवान जिनेन्द्र देव की पूजन है, उसी का नाम यज्ञ है। आगे वह कहते हैं "अजैर्यष्टव्यं" अर्थात यज्ञ अज अर्थात ऐसे चावलों से जो बोने से उग न सकें करना चाहिये।

पर्वत—मित्र तुम भूल करते हो। पिताजी ने बतलाया था कि यज्ञ उसे कहते हैं जिससे देवता प्रसन्न हों। यज्ञ की अग्नी में छोड़ा हुआ पदार्थ देवताओं के मुख में जाता है। और अज अर्थात बकरी के बच्चे को बलिदान करके यज्ञ करना चाहिये

नारद—अरे मित्र तुम यह क्या कह रहे हो। अज का अर्थ तो बिना छिलके के चावलों का है। गुरूजी ने भी ऐसा ही बताया है। तुम यह क्या हिंसा की बातें करते हो। याद रखो यह बातें तुम्हें नरक में ले जायेंगी।

पर्वत—मित्र नारद, तुम झूठ बोलते हो पिताजी ने अज का अर्थ छेला ही किया है। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो राजा वसु भी हमारे पिताजी के पास में ही पढ़े हैं। वह इस पृथ्वी पर

सत्य के अवतार हैं। उनका सिंहासन पृथ्वी से अधर है। वह जिसकी बात सत्य बतायेंगे उसे अधिकार होगा कि वह दूसरे की जिव्हा काटले।

नारद—मुझे अपने ज्ञान पर पूरा विश्वास है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूं। कल हमारा न्याय उस सत्यवादी राजा वसु के दर्बार में होगा।

प०—देखना किसकी जिव्हा काटी जाती है?

ना०—देखा जायगा। (चला जाता है) (दूसरी ओर से माता आती है)

माता—बेटा यह कैसा वाद विवाद हो रहा था।

प०—माताजी, पिताजी ने हमें अज का अर्थ छेला बताया है कि छेले को बलिदान करके यज्ञ करना चाहिये। और उसका मांस प्रशाद मान कर ग्रहण करना चाहिये। किन्तु नारद इस बात को स्वीकार नहीं करता। वह अज का अर्थ, बिना छिलके के चावल लगाता है। कल राजा वसू के दर्बार में इस बात का न्याय होगा। जो सत्य निकलेगा वह दूसरे की जिव्हा काटेगा।

माता—दुष्टात्मा, तू भीलों आदि की संगती में रह कर मांस का आदि होगया है। और अपना स्वार्थ साधने के लिये लोगों को धोखे में डालता है। मैंने तेरे पिता को अज का वही अर्थ बतलाते हुये सुना है जो नारद कहता है। नीच! न जाने

इस हिंसा का प्रचार करके तू कौनसे नरक में पड़ेगा।

प०—किन्तु माता अब क्या हो सकता है ?

माता—कल अवश्य ही तेरी जिव्हा काटी जायगी। हाय मेरा दुर्भाग्य पती ने वैराग्य धारण किया। और यह इस प्रकार गूंगा होकर बैठ जायगा।

प०—नहीं माता, तुम देख लेना कल सभा में मैं ही जीतूंगा।

माता—नरकगामी दुष्ट झूठ बोलता है। और कहता है मैं जीतूंगा। हाय, क्या उपाय करूं जिससे यह बच जाय।

याद आया राज वसु के पास अभी मेरी गुरु दक्षिणा धरो हर है। बस अब कोई चिन्ता नहीं मैं तेरी जिव्हा न कटने दूंगी। (चली जाती है। पर्वत बगल में से एक बहुत बड़ा पोथा निकालता है।)

प०—मैंने सारे जैन शास्त्र खोज डाले। जहां भी देखता हूं वहां मांस मदिरा और शहद का त्याग ही मिलता है। येही तीन चीज विशेष आनन्द दायक हैं। यदि यह यज्ञ का प्रचार भारत वर्ष में होगया तब किसी प्रकार भी मांस का या अन्य वस्तुओं का प्रचार नहीं रुक सकता। यदि मेरा नाम भी पर्वत है तो पर्वत जैसा ही अचल रह कर यज्ञ का प्रचार करूँगा जैन शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ करके जनता के सामने रखूँगा। और मेरी

छुरी होगी।

मेरे तो नरक का बन्ध होही चुका है। मैंतो नरक में जाउंगा ही किन्तु ऐसा उपाय करके जाऊंगा जो पराम्परा तक मनुष्य मेरे साथ नरक में आते रहें। (जाता है)

दृश्य चौथा—अँक प्रथम

(अपने राज दर्बार में राजा वसू अकेला बैठा है)

(गुरु माता आती है)

वसू—गुरु माता के चरणों में पुत्र का प्रणाम।

मा०—पुत्र, तुम्हारा कल्याण हो।

व०—(आसन बता कर) माताजी विराजिये और कहिये कि आपने क्यों कष्ट किया ?

मा०—पुत्र मेरी गुरु दक्षिणा तुम्हारे पास धरोहर है।

व०—माता मैं इसे स्वीकार करता हूँ। मैं न देने योग्य वस्तु भी आपको गुरु दक्षिणा में दे सकता हूं।

मा०—यदि दे सकते हो, तो मैं मांगती हूं केवल यह कि तुम इतना बचन कहना कि जो पर्वत कहता है सो सत्य है?

व०—किन्तु माता मुझे बात बताइये क्या बात है ?

मा०—पहले बचन दो कि मैं ऐसे कहूंगा। तभी मैं बात बताऊँगी।

व०—मैं बचन देता हूं।

मा०—तो सुनो "पर्वत और नारद में यह संवाद छिड़ा है कि अज का ठीक अर्थ क्या है। पर्वत कहता है कि अजका अर्थ छेला है। नारद कहता है कि अज का अर्थ बिना छिलके के चावल हैं।

व०—किन्तु माता, बचन तो नारद का ही सत्य है। गुरुजी ने तो हमें यही अर्थ बताया है जो नारद कहता है।

मा०—होते २ उनमें यहां तक होगई कि कल राजा. वसु से इसका न्याय करायेंगे। और जो सत्य होगा वह झूंठे की जिव्हा काट लेगा।

व०—इस प्रकार तो पर्वत की ही जिव्हा कटेगी।

मा०—किन्तु तुम मुझे बचन दे चुके हो।

व०—यह मुझे घोर नरक में डालने वाला है। उस समय मैं सभा में राज सिंहासन पर बैठ कर यह झूँठा न्याय कैसे करूँगा?

मा०—मैं समझती हूं कि पर्वत झूँठा है किन्तु मेरे पती ने वैराग्य धारण कर लिया है। यदि पर्वत की जिव्हा कट जायगी तो मेरे लिये दूसरा सहारा नहीं है। पुत्र तुम अपने बचन को निबहाना।

व०—माता, आप निश्चिन्त रहिये। मैं दी हुई गुरु

दक्षिणा वापिस नहीं ले सकता।

मा०—अच्छा पुत्र तुम्हारा कल्याण हो। मैं अब जाती हूं। (जाती है)

(सभासद लोग आ आ कर बैठते हैं। नाच गाना शुरु होता है। परियां आती हैं।)

नाच गाना

आओ सखीरी, गाओ सखीरी, मिल के सभीरी।
आनंद मनाओ, जिया हरषाओ॥
दुखड़ा निकालो, आफत कु टालो गलबंय्या डालो।
आनंद मनाओ, जिया हरषाओ॥

सिपाही—महाराजधिराज की जय हो। श्री नारदजी और पर्वतजी पधारे हैं।

व०—उन्हें सम्मान पूर्वक राज्य सभा में ले आओ।

(दोनों आते हैं। वसू गले मिलता है। आसन देता है)

कहिये आप लोगों ने मेरे ऊपर आज कैसे कृपा की?

प०—जब गुरुजी हमें पढ़ाया करते थे। तब वह यज्ञ के विषय में कहा करते थे। कि "अजैर्यष्टव्यं" अर्थात अज जो बकरी का बच्चा उससे यज्ञ करना चाहिये। किन्तु यह नारद उसमें अपनी नारदी लीला रचता है।

व०—क्यों नारदजी आप इस विषय में क्या कहते हैं?

ना०—मैं जो बात सत्य है उसे कहता हूं।

व०—वह क्या?

ना०—वह यह कि गुरुजी अज का अर्थ बिना छिलके के चावल करते थे। जो बोने से न उग सके। उस में हिंसा का नाम भी नहीं था। और पर्वत ऐसी बात कहता है जो हिंसा से परिपूर्ण है। गुरुजी कभी ऐसा उपदेश नहीं दे सकते थे।

प०—राजन! मैं सत्य कहता हूं? या ये सत्य कहते हैं? आप इस बात का न्याय कीजिये जिसका बचन असत्य निकलेगा उसकी जिव्हा काट ली जायगी।

व०—क्यों नारदजी आप इसमें सहमत हैं न?

ना०—मैं तनमन से सहमत हूँ।

व०—यदि आपके विरुद्ध में न्याय होतो आप जिव्हा कटाने को तयार हैं न?

ना०—यदि मेरा बचन असत्य होगा तो मैं अवश्य जिव्हा कटा लूंगा।

व०—कहिये पर्वतजी आप को भी स्वीकार है न?

प०—मैं इसे मन बचन काय से स्वीकार करता हूं।

व०—तो सुनिये, पर्वत का बचन सत्य है।

(सिंहासन टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ता है।)

सभासद लोग—महाराज सत्य बोलिये। वरना आप नरक गामी बनेंगे।

ना०—झूंठा न्याय करने से तुम्हारा सिंहासन टूट गया। यदि कल्याण चाहते हो तो अब भी सत्य बोल दो वरना आप के बचन प्रमाण जो अत्याचार जब तक संसार में होते रहेंगे तब तक आप नरक में से नहीं निकल सकेंगे यदि आप को अपना कल्याण करना हो और जीव हिंसा बचानी हो। तो जो गुरुजी ने कहा है वह सत्य कह दीजिये।

व०—(पृथ्वी पर पड़ा हुआ) पर्वत का बचन सत्य है।

(सिंहासन पृथ्वी फट कर उसमें समा जाता है। साथ २ वसू भी जाता है)

सभासदी—यह पर्वत महा पापी है। इसने राजा से झूठ बुलवा कर उसे नरक में भेजा। हम लोग नारदजी की जिव्हा नहीं किन्तु तुम्हारी जिव्हा काटेंगे।

(पर्वत भाग जाता है)

ना०—देखो जिव्हा कटने के भय से भाग गया।

सभासदी—हम अभी पकड़ कर लाते हैं।

ना०—जाने दो, जो जैसा करेगा वैसा भुगतेगा।

(सब लोग फटी हुई पृथ्वी की ओर देखते हैं)

पर्दा गिरता है।

अंक प्रथम—दृश्य पांचवा

(ब्रह्मचारी और साधू आते हैं)

ब्र०—कहिये साधूजी आप सब तमाशा देख रहे हैं न ?

सा—मैं सब देख रहा हूं और समझ रहा हूं। मेरे आत्मा से अज्ञान का पर्दा हट रहा है। किन्तु एक बात मुझे आपसे और पूछनी है।

ब्र०—वह क्या !

सा०—वह यह कि नारद का जो यहां पर बयान आया, क्या ये वही नारद है जो दुनियां में अपनी नारदी लीला के लिये प्रसिद्ध है ?

ब्र०—नहीं, यह वह नारद नहीं है। यह तो नाम से नारद है।

सा—तो सच्चा नारद कौन है ?

ब्र०—उसके विषय में अगाड़ी बतायेंगे।

सा०—आपके यहां अर्यिका किसे कहते हैं?

ब्र०—जो स्त्री वैराग्य को धारण करके आत्म कल्याण करती हैं। उन्हे अर्यिका कहते हैं।

सा०—क्या वह भी नंगी रहती हैं ?

ब्र०—नहीं वह नंगी नहीं रहतीं।

सा०—किन्तु आपतो कहते हैं कि नग्न होने से ही मोक्ष

मिल सकता है। फिर ये स्त्रीयां तो नग्न रहती ही नहीं।

श्र०—इसी कारण स्त्रियां मोक्ष नहीं जा सकतीं। वह केवल सोलहवें स्वर्ग तक जा सकती हैं। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि स्त्रियां मोक्ष की अधिकारिणी हो नहीं हैं। वह नर भव पाकर तपस्या करके मोक्ष जा सकती हैं।

सा०—मोक्ष किसे कहते हैं?

श्र०—जीवों के लिये जो यह जन्म, जरा मृत्यु का दुःख है उससे छूट जाना। अर्थात दुखों से छूट कर अविनाशी सुख को प्राप्त करना वही मोक्ष है।

सा०—किन्तु इसमें वही जा सकते हैं जो नग्न हों यह कैसे?

श्र०—जब तक इस जीव का संसारी वस्तुओं से मोह नहीं छूटता तबतक ये जीव उस अविनाशी सुख की प्राप्ती नहीं कर सकता। यदि कोई साधू सब प्रकार से धर्म पालता है किन्तु जरा सा लंगोटा भी रखता है तो समझ लीजिये कि उसे उस लंगोटे से प्रेम है। यदि कोई बीच बजार में उसे पकड़ कर खोल देगा तो उस के कारण उसे क्रोध आ जायगा। क्योंकि लंगोटे से उसके शरीर की लाज बची हुई है। जहां पर एक से विशेष प्रेम किया जाता है तो दूसरे से उसे अवश्य ही द्वेष करना पड़ता है। मनुष्य अपनी स्त्री से प्रेम करता है। यदि उसे कोई

कष्ट पहुंचाता है तो वह उस पर क्रोध करता है।

सा०—यह तो मेरी समझ में आगया। आप कृपा कर के मुझे नारद के विषय में बताइयेगा।

ब्र०—ये देवों के द्वारा पाले जाते हैं। इन्हें नाना प्रकार की विद्यायें सिद्ध रहती हैं। गाना गाने और सुनने में इनकी विशेष रुची होती है। ये परम वैरागी और भगवान के भक्त होते हैं। किन्तु जो नारद होता है। वह अवश्य नरक में जाता है। क्योंकि इन्हें कलह प्यारी होती है। ये पूर्ण ब्रह्मचारी रहते हैं। किन्तु फिर भी इनका मन स्थिर नहीं रहता। आपस में झूँठी सांची लगा कर लड़ाई कराने में इन्हें आनन्द प्राप्त होता है। किन्तु यह बहुत ज्ञानी भी होते हैं। आकाश मार्ग से गमन करते हैं। जहां कहीं धर्म की हंसी देखते हैं वहां उसे रोकते हैं।

सा०—क्या इस हिस्से में कहीं नारदजी का सम्बंध आयगा ?

ब्र०— हां अगले दृश्य में उनका सम्बन्ध दिखाया जायगा।

सा०—अच्छा तो चलिये देखें।

(दोनों जाते हैं)

अंक प्रथम—दृश्य छटा

(राजा मरुत की यज्ञशाला। अग्नी जल रही है। यज्ञ की सब सामग्री तैयार है)

पुरोहित—राजाधिराज ! आप नगर की शान्ति और देवताओं को प्रसन्न करने के लिये, यज्ञ प्रारम्भ कीजिये।

मरुत—पुरोहितजी ! यज्ञ का अर्थ तो बताइये ?

पु०—हे राजन ! यज्ञ उसे कहते हैं जिससे देवता लोग प्रसन्न होते हैं। यह यज्ञ कई प्रकार का होता है। बहुत से राजा किसी विशेष कारण वश कभी कभी नरमेघ यज्ञ भी करते हैं। कोई अश्वमेध यज्ञ करते हैं। कोई अजा मेघ, इस प्रकार यज्ञ कई प्रकार से होता है।

म०—इन अजा पुत्रों का इस यज्ञ में क्या होगा।

पु०—इसमें इनकी बली दी जायगी।

१ मनुष्य—पाप, पाप, घोर पाप ! धर्म के नाम पर ये अत्याचार !! इन बेचारे मूक पशुओं का संहार। हे जिनेन्द्र देव इनको सद्बुद्धि दीजिये।

पु०—पकड़लो इस जिनदेव के बच्चे को। महाराजाधिराज यह मनुष्य नास्तिक हो गया है। यदि इसे दन्ड न दिया जायगा तो देवता आपसे अप्रसन्न हो जायेंगे। क्योंकि इससे

यज्ञ का अपमान होता है ।

म०—कहिये पुरोहितजी इसको क्या दंड दिया जाय ?

पु०—हे महाराज मरुत, यह नास्तिक होने के कारण नरक में जायगा । हम लोगों का हृदय दयालू होता है । इस लिये इसे स्वर्ग में पहुँचाना चाहिये ।

म०—हे जिनेन्द्र तेरे भक्तों पर, होते हैं ये अत्याचार ।
उठा अहिंसा हिंसा रच कर, जावों पर करते हैं वार ॥
नाम तुम्हारा लेने से, संकट होते हैं दूर तभी ।
ऐसी कृपा नाथ हम पर हो, उठ जावें ये पाप सभी ॥

(नारदजी आते हैं)

गाना

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेद्र, जय जिनेन्द्र
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,.......

पु०—यह दुष्ट इस समय न मालूम कहां से कूद पड़ा ।

नारदजी—मैं आकाश मार्ग से जा रहा था । यहां पर ये हल्ला गुल्ला देख कर उतर आया हूं । राजा मरुत ! क्या मैं पूछ सकता हूं यह क्या आडम्बर है ।

म०—नारदजी ! यह यज्ञ है ।

ना०—किन्तु यह मनुष्य और यह पशु क्यों चिल्ला रहे हैं? यह इतनी प्रचंड रूप से अग्नी क्यों जल रही है?

पु०—यह यज्ञ के लिये है। यह अग्नी देवताओं का मुख है।

ना०—तुम लोग इन मूक पशुओं को क्यों बलिदान करते हो? तुम कहते हो कि अग्नी में पड़ा हुआ द्रव्य देवों के मुख में जाता है सो यह किस प्रकार से सत्य है? उनके तो कंठ में अमृत होता है। उन्हें किसी भी प्रकार के आहार की आवश्यक्ता नहीं है। तुम लोग मार्ग भृष्ट होकर निंद्यकर्म करते हो। यह अनुचित है।

पु०—क्या सारे दुनिया भर के जीवों का ठेका तूने ही ले रखा है? पशुओं को ईश्वरने ने यज्ञ के लिये ही बनाया है।

ना०—अरे, अरे, तुम लोग कैसा अनर्थ बोलते हो। ईश्वर तो अनन्त सुखमय है। वह न किसी को बनाता है न बिगाड़ता है।

पु०—अरे पाखंडी! तू क्यों हमारा माथा चाटता है। हमारे यज्ञ में क्यों विघ्न डालता है। यदि कुछ ज्ञान रखता है तो सिद्ध करके बता कि ईश्वर कर्ता धर्ता किस प्रकार से नहीं है।

ना०—यदि तुम्हें यही इच्छा है तो सुनो—

कर्तावादी कहैं जीव का कर्त्ता हर्त्ता परमेश्वर ।
सृष्टी को रच जीव बनाये इसमें संदेह पड़े नजर ॥ टेर ॥
अगर रची सृष्टी ईश्वर ने फिर क्यों अन्तर दिया है डाल ।
एक सुखी एक दुःखी बनाया एक धनी निर्धन कंगाल ॥
अगर कहो अपने भक्तों को वह रखता हरदम खुश हाल ।
करै बुराई जो ईश्वर की उसे देत दुःख अति विकराल ॥
तो खुशामदी हुआ ईश है बड़ा दोष यह करिये ख्याल ।
अगर कहो अनुसार कर्म के देता है सुख दुःख धन माल ॥
तब तो यह बतलाओ जीव के संग कर्म लागे क्योंकर । सृ० ॥
अगर कर्म अनुसार दंड दे रचता जीव बीच संसार ।
पैदा करी दंड दे गणिका जो नित करैं भोग व्यभिचार ॥
खूब दिया यह दंड ईश ने भ्रष्ट करे जग में नर नार ।
अगर कहो स्वाधीनपने से करती है गणका यह कार ॥
है पूरण सर्वज्ञ ईश तो तीन काल की जाने बात ।
तब क्यों रची देह गणकाकी जब उसको था इतना ज्ञात ॥
ईश्वर के सर्वज्ञपने में लगे दोष अब सुनो जिकर । सृ० ॥
दुष्ट लोग जीवों को मारें बेरहमी से हरते प्रान ।
किये ईशने क्यों वह पैदा जब उसको था इतना ज्ञान ॥
अगर कहोगे घाती द्वारा दंड लहैं हैं जीव अजान ।
आज्ञा से ईश्वर की अपने करतब का फल भोगें आन ॥

जब घातक ने ईश्वर की आज्ञा से कीना जीव संहार।
फिर क्यों उनको दोष लगावें पापी दुष्ट कहै संसार।
जैसे किसी धनीं घर चोरी करी सभी धन लिया अपार।
धनी पुरुष के कर्म योग से करवाई चोरी करतार।
दंड मिला निर्दोष चोर को था ईश्वर का दोष मगर। सृ०॥

हुआ नष्ट सर्वज्ञपना अब रक्षकपन पर करिये गौर।
जब करता है जग की रक्षा तब क्यों कीन्हें ठग अरु चोर॥
अगर कहोगे खानपान का यही किया चोरों के तौर।
फिर क्यों पहरे दार बनाये फिरें जगाते कर कर शोर॥
सच अरु झूँठ कपट छल जग में पाप पुण्य जितने व्योहार।
सभी कराता है परमेश्वर जीव करैं होकर लाचार॥
करे ईश अरु भरे जीव दुःख यह ईश्वर में बड़ी कसर। सृ०।

घट २ व्यापी जब परमेश्वर तब मेरे घट वास जरूर।
मगर ईश के कर्तापन का मै खंडन करता भरपूर॥
तब तो अपना खुद खंडन वह करे मेरा नहिं जरा कसूर।
मगर मेरा अपराध कहो तब रहै नहीं ईश्वर का नूर॥
फिर कहते हो निराकार वह जिसका नहीं कोई आकार।
अंग हीन नर क्या कर सकता हाथ पैर बिन जब लाचार॥
ऐसी झूँठी बात नहीं माने कोई भी ज्ञानी नर। सृ०॥

एक बात का और गुणीजन जरा ध्यान से करिये ख्याल।

ईश्वर ने रच करके सृष्टी क्यों सर अपने धरा बवाल ॥
अपने सुख आनन्द में उसने व्यर्थ फिकर क्यों लीना डाल ।
हुआ फायदा क्या ईश्वर को फैलाया यह माया जाल
अगर कहोगे ईश्वर ने रच जग को हुनर दिखाया है
मैं हूं ऐसा बली गुणी जन मेरी यह सब माया है
तब तो करतब उन्हें दिखाया खुद ही जिन्हें बनाया है ।
बड़ा घमंडी मानी है जो जगका जाल बिछाया है ॥
किस कारण से दुनियां को रच किया ईश ने प्रगट हुनर ।सृ०॥

कर्त्तापन का कहा हाल अब हर्त्तापन का सुनो जिकर ।

अपने हाथ बना कर वस्तु नहीं हरै कोइ ज्ञानी नर ।।
अगर चतुर नर किसी वस्तु को बना बनादे खंडित कर ।
उसे कहै सब मूरख दुनियां यह तो आती साफ नजर ॥
लिख कर साफ इबारत को जो मेटै अपने हाथ बशर ।
समझो उसको गलत इबारत या कुछ उसमें रही कसर ॥
अरे भाई जो कर्म करोगे उसका फल भोगोगे आप ।
कहै शास्त्र सुत करै भरै सुत बाप करै सो भोगे बाप ।।
भक्तों के कारण परमेश्वर नहीं माफ करता है पाप ।
दोष लगाओ मत ईश्वर को वरना भोगोगे संताप ॥
पक्षपात को तज कर ज्ञानी यही बात लो मन में धर । सृ० ।

है, नहीं ईश्वर कर्ता हर्ता जगत जीवका आदि न अंत ॥
निज २ कर्म योग से सुख दुख पावे जीव जगत अमंत।
नहिं ईश्वर कुछ दंड देत है नहीं ईश कुछ करत हरन्त ॥
राग द्वेष से रहित मोक्ष में अजर अमर ईश्वर भगवंत।
पाप करैं सो लहै जीव दुख पुन्य करै सुख लहै अपार ॥
पाप पुन्य के नाश करे पर वीतरागपन है सुख कार।
समझन कारण गुणी जनों के यह काफी हैं चंद सतर।
सृष्टी को रच जीव बनायें इस में सन्देह पड़े नजर ॥

इति

(ब्राह्मण लोग क्रोधित होकर नारदजी पर आक्रमण करतेहैं नारदजी भी लड़ते हैं। लड़ते२ नारदजी गिरते हैं। सब उन्हें मारना चाहते हैं। इतने मे रावण सेना सहित आकर उन्हें बचाता है दोनों ओर से युद्ध होता है)

ड्राप गिरता है।

अंक द्वितिय—दृश्य प्रथम

(ब्रह्मचारी और साधू दोनों आते हैं।)

ब्र०—कहिये, साधूजी कुछ देखा ?

साधु—देखा क्या, मैं तो दंग रह गया। आज तक मैं यही समझता था कि जैन लोग नास्तिक हैं। किन्तु अब मेरी

समझ में आगया कि उन्हें नास्तिक बताने वाले नास्तिक हैं। यज्ञ का वर्णन देख कर मेरी आंखें खुल गईं।

ब्र०—साधु जी लेखकने यह बहुत संक्षेप से रचा है। यदि आप जैनियों की पद्म पुराण को जिसे जैन रामायण भी कहते हैं। उसको पढें तो आप यह सारी जटायें वगैरह नोच कर फेंक दें।

सा०—धन्य है लेखक को जिसने ऐसा ग्रन्थ रचा। मैं उनके कार्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता हूं।

ब्र०—एक मनुष्य के कार्य से शिक्षा लेना यही उसकी प्रशंसा है खाली कहने से या ताली पीटने से प्रशंसा नहीं होती (पब्लिक से) सज्जनों यदि आप ने इसे ध्यान से देखा और सुना है और इसकी प्रशंसा करते हैं तो इससे कुछ शिक्षा लीजिये। महा निंद्य और त्यागने योग्य जो पदार्थ मांस मदिरा और मधू इनका त्याग कर दीजिये। जिससे आप लोगों की धर्म में रुचि बढे। कहिये साधूजी आगे आपकी क्या देखने की इच्छा है। पहले किस बात को दिखाया जाय ?

सा०—पहले हमारी इच्छा है कि जगत मान्य श्री हनूमानजी के माता पिता का तथा उनकी बाल्यावस्था का वर्णन किया जाय।

ब्र०—जैसा आप कहते हैं, वही होगा। किन्तु उनके माता पिता की वंश परम्परा के विषय में मैं कुछ बता देना चाहता हूं।

सा०—आप खुशी से बताइये।

ब्र०—जैसा मनुष्यों में अपवाद फैला हुआ है कि हनूमानजी बन्दर थे ये सर्वथा असत्य है। जिस प्रकार रावण राक्षस नहीं था किन्तु राक्षस वंशी था उसी प्रकार हनूमानजी भी बानर नहीं थे। किन्तु वानर वंशी एक बड़े पराक्रमी विद्याधर थे।

इनकी माता का नाम अंजना था। ये राजा महेंद्र की पुत्री थीं अपने समय की अत्यन्त अनुपम सुन्दरी तथा शीलवती थीं। इनका विवाह महाराजा प्रहलाद के पुत्र पवनकुमार से हुआ था। जब विवाह का निश्चय ही हुआ तब पवनकुमार छुपे तौर से अंजना को देखने के लिये अपने मित्र के साथ उपवन में गये। वहां देखा कि एक सखी उनकी बुराई कर रही है। इस पर अंजना के दुर्भाग्य से वह अंजना से अप्रसन्न होगये। और व्याह करके बाईस वर्ष तक उसकी सूरत भी न देखी। पती के इस प्रकार होने से अंजना जिस जिस प्रकार विलाप करती है। कौमिक के पश्चात उसे देखिये और सुनिये।

सा०—अच्छा अब चलिये। लोगों का दिल हमारी बातों से उकता रहा है। अब खेल प्रारम्भ होने दीजिये।

(दोनों जाते हैं)

अंक द्वितिय—दृश्य द्वितिय

(पर्दा खुलता है)

(बाबूजी मरे हुवे पड़े हैं। उनकी नई बहू उन्हें जोर जोर से पीट पीट कर रो रही है। सारा कुटुम्ब अपने अपने दुःखों को रो रहा है। अर्थी पर बाबूजी को सवार किया जाता है। चार आदमी लगते हैं। उनकी नई बहू पीछे चलती है। उसे छोटा लड़का रोक लेता है। और पकड़े रहता है। सब का सब कुटुम्ब पीछे २ चला जाता है। केवल वही दोनों रह जाते हैं)

लड़का—अब रोने से काम नहीं चलेगा। अब तो तुम्हें धीरज ही रखना पड़ेगा।

बहू—मेरा तो सुहाग ही आज उजड़ गया। मैं तो विधवा हो गई। अब मेरे लिये कोई भी सहारा नहीं रहा। ब्याह हुवे छ माह भी नहीं बीते कि मेरा सुहाग लुट गया। मैंने तो पती का कुछ भी सुख नहीं देखा।

ल०—माता मुझे पिताजी के मरने का इतना दुःख नहीं है जितना तुम्हारे विधवा होने का है। किन्तु वह तो बूढ़े थे। जब तक शरीर चल रहा था, चल रहा था। उन्हे तो एक न एक दिन मरना ही था।

प०—मेरे मा बापों ने मुझे यह नहीं देखा कि हम किसे दे रहे हैं। दुष्टों ने धन के लोभ में आकर मुझे इससे ब्याह कर सदा के लिये विधवा बना दी हाय अब मैं किस का सहारा पकड़ूं ?

(गिरती है। लड़का सम्हाल कर अपनी जंघा पर उसका सर रख लेता है। मुंह के आंसू पूंछता है। हवा करता है)

ल०—हे ईश्वर, क्या इन अबलाओं का भारत वर्ष से न्याय उठ गया ? बेचारी की जो आयू सुख भोगने की थी उसी में विधवा हो गई। बिना माता पिता का बच्चा और बिना पती की विधवा स्त्री जो दुख भोगती है उसे कोई नहीं जान सकता।

ब०—हाय, वीरसिंह ! मैं अब किस प्रकार अपना जीवन बिताऊंगी ?

वीरसिंह—माता. चिन्ता न करो। तुम मेरे पास सुख से रहो मैं यथायोग्य तुम्हारी सेवा करूँगा।

ब०—किन्तु तुम्हारी बहू मुझे अपने घर में कैसे रहने देगी ?

वी०—उसका कोई फिकर मत करो मैं सब भुगत लूंगा। अच्छा मैं अब जाता हूं। (जाता है)

ब०—वीरसिंह जैसा मनुष्य होना दुर्लभ है। बेचारा मुझसे कितना प्रेम रखता है।

वीरसिंह की बहू—(आकर) हां मैं भी जानती हूं जैसा प्रेम वो रखते हैं। मेरे सुसरे को तु खा गई अब हम लोगों के ऊपर मेहरबानी रखो।

ब०—अरी बहू ! तु कैसी बातें करती है। मुझे क्या ये अच्छा लगताथा कि मैं विधवा हो जाऊं।

वी०की०ब०—अच्छा क्या, तूतो पूरी डाकन है। तेरे बाप ने तुझे दो हजार में बेची है।

ब०—देख बहू ऐसा मत कह। मुझ दुखिया को और दुखी न कर।

वी० ब०—अब तो हमारी बातें भी छुरी सी लगती हैं। बस मेरे पती को फुसला रखा है। खबरदार जो मेरे घर में रही।

ब० तो मैं कहां जाकर रहूं ?

वी० ब०—चूल्हे में, भाड़ में, भट्टी में। और अगर कोई जगह न मिले तो कूवे में।

ब०—तो क्या मैं आत्महत्या करलूं।

वी० ब०—तेरे जीने से फायदा ही क्या है जो मरने से नहीं होगा।

बहू—नहीं ये तो कभी न होगा कि मैं आत्महत्या करलूं।

वीरसिंह की बहू—तो कहीं जा, घर २ भीख मांग लेकिन मेरे घर में तेरे लिये जगह नहीं है।

बहू—अच्छी बात है मैं जाती हूं। तुम सुखी रहना।

(चली जाती है)

वी० की ब०—अच्छा हुआ चली गई। खाली में ही सेर भर आटे का खरच पड़ा करता। रात दिन की हाय २ रहा करती। मैंने भी किस होशियारी से निकाली। वाहरी में। (भाग जाती है)

अंक द्वितिय—दृश्य तीसरा

(पर्दा खुलता है)

(अत्यन्त दुर्बल अवस्था में अंजना बैठी है। पास में बसन्त तिलका सखी भी बैठी है।)

अंजना—(रोती हुई) हाय, आज बाईस वर्ष बीत गये पती के दर्शन नहीं हुवे। माता पिता ने सोच विचार कर मेरे लिये बहुत योग्य वर ढूंढा है। मेरे पती महा निर्गुण हैं। मेरे पूर्व भव के कर्मों से मुझे दुःख मिल रहा है। क्या मैंने किसी के जोड़े में विघ्न डाला था? जिसका फल मैं भोग रही हूं। पती में मेरे कोई दोष नहीं वह तो सर्वथा गुणवान हैं।

बसंत तिलका—सखी अंजना, तुम स्त्री रत्न हो; पती

ने तुम्हें त्याग रखा है। वह इतना बड़ा उनका अपराध भुला कर तुम उलटी उनकी प्रशंसा कर रही हो। धन्य हो तुम्हें। तुम सरीखी स्त्री इस भारत माता की कोख में ही जन्म लेती हैं।

अंजना का गाना

कर्म ने मुझको रुलाया, हाय अबला जान कर।
मुझको प्रीतम ने तजी क्या, दोष मेरा मान कर॥
होगये बाइस बरस, मेरे विवाह को ऐ सखी।
क्या कभी मुझको पती, दर्शन न देंगे आन कर॥
हँस के ना बोले कभी, संग में न मिलकर बात की।
देखा नहीं मेरी तरफ, उनने कभी भी ध्यान धर॥

बसंत तिलका—सखी, धैर्य्य धरो। तुम बाइस बरस से रोते २ इतनी दुर्बल हो गई हो। न मालूम कब तक तुम्हारे भाग्य में और रोना लिखा है। किन्तु अब मुझे आशा होती है कि वह शीघ्र ही तुमसे मिलेंगे।

पवनँ जय—(आकर स्वगत) आज मुझे अपने जीवन में रणभूमी में जाकर कौशल दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ है। रावण वरुण से युद्ध कर रहा है। मैं आज उसकी सहायता के लिये जारहा हूं। मैं वरुण को दिखाऊंगा कि रावण से वैर

करने में क्या फल मिलता है। वीरों के लिये युद्ध से बढ़ कर प्रियवस्तु दूसरी नहीं है। हम रावण के अधिपत्य में हैं वह हमें अपना मित्र समझता है। मैं उसे मित्रता का पूरा साथ देकर दिखा दूंगा। वरुण को उसके चरणों पर न लेटा दूं ! तो मेरा नाम भी पवनकुमार नहीं है।

(अन्जना को देख कर चलते से रुक कर)

हे पापिनी तूने मुझे रण में जाते हुवे अपनी सूरत दिखा कर अपशकुन किया है।

(अंजना खड़ी होजाती है पती की ओर देखती है। प्रेम से गद्गद् होती है)

ओ दुष्टा तू बड़े घराने की बेटी होकर भी ढीट बनती है। मेरे सामने से नहीं हटती।

अंजना—आज मेरे अहोभाग्य हैं कि आपने मुझे दर्शन दिये और मुझसे बोले। आप कैसे भी कठोर बचन क्यों न बोलें वही मेरे लिये अमृत रूप है। मैं आपकी दासी हूं। आप मेरे पूज्य देवता हैं।

पवनकुमार—ओ कुल्टा नारी तुझे मुझको युद्ध में विलंब करते हुये लाज नहीं आती

अंजना—हे; प्राणनाथ, जब आप यहां विराजते थे तब भी मैं वियोगनी ही थी किन्तु आपके निकट होने से मेरे

हृदय को शान्ति थी। अब आप दूर जारहे हैं। मैं आपके विरह में कैसे जीऊंगी

पवन०—(अंजना को ठुकरा कर) चल हट कलंकिणी

(चले जाते हैं)

अंजना—हाय, गये, मेरे दिवाकर भगवान अस्ताचल की ओर चले गये न मालूम कब लौट कर आयेंगे। जिस प्रकार दिन, विना सूर्य के। रात्री, विना चन्द्रमा के। नहीं शोभती उसी प्रकार मेरा जीवन भी इस संसार में निष्फल है।

बसंततिलका—सखी धैर्य धरो! इस संसार में दुख के बाद सुख और सुख के बाद दुख अवश्य आता है। अविनाशी सुख तो केवली भगवान को ही प्राप्त होता है। तुम्हारे बचपन के दिवस सुख से कटे थे। अब तुम्हें दुख मिल रहा है। याद रखो। सुख भी अवश्य ही प्राप्त होगा।

गाना

सदा दिन एकसे बहना, किसी के भी नहीं रहते।
जगत प्राणी कभी सुखपा, कभी अति दुःख हैं सहते॥
ये हैं संसार धोखे का, नहीं इसका भरोसा कुछ।
कभी होकर मगन फूलें, कभी आंखों से जल बहते॥

न घबरावो कभी दुख में, घड़ी सुख की भी आयेगी।
कभी सुख है कभी दुखहै, यही ज्ञानी सदा कहते॥

पर्दा गिरता है।

अंक द्वितिय—दृश्य चौथा

(पवनकुमार और प्रहस्त दोनों आते हैं)

पवनकुमार—मित्र प्रहस्त, हम लोग यहां मानसरोवर पर ठहरे हैं, इसकी भूमी को देख कर मुझे विवाह समय की याद आरही है। अहा उस चकवी को देखो। अपने प्रीतम के न मिलने से कैसी तड़फ रही है। जब इसको पति के एक रात के विरह में ही इतनी तड़फन है तो हाय, उस अंजना सती को जिसे छोड़े हुवे बाइस बरस होगये क्या ढंग होगा। मैं अत्यन्त मूर्ख हूं जो सखी के अपराध पर उस अबला को छोड़े हुवे हूँ। हाय, मेरे बिना वह सती किस प्रकार जीती होगी। मैने उसे इतने कठोर शब्द कहे किन्तु उसने मेरी प्रशंसा ही की। वह सच्ची पतीव्रता स्त्री है। मैं बिना उससे मिले अब आगे नहीं बढ़ सकता। रण से लौट कर आने तक वह अवश्य ही अपने प्राण दे देगी।

प्रहस्त—मित्र, तुमने यह बिचार बहुत ही उत्तम किया है। बेचारी अंजना के आज शुभ कर्म का उदय है। जो तुमने ऐसा

विचार किया । किन्तु तुम माता पिता से रण के लिये आज्ञा लेकर आये हो । तुम्हारा अब लौट कर जाना उचित नहीं ।

पवन—किन्तु मेरा तो उससे मिले बिना जीना ही दुर्लभ है । अहा, कैसी प्यारी सूरत है । वह कितनी सुन्दर है । संसार में उसकी बराबरी करने वाली दूसरी नहीं मिलेगी। कितनी कोमल है मानो सारी कोमलता की वह कोष है ।

प्रहस्त—मित्र आकुलित न होइये मैं अभी इसका उपाय करता हूं । हम लोगों को यहां से छिपे तौर से जाना पड़ेगा । मैं अभी सेनापती को बुलाता हूं । आप उससे कहना कि हम सुमेरु पर्वत की यात्रा के लिये जारहे हैं । तुम सेना का ठीक प्रबन्ध रखना ।

पवन—अच्छी बात है जाओ ।

(**प्रहस्त जाता है । सेनापती सहित आता है ।**)

सेनापती—(प्रणाम करके) श्रीमान् ने सेवक को १ पहर रात्री गये किस लिये स्मरण किया है ?

पवन—हम लोग सुमेरु पर्वत की यात्रा के लिये जारहे हैं । सुबह होने तक लौट आयेंगे । तुम सेना का प्रबन्ध ठीक रखना ।

सेनापती—जैसी आज्ञा ।

(**सेनापती रह जाता है । दोनों चले जाते है**) **पर्दा गिरता है**

अंक द्वितिय—दृश्य पांचवा

साधू और ब्रह्मचारीजी आते हैं।

ब्रह्मचारी—कहिये साधुजी कुछ देखा ?

सा०—मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि रावण को सहायता देने के लिये हनूमानजी के पिता पवनकुमार क्यों गये ?

ब्र०—साधुजी, मालूम होता है आपके हृदय से अभी यह नहीं गया है कि रावण राक्षस था और हनुमान वानर थे। मैं आपको स्पष्ट कर चुका हूं कि न तो रावण राक्षस ही था और न हनूमान वानर ही थे। राजा लोग हमेशा संकट में एक दूसरे की सहायता करते हैं। रावण ने राजा प्रह्लाद के पास सहायता के लिये पत्र भेजा था ; सो उसी के लिये वह गये थे।

सा०—अब मैं समझ गया। अगाड़ी तुम क्या क्या और दिखाओगे।

ब्र०—अब हम पहले पवनकुममार का अंजना से मिलन दिखायेंगे। फिर किस प्रकार सासू के दोष लगाने से गर्भवती अंजना घर से निकल कर जंगलों में दुख पाती है। और वहां उसके हनुमानजी जन्म लेते हैं ये दिखायेंगे। इसके पश्चात हनूमानजी की बाल्यावस्था का वृतान्त स्पष्टतया दिखाकर इस भाग को समाप्त करेंगे। अगले भाग में राम के पिता दशरथ का वृत्तान्त और राम की उत्पत्ती दिखायेंगे।

सा०—तो चलिये दिखाइये। मेरा चित्त देखने के लिये उमंगें ले रहा है।

[दोनों जाते हैं पर्दा खुलता है एक पलंग पर अन्जना सो रही है। पास में ही पृथ्वी पर बसंततिलका सो रही है। अन्जना करवटें बदल रही है। हाय, पतिदेव, कर रही है प्रहस्त अन्दर आता है। अन्जना उठ कर बैठती है बसन्त तिलका को जगाती है]

अंजना—बसंततिलका, बसंततिलका, उठ जाग, देख रात्री के समय में यह कौन पर पुरुष मेरे घर में घुस आया।

[बसन्ततिलका जागती है। आंखे मलती हैं। प्रहस्त हाथ जोडता है]

प्र०—हे सती मैं तुम्हारे पति का मित्र प्रहस्त हूं। तुम डरो मत। मैं तुम्हारे पति के आने की सूचना लाया हूं।

अंजना—मैं महा पुण्यहीन हूं। पती के सुख से कोसों दूर हूं। मेरे ऐसे ही पाप कर्म का उदय है। तुम क्यों मेरी हँसी करते हो। सच है जिसको पती ने ही बिसार दिया उसकी कौन हँसी न करेगा। मैं अभागिनी परम दुखी हूं। मेरे लिये इस सन्सार में सुख कहां ?

प्र०—हे सती रत्न, अब तुम्हारे अशुभ कर्म के उदय गये तुम्हारे प्रेम का प्रेरा हुआ तुम्हारा प्राणनाथ तुमसे मिलने के लिये आया।

अंजना—हैं ! पतिदेव, पतिदेव, (दौड़ कर उनसे चिपट जाती है) बताओ, बताओ, अब तक तुम मुझसे क्यों नहीं बोलते थे। क्यों रूठे हुवे थे। (रोती हुई)

(प्रहस्त और बसन्ततिलका बाहर चले जाते हैं)

पवन—(आंखों में जल भर कर) प्रिये, मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने अभी तक तुम्हें नहीं पहचाना था। चकवी को देखने से तुम्हारे लिये मेरे हृदय में प्रेम के बादल उमड आये।

अंजना—अब मैं आपको अपने से अलग न होने दूंगी।

पवन—नहीं प्रिये, मैं रण में जाते हुवे तुमसे मिलने आया हूं। मुझे माता पिता देखेंगे तो मेरी हंसी करेंगे। मुझे सूर्य निकलने से पहले यहां से चला जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(दोनों पलंग पर बैठ जाते हैं। पर्दा गिरता है)

अंक द्वितिय—दृश्य छटा

(रावण और वरुण आते हैं)

रावण—दुष्ट वरुण ! तूने मेरी आज्ञा का लोप किया है समझले अब तेरी मृत्यु निकट है।

वरुण—ओ अभिमानी रावण, जा, युद्ध में तेरे जैसे कायरों का काम नहीं है। यह युद्ध भूमी वीरों के लिये है।

रावण—तुम्हें अभी मेरे बल का पता नहीं है।

सभी भूमी हिला डालूं, मैं अपने शस्त्र बाणों से।

गिरा दूं पर्वतों को मैं, सुखा सागर दूं बाणों से ॥
पता तुमको नहीं कैलाश को मैंने उठाया था ।

वरुण—पता है बालि मुनि ने एक गूंठे से दबाया था ॥
करी तारीफ उसकी लाज तक तुमको न आई है ।
न कर अभिमान उस पर शक्ती जो देवों से पाई है ॥

रावण—यदि बाली मुनि ने दबादिया तो क्या हुआ।
जो विजयी इन्द्रियों के कौन उनसे जीत सकता है ॥
जिन्हें है आत्म बल उनसे न कोई जीत सकता है ।

यदि तुम देवीशक्ती का ताना देते हो तो मैं तुमसे युद्ध करने में देवी शक्ती का प्रयोग नहीं करूंगा। इन भुजाओं के बल से ही तुझे जीतूंगा तभी मेरा नाम रावण है ।

वरुण—मैं तेरी गीदड़ धमकी में आने वाला नहीं हूं । यदि कुछ बल रखता है तो मेरे सामने आकर दिखा । वीरों की तरह युद्ध में लड़ कर अपना कौशल दिखा ।

रावण—अधिक बढ़ कर न बोल । तुझे अपने सौ पुत्रों का घमंड है । मेरे आधीनस्थ सब राजाओं को इकट्ठा हो जाने दे । सब आ चुके हैं केवल राजा प्रहलाद अभी तक नहीं आये हैं

पवन— (आकर) राजा प्रहलाद का पुत्र मैं पवनकुमार उपस्थित हूं । मेरे लिये आज्ञा कीजिये कि इसका अभिमान चूर्ण करूं । वीर लोग अपनी भलाई अपने मुख से नहीं करते उनकी

वीरता की परिक्षा रण क्षेत्र में होती है। जो गर्जते हैं वह बरस ते नहीं। जो बरसते हैं वह गर्जते नहीं।

रावण—पवनकुमार, तुमको मैं धन्यवाद देता हूं। जो तुमने समय पर आकर मेरी सहायता की। (वरुण से) अब मेरे सब बाहू मेरे साथ हैं। आ युद्ध कर।

वरुण—आज बड़े दिनों के बाद मुझे यह मौका मिला है कि मैं तुझ जैसे वीर पुरूष से युद्ध करने के लिये उद्यत हुआ हूं।

रावण—हे सिद्ध भगवान मैं अपनी कार्य सिद्धी के लिये तुम्हें नमस्कार करता हूं। ॐ नमः सिद्धेभ्य।

(युद्ध का बाजा बजना प्रारम्भ होता है। रावण और वरुण आपस में लड़ रहे हैं। पवनकुमार भी दूसरे योद्धाओं से लड़ रहे हैं। युद्ध का दृश्य भयानक होता है। पर्दा गिरता है)

द्वितिय अंक समाप्त

अंक तृतिय—दृश्य प्रथम

[भयानक वन में पर्वत के नीचे एक शिला पर अंजना बच्चे सहित लेटी हुई है। बसन्तमाला उसके पैर दबा रही है।]

बसन्तमाला—सखी, कर्मों की बड़ी विचित्र गती है। चारण मुनि ने बताया कि तुमने पूर्व भव में जिन प्रतिमा का

अविनय किया था उस ही का फल तुम्हें मिल रहा है। उधर सासू ने दोष लगा कर घर से निकाली। पिता के घर गई वहां भी शरण न मिली। यहां आये मुनी महाराज के दर्शन से कुछ शान्ति मिली। फिर सिंह के पन्जे से बहुत कठिनाई से बचे। ये सब कर्मों का फल है।

अंजना—सखी, मैं तुम्हारी बहुत आभारी हूं कि तुम मुझे हर संकट में सहारा देती हो। हा मेरा भाग्य, जब तक पति देव की कृपा नहीं थी तब मैं किस प्रकार व्याकुल रहती थी। किन्तु फिरभी घर में रहती थी। पति देव की कृपा हुई जिस प्रकार वर्षा ऋतु में कभी सूर्य उदय होकर फिर छिप जाता है। अब मैं बन बन मारी फिर रही हूं।

बसन्तमाला—देखो, सखी ऊपर कोई विद्याधर चला जा रहा है। मुझे तो इससे भय मालूम होता है।

अंजना—हाय, अब यह अवश्य ही मेरे इस पुत्र रत्न को उठा कर लेजायगा। हाय, मेरा कैसा बुरा भाग्य है।

(रोती हुई)

(इतने ही में हनूरुह द्वीप का राजा प्रतिसूर्य। उसकी राणी और ज्योतिषी आते हैं।)

राजा—(अंजना से) मैं ऊपर विमान में बैठा हुआ जा

रहा था। आपका रुदन सुन कर मेरा कलेजा भर आया। मैंने विमान पृथ्वी पर उतारा। आप किसी उच्च कुल की पुत्री तथा वधू प्रतीत होती हो। कृपा करके आप मुझे अपने बन में आने का कुल हाल बताइये।

अंजना—क्षमा कीजिये, आपत्ती के समय में अपने कुल का नाम बताना उसका नामडुबाना है। मैं अपने मुखसे न कहूंगी।

राजा—(बसन्ततिलका से) ये नहीं बतातीं तो कृपया आप बताइये ?

वसन्तमाला—ये राजा महेंद्र की पुत्री अंजना हैं। आदित्यपुर के राजा प्रहलाद के लड़के पवनकुमार इनके पति हैं। उन्होंने विवाह से बाइस बरस इन्हें छोड़े रखा। किन्तु जब वह रावण की सहायता के लिये जारहे थे। तब मानसरोवर के तट पर चकवी की विह्वलता को देख कर उन्हें अंजना से प्रीति उपजी। वह रात्री में ही छुपे २ अंजना के महल में आये। और अपने कड़े और मुद्रिका इन्हें दे गये। जब इन्हें ६ माह बीत गये। सासू ने इन्हें गर्भवती देख मुद्रिका आदि पर विश्वास न कर इन्हें घर से निकाल दिया। पिता के पास गई वहां भी इन्हें शरण न मिली ! यहां आई इस गुफा में चारण मुनि विराजे थे। उनसे पूर्व भव पूंछा। जब वह यहां से चले गये, तब हम दोनों उसमें रहीं हमें एक सिंह ने सताया जिससे

एक देव ने बचाया ।

राजा—पुत्री, अंजना मैंने अभी तक तुम्हें नहीं पहचाना था सो क्षमा चाहता हूं । तुम मेरी भानजी हो । मैं हनूरूह द्वीप का राजा प्रतीसूर्य हूं ।

अंजना—(एक दम उठकर) हैं, क्या आप मेरे मामा हैं ? (रोती हुई, मामा के पैर पकड़ती है ।) (मामी उस बच्चे को उठा लेती है)

बसन्तमाला—हे मामीजी, आपके साथ में यह ज्योतिषी जी हैं । कृपया इनसे कहिये कि पुत्र के ग्रह बतावें ।

ज्योतिषी—पुत्री, तुम मुझे यह बताओ कि इसका जन्म किस समय का है ।

बसन्तमाला—आज अर्ध रात्रीको पुत्रका जन्म हुआ है ।

ज्योतिषी—(पत्रा खोल कर) सुनिये, " चैत्र बदी अष्टमी की तिथि का जन्म है । श्रवण नक्षत्र है । सूर्य मेष का उच्च स्थानक विषै बैठा है । और चन्द्रमा वृष का है । और मंगल मकर का है । बुध मीन का है । बृहस्पती कर्क का है । सो उच्च है । शुक्र तथा शनिश्चर दोनों मीन के हैं । सूर्य पूर्ण दृष्टि से शनी को देख रहा है । और मंगल दश विश्वा सूर्य को देखै है । और ब्रहस्पती पन्द्रह विश्वा सूर्य को देखै है । और सूर्य दश विश्वा ब्रहस्पती को देखै है । चन्द्रमा को पूर्ण दृष्टि से

ब्रहस्पती देखे है। ब्रहस्पती को चन्द्रमा देखे है। ब्रहस्पती शनिश्चर को पन्द्रह विश्वा देखे है। और शनिश्चर ब्रहस्पती को दश विश्वा देखे है। और ब्रहस्पति शुक्र को पन्द्रह विश्वा देखे है। और शुक्र ब्रहस्पतीको पंद्रह विश्वा देखे है। इसके सब ही ग्रह बलवान बैठे हैं। सूर्य और मंगल दोनों याका अद्भुत राज्य बतलाते हैं। ब्रहस्पति और शनी बतालाते हैं कि ये वैराग्य को धारण कर मुक्ती पायेंगे। यदि एक ब्रहस्पति ही उच्च स्थान बैठा होय तो सर्व कल्याण की प्राप्ती का कारण है। और ब्रह्म नामा योग है। और मुहूर्त शुभ है। इस लिये यह अविनाशी सुख को प्राप्त करेगा। इसके सबही ग्रह बहुत बलवान हैं। यह बहुत पराक्रमी बालक है।

राजा—आपने इस पुत्र के नक्षत्र बताये। बड़ा उपकार किया। लीजिये यह भेंट स्वीकार कीजिये। (गले का हार देता है) (अंजना से) चलो पुत्री तुम मेरे साथ हनुरूह द्वीप को चलो वहीं यह पुत्र वृद्धी पायेगा।

अंजना—मैं अपने को धन्य समझती हूं जो आप मुझे अपना सहारा दे रहे हैं। हे पुत्र तुम चिरजीवी होओ। तुम्हारे पैदा होते ही मेरे सारे दुःख नष्ट होते दिखाई दे रहे हैं।

(सब चले जाते हैं। कुछ देर बाद उस पर्वत पर हनूमान आकर गिरते हैं। पर्वत फट जाता है। हनूमान एक

शिला पर पड़े हुवे पैर का अंगूठा चूसने लग जाते हैं ऊपर से सब हा हा कार मचाते हैं। अंजना रोती है)

अंजना—हाय, अनेकों दुख सह कर यह पुत्र प्राप्त हुआ था। मैं अभागिनी इसे भी खो बैठी। हाय मेरा कैसा बुरा भाग्य है। (सब उतर कर आते हैं) (राजा पुत्र को देख कर आश्चर्य करता है)

राजा—धन्य है इस बालक को। इसके गिरने से पर्वत चूर २ होगया। यह अवश्य ही चर्म शरीरी और मोक्ष का गामी है।

अंजना—(गोद में उठा कर) मेरे लाडले बच्चे, (आंसू पूंछती हुई मुंह चूमती है)

राजा—यह बालक बन्दनीक है। हम सब इसको नमस्कार करते हैं। मैं इसका नाम श्री शैल रखता हूं। क्योंकि इसके गिरने से शैल जो पर्वत वह चूर २ होगया।

अंजना—यह हनूरूह द्वीप में वृद्धि पाने जा रहा है। इस लिये मैं इसका नाम हनूमान रखती हूं।

ज्योतिषी—आप लोग कुछ भी नाम रखें। मैं तो इसे बज्रांग कह कर पुकारूंगा। क्यों कि मुझे इसके समान बल में इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं दीखता।

बसन्तमाला—ऐसे होनहार बालक को जिस नाम से भी पुकारा जाय वही इसके लिये उत्तम है। ये महावीर। है

राजा—अच्छा चलो, अब हम सब लोग चलें।

(सब चले जाते हैं। पर्दा गिरता है)

अंक तृतिय—दृश्य द्वितिय

कौमिक

(अगाड़ी एक लंगड़ा घिसटता चल रहा है। उसके पीछे उसकी अन्धी औरत है उसके पीछे उसका अन्धा लड़का है)

गाना

देदे देदे रे बावा देदे।
अन्धों को पैसा देदे।
मुहताज को पैसा देदे।
लंगड़े को पैसा देदे।
देदे देदे रे बावा देदे।

(फटे कपड़े पहने हुवे हाथ में लकड़ी लिये हुवे अन्धी के रूप में बहू पैसा, मांगती हुई आती है। उसकी लकड़ी लंगडे के लग जाती है। लंगड़ा उससे लकड़ी छीन कर उसे मारता है।)

बहू—अरे कोई बचाओ २ इस दुष्ट ने मुझे मार डाला हायरे, बारे, मरी रे।

लोभीलाल—अन्धी बूच, तुझे दीखता नहीं। सामने

लकड़ी घुमाती हुई चलती है ।

औरत—अगर मैं सम्रकी होती तो चूंडा पकड़ कर घसीटती ।

वहू—अरी मरी री, हायरी, कोई बचाओ ये मुझ अन्धी को मारे डालते हैं ।

१ आदमी—(आकर) ये क्या हल्ला मचा रखा है ? क्यों भाई तुम इस बेचारी को क्यों मारते हो ।

लोभीलाल—अजी साहब, ये औरत देख कर भी नहीं चलती ।

बहू—देखकर चलती तो अन्धी ही क्यों कहाती ।

आदमी—क्यों भाई तुम कौन हो और तुम्हारी ये दशा किस प्रकार से हुई ।

लोभीलाल—क्या कहूं, एक बार मैं सैकिंड क्लास में बैठा हुआ जा रहा था, मेरे कपड़े मैले देखकर एक अंग्रेजने मुझे उसमें से धक्का दे दिया सो मेरी टांग टूट गई । उसमें सारा रुपया खर्च होगया ।

आदमी—और तुम्हारा ये लड़का और स्त्री कैसे अन्धी होगई ।

लोभीलाल—ये चाट बहुत खाते थे सो इसकी आंखें खराब होगई । मेरे पास इस समय एक छदाम भी नहीं है ।

आदमी—(बहू से) क्यों वहन तुम किस प्रकार इस दशा को पहुंची !

बहू—ये दुष्ट मेरे माता पिता हैं। इन्होंने मुझे दो हजार में एक बूढ़े से व्याह दी मेरी बड़ी बहनों को भी इसने बूढ़ों से व्याही उसीका नतीजा ये इस रूप में भुगत रहे हैं। व्याहके ६ महीने बाद ही में मेरा पति मर गया मैं विधवा होगई।

आदमी—हाय, हाय, मैं भारत की अवलाओं की यह क्या दशा सुन रहा हूं।

औरत—उसके तीनों लड़कों ने मुझे घर से निकालदी। मेरी आंखें फूट गईं मैं अन्धी हो गई मुझे कोई सहारा न रहा और आज मेरी यह अवस्था हो रही है।

आदमी—हाय, आज. भारत की क्या दुर्दशा हो रही है। बूढ़े कन्याओं से विवाह करके उन्हे विधवा बनाते हैं जिसका एक साक्षात परिणाम यह उपस्थित है। अन्धे माता पिता इस वात को नहीं सोचते कि अगाड़ी क्या होना है। लालच में आकर मुफ्त का पैसा खाने के लिये बूढ़ों के साथ कन्याओं को वेच देते हैं। आज कल वैवाहिक दोष दिनों दिन उन्नती कर रहे हैं। बी. ए. पास लड़की को उसका बाप किसी बनिये के हाथ व्याहता है जो नित्य प्रति अपने पती से बैठकें लगवाती हैं। और उसे अपना गुलाम बना कर रखती हैं। जब तक यह

कुप्रथायें बन्द न होंगी भारत की उन्नति होना असम्भव है। माता पिता जिसके निर्दोष होते हैं सन्तान भी हनूमान के समान निर्दोष पैदा होती है।

पर्दा गिरता है।

अंक तृतिय—दृश्य तृतिय

(अन्जना और पवनकुमार बैठे हुवे हैं)

अंजना—मैं आपके दर्शन पाकर अपने सारे दुख भूल गई।

पवन—मैं क्षमा चाहता हूं कि तुम्हें मेरे ही कारण इतने कष्ट उठाने पड़े। दुष्ट माता ने तुम्हें घर से निकाला। आह जब मैं तुम्हारे दुखों के ऊपर ध्यान करता हूं तो मेरा दिल दहलता है वह शेर कितना भयानक होगा?

अंजना—मेरे तो यह सब दुष्कर्मों का उदय था जो मैंने अभी तक भोगे! किन्तु आपसे मिलने की आशा में मैं अपने प्राण रखे रही। आपने मेरे लिये कितने कष्ट सहे। बन २ में मुझे ढूंढते फिरे। मेरे विरह में सब कुछ त्याग दिया आपका मेरे ऊपर अतुल्य प्रेम है।

पवन—तुम्हारे मामाजी यदि न पहुंचते तो सचमुच मेरी जान चली जाती उनकी मेरे ऊपर कितनी असीम कृपा है! मुझे वह यहां लाये तुमसे मिलाप कराया।

अंजना—पुत्र हनूमान का वैभव तो आप सुन ही चुके होंगे। जिस समय वह पर्वत पर गिरा था उस समय मैं बिल्कुल निराश होगई थी। किन्तु उसमें न मालुम कहां का बल है कि उसके गिरते ही पर्वत चूर २ होगया। देखा तो शिला पर लेटा हुआ अंगूठा चूस रहा था।

हां मैं एक बात तो आपसे पूछना भूल ही गई थी।

पवन—वह क्या? पूछो मैं उत्तर दूंगा।

अंजना—आप अपने युद्ध का तो वर्णन कीजिये।

पवन—युद्ध में जब तक मैं नहीं पहुंचा था रावण ने शुरु नहीं किया था। मेरे जाते ही युद्ध शुरु हुआ। प्रथम रावण कुछ देर वरुण से लड़े। इतनी देर में मैंने उसके बहनोई खर-दूषन को वरुण के बन्धन से छुड़ाया। फिर रावण के थक जाने पर मैंने वरुण को पकड़ा और रावण को वरुणने शीश झुकाया।

अंजना—मैं आपको आपकी विजय पर बधाई देती हूं।

पवन—उस विजय की क्या बधाई देनी हो। बधाई इसकी दीजिये कि मैंने तुम्हें खोज निकाला।

अंजना—क्षमा कीजिये, इसकी बधाई मैं आपको कदापि न दूंगी। आप अभी कह चुके हैं कि यदि मेरे मामा वहां न पहुंचते तो आप अपनी जान दे देते। इसमें आपकी कोई नयी चतुराई नहीं रही। (हंस देती है)

पवनकुमार—प्रिये, मैं तुमसे किसी प्रकार नहीं जीत सकता। तुम जगत श्रेष्ठ हनूमान की माता हो।

अंजना—हूं, अब और किसी प्रकार वश नहीं चलता तो बनाना ही शुरू कर दिया। मैं तो हनुमान की माता ही हूं। आपतो उसके पिता हैं।

पवनकुमार—भले ही हों किन्तु नारियों का ही नाम उच्च रहता है। हर एक कोई अंजनीकुमार ही कहेगा। पवनसुत कहने वाले बहुत कम मिलेंगे।

अंजना—ऊँ, आपतो मुझे लजाने लगे। कुमार वास्तव में आप बड़े चालाक हो।

पवनकुमार—इस समय तो कुछ गाना सुनने के लिये मन चाहता है यदि कृपा हो तो मेरे लिये बहुत हर्ष की बात है।

अंजना—यदि आप भी मेरे साथ गावें तो मैं गा सकती हूं। अन्यथा नहीं।

पवन—अच्छा छेड़ो, मैं तुम्हारा साथ दूंगा।

गाना

अंजना—आज मोर धाम आये मोरे प्यारे संय्या।

जीत के लड़ाई आये, मोरे प्यारे संय्या।

पवन—बतियों के तीर मारो, नयनों से प्रेम डारो।

दिल को लुभाओ प्रिये, डाल गल बंय्या ॥
अँजना--आज मोर धाम आये, मोरे प्यारे संय्या।
चकवी चकोर पाया, कमल को रवी आया॥
दिल को खिलाया मोरे, देऊं मैं बधय्यां ॥ आज॥
दोनों--आओ चलो पार करें जीवन की नय्या।
बैठ के उसी में दोनों, डाल गलबंय्या ॥ आज ॥

पर्दा गिरता है

अंक तृतिय—दृश्य चौथा

(राजा प्रतिसूर्य और पवनकुमार आते हैं)

राजा—देखो पुत्र पवनकुमार तुमने जिसे पहले युद्ध में हराया था उसी वरुण ने फिर उत्पात मचाया है। वह अब फिर रावण के विरुद्ध होगया है। रावण का पत्र हमारे पास आया है। उसने हमें सहायता के लिये बुलाया है। तुम राज काज सम्हालो मैं युद्ध में सहायतार्थ जाता हूं।

पवनकुमार—आप मेरे पिता के समान हैं। यह नहीं हो सकता कि मैं घर में कायर बन के बैठूं और आप युद्ध क्षेत्र में जायें। आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं जाकर रावण की

सहायता करूं । और उस उपद्रवी वरुण को बांधूं ।

राजा—नहीं मैं तुम्हें कदापि आज्ञा नहीं दे सकता। मैं वृद्ध हूं यदि लड़ते हुवे मारा भी गया तो कोई हानी नहीं है। किन्तु तुम्हारे पीछे तुम्हारे माता पिता मेरा अपवाद करेंगे कि मैंने यहां रह कर तुम्हें युद्ध में भेजा।

हनूमान—(आकर) नानाजी, यदि आप पिताजी को युद्ध में जाने की आज्ञा नहीं देते हैं तो मुझे आज्ञा दीजिये। मैं जाकर रावण की सहयता करूं।

राजा—अरे पुत्र हनूमान, तुम कैसी बालकपन की बात करते हो। अभी तुम्हारी आयु केवल सोलह वर्ष की है। तुम अभी बच्चे हो। युद्ध में जाने योग्य नहीं हो।

हनूमान—नानाजी, यह न सोचिये कि मैं बच्चा होने से युद्ध के योग्य नहीं हूं। शेर का बच्चा ही हाथियों के समूह को भगा देता है। मैं अपने मुंह से अपनी बड़ाई नहीं कर सकता। आप युद्ध के पश्चात स्वयम् रावण से पूछ लेना। मैं आपसे युद्ध के लिये हथ जोड़कर आज्ञा मांगता हूं। युद्ध का नाम सुन कर मेरी भुजायें फड़क रही हैं। मेरा खून उबल रहा है। विना युद्धक्षेत्र देखे मेरी विद्या अधूरी है मुझे वह पूरी करने दीजिये।

पवनकुमार—पुत्र मैं जानता हूं कि लड़कपन का जोश ऐसा ही होता है किन्तु तुम्हें युद्ध के लिये आज्ञा नहीं दे सकता।

हनूमान—आप पिता होकर अपने पुत्र के बल पर विश्वास नहीं करते ये बड़ा आश्चर्य है। आपसे मैं बार बार प्रार्थना करता हूं कि मुझे आज्ञा दीजिये।

पवनकुमार—यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं अपनी ओर से तुम्हे आज्ञा देता हूं किन्तु अपनी माता की और अपने नानाजी की आज्ञा लेना परम आवश्यक है।

हनूमान—(राजा के पैर पकड़ कर) नानाजी मैं आपसे विनय पूर्वक आज्ञा मांगता हूं। आप मेरे उत्साह को भंग न कीजिये।

राजा—अच्छा मैं भी तुम्हें आज्ञा देता हूं। किन्तु सम्हल कर लड़ना। मैं फौज तैयार कराये देता हुं। इतने तुम अपनी माता से आज्ञा मांगो।

(दोनों चले जाते हैं। हनूमान रह जाते हैं)

हनूमान—क्षत्रियों के लिये युद्ध क्षेत्र विनोद का स्थान है। आज मेरा परम सौभाग्य है। आज मुझे युद्ध में जाकर लड़ने की आज्ञा मिली है। मैं अपने धन्य भाग्य मानता हूं। जो ऐसे नामी पुरुष के विरूद्ध में मैं युद्ध करूंगा। मैं अपने को रावण

का सच्चा सहायक सिद्ध कर के दिखा दूंगा। लोग कहते हैं कि लड़के कुछ नहीं कर सकते मैं आज उन्हें दिखलाउंगा कि लड़के कितना बड़ा कार्य कर सकते हैं। एक भारी से भारी शत्रू को जीत सकते हैं। चलता हूं। माताजी से आज्ञा लेकर युद्ध के लिये प्रस्थान करुंगा। (सामने देख कर)

अहा, माताजी तो यहीं चली आरही हैं। आज मेरे लिये सब मँगल हो रहे हैं।

(अंजना वसन्तमाला सहित आती है)

अंजना—कहो, पुत्र आज तुम्हारे मुख पर यह वीरता कैसी झलक रही है?

हनूमान—माताजी के तथा मौसीजी के चरण कमलों में मेरा प्रणाम हो।

अंजना—पुत्र तुम चिरंजीव होवो।

वसन्तमाला—जिनेन्द्रदेव तुम्हारे मनोरथ सफल करें।

हनूमान—माता आज मुझे नानाजी से और पिताजी से रावण को सहायता देने युद्ध में जाने के लिये आज्ञा मिली है। मैं आपसे आज्ञा लेने जा ही रहा था। किन्तु आप आगईं।

अंजना—पुत्र मैं तुम्हें युद्ध के लिये कैसे आज्ञा देदूं। तुम अभी बालक हो। युद्ध के ढंग को नहीं समझते। तुम अपनी इन कोमल अंगुलियों से कैसे तीर छोड़ोगे?

हनूमान—माताजी ये अंगुलियां देखने और छूने में कोमल हैं किन्तु शत्रू के लिये युद्धक्षेत्र में शेर की अंगुलियों के समान कार्य करेंगी। मनुष्य का अनुभव जभी बढ़ता है जब वह कार्य क्षेत्र में पग रखता है। घर में बैठे २ आज तक कभी भी किसी का अनुभव और यश नहीं बढ़ा हमें अपनी आयु के ऊपर ध्यान न देना चाहिये। किन्तु हमें क्या करना है इस पर ध्यान देना चाहिये। जिस समय बच्चा जन्म लेता है, उस समय उसे यह निश्चय है कि मुझे वृद्ध होना है। उसी दिन से वह एक २ दिन बढ़ता चला जाता है। जो मनुष्य कार्य में पीछे नहीं हटते वही मनुष्य कहलाते हैं, शेष मनुष्य नहीं। मनहूस कहे जाते हैं। आप वीर पुत्री, वीर पत्नी और वीर माता हैं! मुझे युद्ध में भेजने के लिये आप अपने हृदय में सँकोच न कीजिये मुझे आज्ञा दीजिये।

अंजना—मेरे हृदय में इस समय ममता और कर्तव्य में युद्ध मचा हुआ है। ममता कहती है, नहीं मैं अपने पुत्रको अपनी आंखों से ओझल न होने दूंगी। इतनी कठिनाई से प्राप्त हुवे रत्नको न छोड़ दूंगी। कर्तव्य कहता है नहीं मैं क्षत्राणी हूं। मुझे अपने पुत्रको युद्ध में जाने से नहीं रोकना चाहिये। मुझे चाहिये कि मैं युद्ध के लिये प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दूं। खैर, जाओ! युद्ध में जाकर अपनी वीरता दिखाओ! अपने पिता के

पुत्र कहलाओ । किन्तु हार कर न आना । शत्रू को अपनी पीठ न दिखाना । मैं तुम्हें प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देती हूं जाओ ।

गाना

दे रही आज्ञा तुम्हें है, पुत्र रण में जाइये ।
लड़के शत्रू से कला बाहू कि निज दिखलाइये ॥
देखने पाये ना शत्रु, पीठ तेरी पुत्र है ।
चाहे रण में लड़ते लड़ते, प्राण भी दे जाइये ॥ दे०
गिरके पर्वत पर दिखाई, वीरता जब बाल था ।
जिसपे गिरना चूर करना, वज्र से बन जाइये ॥दे०
लौट कर घर में न आना, पुत्र मेरे हार कर ।
या तो आना जीत कर, या युद्ध में मिट जाइये ॥दे०
ये ही बस आशीष है, माता की जाओ युद्ध में ।
जीत कर के युद्ध फिर तू, मेरे घर में आइये ॥ दे०

पर्दा गिरता है ।

अंक तृतिय—दृश्य पंचम

(रावण और वरुण दोनों आते हैं)

वरुण—उस युद्ध में मुझे धोखे से पकड़ लिया । तुम्हें लाज नहीं आई । अब देखना है कि किस प्रकार तुम मुझे

पराजित करते हो ।

रावण—युद्धक्षेत्र में लड़ते हुये योद्धा का पकड़ना धोखा नहीं कहलाता यदि चालाकी से पकड़ा जाय तो वह धोखा कहलाता है। मैंने तुम्हें वीरता से पकड़ा था। तुमने उस समय हार मान कर मेरे सामने मस्तक झुकाया किन्तु अपने सौ पुत्रों के अभिमान वश फिर मेरी आज्ञा का लोप किया। किन्तु तुम यह न समझना कि रावण दब कर बैठ जायगा। रावण वो पुरुष है जो एक बार स्वर्ग के देवों से भी युद्ध करने में न चूके।

वरुण—मुझे सौ पुत्रों का अभिमान ही नहीं है किन्तु इसे सत्य समझना। अब की बार या तो जन्म पर्यन्त तुम्हारा आज्ञाकारी हो जाऊंगा। या तुम्हें अपना आज्ञाकारी बनाऊंगा। वरुण की शक्ती कम न समझना। मेरी शक्ती से देवों के सिंहासन हिलते हैं।

रावण—यदि मैं तेरे लिये उस समय अपने दैवी शस्त्रों का प्रयोग करता तो तुझे सर उठाने की भी हिम्मत न पड़ती। प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि तेरे साथ दैवी शस्त्रों का प्रयोग न करूंगा। इसी कारण तेरा दिमाग आस्मान से बातें कर रहा है।

हनूमान—(आकर) महाराजाधिराज आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं इसको आज्ञा लोप करने का फल चखाऊं।

रावण—हे वीर बालक तुम किस पिता के पुत्र हो ? तुम्हारा रूप बल और ऐश्वर्य मुझे आकर्षित कर रहा है।

हनूमान—हनूमान कहो, श्री शैल कहो, मैं पवनपूत कहलाता हूं । श्रीमान सहाय करन तुमको, हनूरुह द्वीप से आता हूं ॥

रावण—आज मेरे धन्य भाग्य हैं कि पवनकुमार ने मेरी सहायता के लिये तुम जैसे पुत्र रत्न को मेरे पास भेजा । मैं तुम्हें देख कर अत्यन्त प्रसन्न हूं । तुम्हारे लिये मेरे मुख से प्रशंसा के शब्द बिना प्रयत्न किये ही निकल रहे हैं ।

हनूमान—हे महाराजाधिराज आप मेरी प्रशंसा करके मुझे लज्जित करते हैं । आप वरुण से लड़िये मैं इसके सौ पुत्रों से अकेला लडूंगा ।

रावण—नहीं, मैं तुम्हें इतना बड़ा कार्य न सौंपूंगा । पवनकुमार बाद में मुझे उलाहना देंगे ।

हनूमान—आप मुझे बालक जान कर हृदय में संकोच न कीजिये । मेरे साथ अपने पुत्र मेघनाथ आदि को कर दीजिये ।

वरुण—ओ जरा से छोकरे दुध मुंहें बच्चे ! तेरी क्या शक्ती है, जो मेरे पुत्रों का सामना करे । यदि कुछ बल रखता है तो आ प्रथम मेरे से ही निबटले ।

हनुमान—जिस प्रकार आपने नीती को भुला कर रावण की आज्ञा लोप करी है। उस प्रकार मैं अनीती पर नहीं चल सकता। आप मेरे पूज्य हो। मैं आपसे युद्ध नहीं करूंगा। आपसे युद्ध करने वाले महाराज रावण हैं। आपको मुझे युद्ध में ललकारते हुवे लाज आनी चाहिये। मैं उसी का पुत्र हूं जिससे प्रथम आप हार चुके हैं।

वरुण—हनुमान! जब मैं तेरी नीती को और विनय को देखता हूं तो मेरे हृदय से तेरे लिये प्रशंसा निकलती है। किन्तु जब तेरी कटु २ वाणी सुनता हूं तो मन में क्रोध पैदा होता है।

रावण—हनुमान, सचमुच तुम्हारे माता पिता को धन्य है जिन्होंने तुम सरीखे पुत्र को जन्म दिया। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि वरुण के पुत्रों से तुम लड़ो।

(पर्दा खुलता है सेना तैयार खड़ी है। रण के बाजे बजते हैं। युद्ध शुरु होता है। युद्ध होते होते पर्दा गिर जाता है।)

अंक तृतिय—दृश्य छटा

(रावण और हनुमान आते हैं)

रावण—हनुमान! जितना मैंने सोचा था उससे भी अधिक पराक्रमी तुम सिद्ध हुये। तुमने इसके सौ पुत्रों को एक दम

बांध लिया मेरे राज्य का आधार तुम्हीं जैसे वीरों पर निर्भर है मैं किस प्रकार तुम्हारे उपकारों का बदला चुका सकता हूं। तुम्हारे जैसा वीर अब तक मेरे देखने में नहीं आया था।

हनूमान—महाराज आप हमारे पूज्य हैं आपको हमारी इतनी प्रशंसा करना योग्य नहीं। आप मेरी प्रशंसा करके मुझे लज्जित करते हैं। कृपया आप वरुण को यहां बुलावें।

रावण—(सिपाहीसे) जाओ, वरुण को यहां ले आवो

(सिपाही सहित वरुण आता है) (लज्जा से सिर नीचा हो रहा है)

हे राजा वरुण! तुम चिन्ता न करो। तुम वीर पुरुष हो तुम्हारी बहादुरी में कोई सन्देह नहीं। वीर पुरुषों की तीन ही रीति होती हैं। प्रथम तो युद्ध जीत कर लाये, द्वितिय युद्ध में पकड़ जायें। तृतिय युद्ध में वीरता पूर्वक मारे जायें। युद्ध से भागना तो कायर का काम है। तुम कोई चिन्ता न करो। हमें नमस्कार कर के अपने राज्य में जाकर प्रजा को शांति दो।

कुंभकरण—(आकर) भाई साहब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं इसके नगर को लूटूं। और विध्वंस करूं। इसने हमारी आज्ञा का उलंघन किया है।

रावण—अरे मूर्ख कुंभकरण! तू ये कैसे बचन बोलता है हमारी शत्रूता राजा से थी न कि प्रजा से। प्रजा ने हमारा कोई

अपराध नहीं किया जो उसे सताया जाय !

वरुण—सचमुच रावण ! तुम महा उदार मनुष्य हो। तुम से जो वैर करे वह मूर्ख है। तुम वीरता नीति क्षमा के अवतार हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। और प्रतिज्ञा करता हुं कि अब कभी तुमसे युद्ध न करुंगा।

रावण—(सिपाही से) इनके बन्धन खोलदो।

(बन्धन खुलने पर वरुण रावण के पैर छूना चाहता है किन्तु रावण नहीं छूने देता। अपने कलेजे से लगाता है)

तुम मेरे छोटे भाईके समान हो। तुम्हें मैं हृदय से लगाता हूं। हमारी तुम्हारी शत्रुता युद्ध में थी अब नहीं रही। अब भाई २ का व्यवहार है। हनूमान तुम इनके पुत्रों को बन्धन से मुक्त करो।

हनूमान—जैसी आज्ञा (सिपाहीसे) इनके सब पुत्रों को जाकर छोड़दो।

वरुण—रावण मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। मैं अपनी पुत्री की सगाई आपसे करता हूं। मुझे हनुमान का बल देख कर आश्चर्य होता है, ये बहुत ही महापुरुष हैं,

रावण—पुत्र हनूमान, तुम हमें बताओ तुमने कितनी विद्यायें साधी हैं।

हनूमान—मैंने आपकी कृपा से अब तक केवल ६६ विद्यायें साधी हैं।

रावण—मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम्हें मैं अपनी बहन की पुत्री की सगाई करता हूं। और कुण्डलपुर का राज्य देता हूं!

हनूमान--आप मेरे लिये इतना सन्मान दे रहे हैं! मैं अपना सौभाग्य मानता हूं।

ड्राप गिरता है

द्वितिय भाग समाप्त
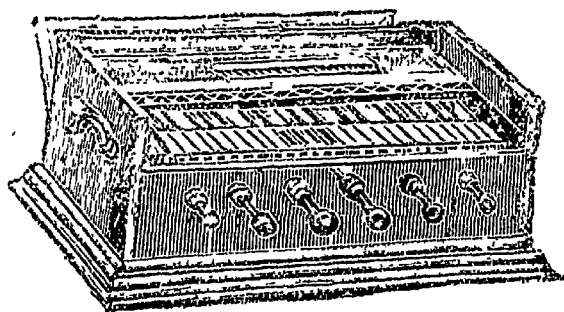
श्री जैन नाटकीय रामायण

तृतिय भाग

अंक प्रथम—दृश्य प्रथम

स्थान—स्वयंबर

(सब राजा लोग बैठे हुवे हैं। बीच में शुभ मती केकई का पिता बैठा है। परियां आती हैं। गाती हुई और नाचती हुई)

गाना

गाओ मंगल मनाओ महेश से हां
स्वयंवर है सखी, सुकुमारी का।
शुभ मती अरु पृथू की दुलारी का॥
आये राजा सभी देश देश से हां
शोभते हैं मुकुट शीश रत्नों के।

शोभते राज में ढेर रत्नों के ॥
शोभती है सभा भेष, भेष से हां। आये०

(केकई को आते देख कर)

कौमुदी सी लखो केकई आगई।
देवियों सी दिपै, सुन्दरी आगई ॥
सूर्य फीका हुआ, इनके तेज से हां। आये०

(सब गाकर चली जाती हैं। एक द्वारपाल खड़ा होकर कहता है)

द्वारपाल—हे देश विदेश से आये हुवे महाराजाओं। आपको इस कौतुक मंगल नामक नगर में इस लिये कष्ट दिया गया है कि श्रीमान महाराजा शुभमती जिनकी महाराणी पृथु श्री की केकई नामकी कन्या आप लोगों में से अपने लिये वर वरे।

सखी—(केकई से) हे कुमारी ये जनकपुरी से आये हुवे महाराज जनक हैं। (दूसरे को बताकर) ये अयोध्यापुरी से आये हुवे महाराज दशरथ हैं। ये सर्व गुण सम्पन्न सर्व विद्याओं में निपुण तथा सब भांति से योग्य हैं।

(केकई राजा दशरथ के गले में वर माला डाल देती है)

१ राजा—हमें दशरथ और केकई का जोड़ा देखकर अत्यन्त हर्ष है। जैसी योग्य कन्या है वैसा ही उसे वर मिला है;

हम इस युगल की वृद्धी की भावना भाते हैं।

२ रा राजा—(क्रोध से) ऐ शुभमती, तेरी कन्या महा निर्लज्ज है। बड़े बड़े योग्य राजाओं के होते हुवे इसने एक विदेशी के गले में जिसका कोई ठिकाना नहीं, वर माला डाली है। हम इस कन्या को बलात हर कर ले जायेंगे।

३ रा राजा—नहीं आपको यह नहीं चाहिये। कन्या ने जिसे अपना पति बना लिया है वही उसका पती है, चाहे वह कैसा भी क्यों न हो।

२ रा राजा—नहीं हम कभी इस बातको स्वीकार नहीं कर सकते। शुभमती को हमसे युद्ध करना पड़ेगा।

शुभमती—(दशरथ से) हे राजा दशरथ आप रथ में बिठाकर केकई को लेजाइये। मैं इससे यहां युद्ध करता हूं।

दशरथ—कदापि नहीं। मैं इस दुष्ट को स्वयं मार भगाऊंगा, इसके सारे अभिप्रायों को धूल में मिलादूंगा।

केकई—पिताजी, आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं पति देव के लिये रथ लाऊं।

शुभमती—जाओ शीघ्रता से रथ लेकर आओ। तुम युद्ध विद्या में निपुण हो। आज तुम्हारी परीक्षा है। तुम्हें ही रथका सार्थी बनना पड़ेगा।

केकई—जो आज्ञा (चली जाती है)

२ रा राजा—अरे दशरथ ! तू क्या घमंड करता है। ये तेरा यौवन मैं क्षणभर में मिटा दूंगा। तुझे पृथ्वी पर सुला दूंगा।

दशरथ—तुम नीच हो जो ऐसा कार्य करते हो तुम्हें अभी हारकर भागना पड़ेगा। वीरों की यह नीती नहीं होती कि पर स्त्री को हरने के लिये वह उद्यम करें। यदि केकई को लेना था तो स्ववंम्बर न होने देते। महाराज शुभमती से पहले ही उसे क्यों न मांगली ?

२ राजा—परस्त्री नहीं वह अभी क्वांरी है। मैं उसे अवश्य ही हर कर ले जाउंगा।

दशरथ—मालूम होता है कि आप किसी पाठशाला में नहीं पढ़े हैं। घोड़ों की घुड़साल में बंधे हैं। आपको यह भी मालूम नहीं कि कन्या जिस समय वर के गले में वर माला डाल देती है वह उसी समय से परस्त्री कहलाने लगती है।

२ राजा—मालूम होता है तेरी मृत्यु निकट है जो तू ऐसे अपमान के वचन बोलता है।

दशरथ—कहने से क्या होता है यह तो अभी मालुम हो जायगा।

(केकई रथ लाती है। वह रथ में अगाड़ी बैठी है। घोड़ों की रस्सी सम्हाल रखी है)

कैकई—आइये, रथ में बैठ कर युद्ध कीजिये । इस पापी को इसकी धूर्तता का फल दीजिये ।(दशरथ रथमें बैठता है)

कहिये किधर को ओर रथ चलाऊं ?

दशरथ—रथ उसी ओर चलाओ जिस ओर से यह अभिमानी मारा जा सके ।

(रथ चलता है युद्ध होता है पर्दा गिरता है।)

अंक प्रथम—दृश्य द्वितिय
कौमिक

(एक मारवाड़ी फेशन में सेठजी आते हैं)

सेठजी—जहां देखो आज कल शिक्षा का बोल बाला है वास्तव में शिक्षा ही एक ऐसा विषय है । जो मनुष्य को मनुष्य बना देता है । दूसरे देशों में स्त्री शिक्षा का कितना अधिक प्रचार है । वहां पर स्त्रियों को समान अधिकार दिये जाते हैं । स्त्रियां स्वतन्त्रता पूर्बक गमन करती हैं । हे ईश्वर हमारे भारतवर्ष को वह घड़ी कब प्राप्त होगी ?

१ सज्जन—(आकर) हे ईश्वर भारत को कभी भी वह घड़ी प्राप्त न हो जिसमें स्त्रियों के मुंह पर बारह बजने लगें ।

सेठजी—मालूम होता है आप स्त्री शिक्षा के विरोधी हैं ।

सज्जन—मालूम होता है आप स्त्री शिक्षा के पोषक हैं।

सेठजी—ऐसे शुभ कार्य का पोषक कौन नहीं होगा। दूसरे देशों में स्त्री शिक्षा का कितना अधिक प्रचार है।

सज्जन—मैं मानता हूं कि दूसरे देशों में स्त्री शिक्षा का अत्यधिक प्रचार है और बिना स्त्री शिक्षा के प्रचार के कोई देश उन्नत भी नहीं हो सकता। किन्तु....

सेठजी—किन्तु क्या ?

सज्जन—वह यह कि दूसरे देशों में स्त्रियों को वहीं की भाषा सिखाई जाती है। वहां पर मुश्किल से एक करोड़ एक में एक स्त्री ऐसी निकलेगी जो विदेशी भाषा पढती हो। किन्तु भारत बर्ष की देवियां केवल अपना जीवन अधर्म के गढ़े में डालने के उद्देश्य से विदेशी भाषा पढ़ती हैं। इसका आज कल जो परिणाम हो रहा है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। दूसरे देशों में जहां पर विवेक का और शील का नाम मात्र भी नहीं वहां का दृष्टांत सामने रख कर बालिकाओं को बिगाड़ना ये कहां का न्याय है।

सेठजी—जब आप विदेशी भाषा का इतना विरोध करते हैं तो पुरुष उसे क्यों पढ़ते हैं ? जिस काम को पुरुष करें उस काम को स्त्रियों को क्यों नहीं करना चाहिये ?

सज्जन—आज कल हमारे देश में विदेशियों का शासन है। उनके कार्य की समालोचना करने के लिये हमें उनकी भाषा पढ़नी आवश्यक है। किंतु फिर भी पुरुषों को चाहिये कि विदेशी भाषा पढ़ते हुवे भी अपने देशी विवेक और सभ्यता को न त्यागें। आपने कहा कि जिस कार्य को पुरुष करते हैं उसको स्त्रियां क्यों नहीं कर सकतीं? सुनिये। पुरुष युद्ध करते हैं। स्त्रियां क्यों नहीं करतीं? पुरुष व्यापार करते हैं स्त्रियां क्यों नहीं करतीं? पुरुष तपस्या करते हैं स्त्रियां क्यों नहीं करतीं? क्योंकि उनमें बल बुद्धी पूर्वापर विचार सहन शीलता आदि गुण नहीं होते।

सेठजी—झांसी की महारानी ने युद्ध किया था। मीरा बाई ने तपस्या की थी उन्हें आप बिल्कुल भुला ही रहे हैं।

सज्जन—एक हजार पुरुषों का दृष्टांत जहां उपस्थित हो वहां यदि १ स्त्री का दृष्टांत आजाय तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि वह कार्य सब स्त्रियों ने किया होगा।

सेठजी—तो मैं क्या करूं, मैं तो अपनी लड़कीको कालेज में पढ़ा रहा हूं। इससाल वह बी. ए. के तीसरे वर्ष है में। यदि उससे कहूं कि पढ़ना छोड़ दे तो भी वह नहीं छोड़ती। भाई मेरे पास रुपया है तो मैंने सोचा कि उसे इसी तरह सदुपयोग

में लगाना चाहिये। शिक्षा की बराबर कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है।'

सज्जन—आपकी पुत्री की आयू इस समय कितनी होगी।

सेठजी—उसकी आयु इस समय बाईस वर्ष की है।

सज्जन—उसके पती क्या कार्य करते हैं। तथा उसके कितने बच्चे हैं ?

सेठजी—वह कहती है कि मैं महारानी ऐलीजाबेथ सरीखी कुवांरी ही रहूंगी। इस लिये उसने अभी तक ब्याह नहीं कराया है।

सज्जन—किन्तु आप उसकी बातों में आगये न ?

सेठजी—तो आप ही बताइये मैं क्या करूं ?

सज्जन—आप याद रखिये ! वह आपके माथे पर कलंक का टीका लगाने की तैयारी कर रही है।

सेठजी—कहीं शिक्षा देने का भी ऐसा बुरा परिणाम होता है ? आप कृपया ऐसे शब्द मुंह से न निकालिये। वरना आपके लिये बुरा होगा।

सज्जन—ये तो आप स्वयं देखलगे कि बुरा होगा या अच्छा और किसके लिये होगा। क्षमा कीजिये मैं जाता हूं।

(चला जाता है।)

सेठजी—मुझे भी आज कल कुछ छोरी के बुरे ढंग दीख रहे हैं । हे ईश्वर मेरी छोरी को सदा सुबुद्धि हो ।

छोरी—(आकर) फादर आप सदा मेरे लिये ईश्वर से भला चाहते हैं । आपकी बराबर इस दुनिया में मेरा दूसरा हित चिन्तक नहीं है ।

सेठजी—कहो बेटी मोहनी आज कल तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ।

मोहिनी—पिताजी मेरी पढ़ाई आज कल बहुत अच्छी चल रही है । कालेज का प्रिंसिपल और सब प्रोफेसर मुझे बहुत चाहते हैं । मैंने एक समय सभा में कालेज छोड़ने का प्रस्ताव रखा था इस पर वो लोग रंज करने लगे और मुझे कालेज में रहने के लिये सबने विवश किया । आज मुझे फिर एक मीटिंग में जाना है । मैं आपको इनफार्म करने आई हूं ताकि मेरे जाने पर आप मुझे ढूंढते न फिरें ।

सेठजी—इनफार्म किसे कहते हैं ।

मोहिनी—(हँसकर) पिताजी आप बहुत भोले हैं । कहिये तो मैं आपको एक घंटा इंगलिश पढ़ा दिया करूं । इनफार्म कहते हैं इत्तला करना ।

सेठजी—मोहिनी ! यदि तू बजाय इत्तिला के आज्ञा शब्द कहती तो क्या हर्ज था ?

मोहिनी—पिताजी आपने मुझे पहले से ही कह रखा है कि मुझे आज्ञा लेने की कोई आवश्यक्ता नहीं है। दूसरे यदि मैं आज्ञा मांगूं और आप न दें, तो मेरा जाना रुक जाय। कहिये मैं चली जाऊं न मीटिंग में ?

सेठजी—(स्वगत) बस अब ये छोरी बिगड़ गई। वास्तव में मेरे सिर पर कलंक का टीका लगायेगी।

मोहिनी—पिताजी ! आप क्या सोच रहे हैं। मुझे उत्तर दीजिये। मीटिंग के लिये देर होरही है।

सेठजी—आज मेरी कुछ तबियत खराब है। मैं चाहता हूं कि तुम आज कहीं मत जाओ।

मोहिनी—आपकी तबियत में मैं क्या कर सकती हूं। आप मुझे मीटिंग में जाने से क्यों रोकते हैं। आप कहें तो मैं उधर से उधर ही डाक्टर को बुलाती लाऊंगी।

सेठजी—मोहिनी मैं तुम्हारा पिता हूं। क्या तुम आज इतना भी नहीं कर सकती कि मेरे लिये रुक जाओ।

मोहिनी—यदि मैं किसी बुरे काम के लिये जाती हो तो आप मुझे रोकते। अब मैं कदापि नहीं रुक सकती हूं।

गुडबाई (चली जाती है)

सेठजी—इन सुधार कों का—नाश—हो ! इन्होंने मुझे

भपारे पर चढा २ कर मेरा घर बर्बाद कर दिया।

(चला जाता है। मोहिनी दूसरी ओर से सतीष को साथ लिये हुवे आती है)

मोहनी—सतीष देखो तुम और मैं दोनों एक दूसरे के प्रेम में जकड़े हुवे हैं। दोनों में से किसी का भी बिवाह नहीं हुआ है! दोनों एक ही क्लास के हैं।

सतीष—किन्तु तुम्हें अपने दिये हुये टायम से २ मिनट की देर क्यों होगई?

मोहिनी—उस बूढे बापने तबियत खराब का ढोंग बनाकर मुझे रोकना चाहा था। इसी से देर होगई। मैं क्षमा चाहती हूं।

सतीष—मेरी तबियत तो इस समय मिल कर गाने को चाहती है। आपकी क्या राय है?

मोहनी—क्या मोहनी कभी गाने में आज तक पीछे हटी है!

सतीष—तो शुरू कीजिये।

मोहिनी—प्रस्ताव आपका ही है। आप ही नेता बनिये।

(दोनों मिल कर गाते और अंग्रेजी नाच नाचते हैं)

गाना

सतीष—मोहिनी मोह लिया तेरे काले बालों ने।

मोय घायल है किया तेरी नोखी चालों ने ॥
मोय प्रेमी बना भरमायारे ॥ मोय ० ॥

मोहनी—अधकटी मूंछ तुम्हारी है गजब का चेहरा।
जब से कालिज में गई मोह लिया मन मेरा ॥
मोय रूप तेरा यह भाया रे ॥ मोय ० ॥

दोनों साथ (एक दूसरे से)

तुम ही ने पहले मुझे प्रेम में फंसाया है।
झूठ बोलो हो तुम्हीने तो ये सिखाया है।
खर जाने दो ये झूठी मायारे।
प्रेमियों के निकट प्रेम आया रे ॥

(दोनों भाग जाते है)

अंक प्रथम—दृश्य तृतिय

(ब्रह्मचारी और साधू आते हैं)

ब्र०—कहिये साधूजी आपकी सब समझ में आ रहा है न ?

साधु—जब दशरथजी का स्वयंवर में दूसरे राजाओं से युद्ध हुआ तो उसके पश्चात क्या हुआ।

ब्र०—सुनिये जिस समय स्वयंबर में युद्ध छिड़ा उस समय

केकई की चतुरता से और अपने पराक्रम से महाराज दशरथ ने सबों को मार भगाया। पश्चात केकई के गुणों से प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा। केकई ने उस वर को राजा के पास धरो हर रख दिया। इसके पश्चात अयोध्या में इनकी सब से बड़ी रानी कौशल्या से श्री रामचन्द्र का जन्म हुआ। जिन्हें पद्म और बलभद्र भी कहते हैं। इसके पश्चात सुमित्रा से लक्ष्मण का जन्म हुआ। केकई से भरत का जन्म हुआ। और सब से छोटी रानी सुप्रभा से शत्रुघन का जन्म हुआ।

साधु—रामायण में तो शत्रुघन का जन्म सुमित्रा से ही बताया है।

ब्र०—रामायण की प्रत्येक बात सच नहीं मानी जा सकती। किन्तु जैन शास्त्र पद्मपुराण ऐसे आचार्य के द्वारा लिखा गया है जो स्वार्थ से बिल्कुल परे थे। जिनको इतना ज्ञान प्राप्त था। कि वो भूत काल सम्बन्धी बातों को स्पष्ट जान सकते थे। हमें उन्हीं के वचन प्रमाण हैं।

सा०—अब आप कृपा करके सीता के विषय में दिखलाईये

ब्र०—पहले रामचन्द्र और तीनों भाइयों की विद्या प्राप्ती दृश्य दिखा कर फिर सीता के विषय में दिखलाउंगा। यह पद्म पुराण बहुत बड़ा शास्त्र है। यदि इस की एक एक बात स्टेज पर दिखाई जाय तो करीब एक माह चाहिये। इस लिये मैं जनक

और उनकी रानी विदेहा के विषय में आपको परिचय कराये देता हूं । सुनिये !

सा०—कहिये मैं बराबर सुन रहा हूं ।

ब्र०—राजा जनक की स्त्री विदेहा के गर्भ से पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ । कोई देव पूर्व काल के वैर से उसके पुत्र को उठा लेगया । और मारना चाहा किन्तु फिर उसे दया आ गई । और उसे गहने पहना कर जंगल में छोड़ गया । कोई एक परणलब्धी नामक विद्याधर उस रास्ते से आया । और वह उसको उठा लेगया । और अपनी स्त्री को दे कर अति लाड़ प्यार से उसे पाला । उसका नाम भामंडल रखा । इधर पुत्र का हरण देख कर रानी विदेहा कैसे २ विलाप करती है । इसको इस दृश्य के पश्चात दिखाया जायगा ?

सा०—रामायण में केवल सीता का जन्म ही दिखाया है किन्तु आपने उसके विषय में सब बता दिया । एक बात यह पूछनी है कि सीता को वैदेही कहा है क्यों कि वह किसी के देह से उत्पन्न नहीं हुई थी । हल चलाते हुवे खेत में गड़ी हुई मिली थी । यह क्या बात है ?

ब्र०—सुनिये, सीता का नाम वैदेही इस लिये पड़ा है कि वह विदेहा रानी की पुत्री थी । हल चलाते हुवे पृथ्वी में से सीता निकली । यह बात असंभव है ।

सा०—मैं भी यही सोच रहा था कि यह बात सम्भव नहीं हो सकती। चलिये खेल शुरु होने दीजिये।

(दोनों चले जाते हैं)

अंक प्रथम—दृश्य चौथा

(गुरुजी बालकों को पढ़ा रहे हैं। पहले स्वयं बोलते हैं। फिर बालक बोलते हैं)

कक्का कितना ही भय आवे, क्षत्री पुत्र नहीं घबरावे।
खख्खा ख्याल प्रजा का राखे, स्वयं चाहे वो दुःख उठावे।
गग्गा ज्ञान धरम नित पाले, झूठ वचन मुख से नहीं काले।
घघ्घा घर पर के नहीं जावे, पर नारी से शील बचावे।
चच्चा चाहे जावें प्रान, जायें ना पर क्षत्री आन।
छच्छा छोटों से रख प्रेम, पालन कर वृद्धों का नेम।
जज्जा जीव दया नित पाल, दुष्टों से दुखियों को काल।
झज्झा झूठा सब संसार, जीव दुखी हों बारंबार।
टट्टा टूटें कर्म किवाड़, खुल जावे मुक्ती की आड़।

गुरु—अच्छा रामचन्द्र बताओ कि पांच पाप कौन से हैं ?

रामचन्द्र—सुनिये !

मन वच काया से जीवों को दुख देना हिंसा कहते।
माया रचना अप्रिय कहना झूंठ बचन इसको कहते।

गुरु—लक्ष्मण अगाड़ी तुम बोलो।

लक्ष्मण—बिना दिये पर वस्तू लेना, नाम इसी का चोरी है। व्यभिचार है पाप चतुर्थी नर जीवन की डोरी है।

गुरु—भरत अगाड़ी तुम बोलो।

भरत—इच्छित वस्तू खूब बढ़ाना, परिग्रह कहलाता है। इन पापों का सेवन वाला, नर नरकों में जाता है।

गुरु—शत्रुघन तुम चारों कषायों के नाम बोलो।

शत्रुघन—क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं। इनके वश होकर जीव अनेक दुःख पाता है।

गुरु—रामचन्द्र, तुम बताओ कि शिकार खेलना चाहिये या नहीं?

रामचन्द्र—गुरुजी! शिकार इस लिये नहीं खेलना चाहिये कि इससे बेचारे अनाथ असहाय और दीन पशुओं का बध होता है।

गुरु—युद्ध करना चाहिये या नहीं? बताओ लक्ष्मण!

लक्ष्मण—यदि अपने देश अपने धर्म, अपनी जाति और अपने बन्धुओं पर कोई आपत्ति आ रही हो तो उससे बचने के लिये युद्ध अवश्य करना चाहिये।

गुरु—किन्तु उसमें लाखों मनुष्यों का बध होता है।

लक्ष्मण—मैंने माना कि उसमें बध होता है और वो

हिंसा है, किन्तु हमारा जैन धर्म यह नहीं बताता कि आपत्ति के काल में मुंह छिपाकर कायर बनकर बैठ जाना ग्रहस्थी लोग अणुव्रती होते हैं। उनसे जो ग्रहस्थी में पाप होते हैं। वह उन्हें विवश होकर करने पड़ते हैं। यह बात अवश्य है कि हमें किसी पर बलात्कार नहीं करना चाहिये। किसी का धन देश या नारी हड़पने के लिये युद्ध करना जिन धर्म के खिलाफ है।

गुरु—वास्तव में लक्ष्मण तुम नीति और धर्म शास्त्र में निपुण हो। जाओ अब मैं तुम्हें छुट्टी देता हूं।

(सब बच्चे भाग जाते हैं पर्दा गिरता है)

अंक प्रथम—दृश्य पांचवां

(विदेहा रानी तुरत की पैदा हुई सीता को लिये सो रही है। जाग कर पुत्र को देखती है उसे न देख कर वह व्याकुल होती है। पलंग के नीचे देखती है। दासी को बुलाती है)

विदेहा—कमला ! कमला ! जल्दी आ।

कमला—(आकर) क्या आज्ञा है महारानी जी ?

विदेहा—जा सारे महलमें मेरे पुत्र को ढूंढ। न मालूम कौन मेरे पास-से सोते हुये पुत्र को उठा ले गया ? (कमला जाती है। मेरे बच्चे को कौन उठा लेगया ? हाय। मैं क्या करूं। उसे कहां ढूंढूं। (कमला आती है) क्यों लाई मेरे बच्चे को ?

कमला—महारानीजी महल में तो कहीं नहीं है। पहरेदारों से पूंछा वो भी कहते हैं कि यहां कोई भी नहीं आया।

विदेहा—तब तो अवश्य ही उसे कोई देव उठा कर ले गया। अरे दुष्ट! तू मुझे भी मेरे बच्चे सहित क्यों न उठा लेगया हाय न मालूम मेरा बच्चा किस अवस्था में कहां होगा? नौ माह तक कष्ट सहा किन्तु फिर भी पुत्र का मुख न देख सकी। हाय पुत्र का हरण मेरे लिये मरण तुल्य है। न मालूम उस दुष्ट देव ने उसे कहां पटका होगा (रोती है)

जनक—(आकर) क्यों कमला! तुम्हारी महारानी क्यों रोती हैं?

कमला—महाराजाधिराज, रात्री को महारानी के सोतेहुये इनके पुत्र को कोई दुष्ट देव हर कर ले गया है। इसीसे ये इतनी व्याकुल हैं।

जनक—संसार में हर एक प्रकार का बियोग सहा जा सकता है। किन्तु स्त्रियों के लिये पती और पुत्र का वियोग असह्य होता है। मेरे राज्य का तो दीपक ही बुझ गया (दुखी होता है) नहीं, नहीं, इस समय मुझे स्वयं न दुखी होना चाहिये। किन्तु दुखसागर में डूबी हुई रानी को समझाना चाहिये

विदेहा—हे स्वामी! आप किसी प्रकार मुझे पुत्रसे मिलाओ, मैं उसके बिना नहीं रह सकती।

जनक---प्रिये तुम चिन्ता न करो। तुम्हारा पुत्र बहुत सुख से है। वह कहीं न कहीं पर अवश्य वृद्धी पा रहा होगा। मैं तुम्हें उससे अवश्य मिलाउंगा। इस पुत्री को ही पुत्र मान कर धैर्य धारण करो।

विदेहा का गाना

किस तरह धीरज धरूं, जब पुत्र ही मेरा नहीं।
गाय को बछड़े बिना क्या चैन आती है कहीं॥
नौ महीने कष्ट सह कर लाल पा कर खो दिया।
होगये दोनों अलग हैं वो कहीं और मैं कहीं।
जान सकती हैं व्यथा मेरी वही बस नारियां॥
पुत्र जिन ने एक पाकर खोदिया अब रो रहीं।
जन्म लेता ही नहीं तो धीर मुझको थी यही॥
किन्तु हो करके उदय वो छिप गया जा कर कहीं॥

पर्दा गिरता है

अंक प्रथम—दृश्य छटा

(हाराजा दशरथ का दर्बार। राम लक्ष्मण भी बैठे हैं)

१ दूत—(आकर) महाराजाधिराज की जय हो। जनक पुरी से एक दूत आया है।

दशरथ—उसे तुरन्त मेरे सामने उपस्थित करो। (दूत जाता है जनक का दूत आता है।) कहो क्या समाचार लेकर आये हो?

दूत—महाराजाधिराज की जय हो। कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर म्लेच्छ लोगों का वास है। सातों व्यसन उनमें पाये जाते हैं। कुछ ही दिन हुवे कि महाराजा जनक का पुत्र किसी देव के द्वारा हरा गया था। उसके दुख से वो दुखी थे कि इतने में ही म्लेच्छ लोग बहुत बड़ी सेना लेकर सारे आर्य देशों को उजाड़ते हुवे मिथिलापुरी आगये हैं। वहां पर वो घोर उपद्रव मचा रहे हैं। किसी के द्वारा जीते नहीं जाते। सबको अपने ही धर्म में मिलाना चाहते हैं। आपसे उन्हें भगाने के लिये महाराज ने प्रार्थना की है।

दशरथ—पुत्र पद्म तुम राज्य का भार सम्हालो। मैं जाकर उनको भगा कर आता हूं। यदि मैं युद्ध में मारा भी गया तो कोई चिन्ता नहीं। क्षत्रियों का धर्म ही युद्ध करना है।

रामचन्द्र—यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे होते हुवे आप युद्ध के लिये जांय। मैं जाकर उन म्लेच्छों को अभी भगाता हूं।

दशरथ—तुम बच्चे हो, युद्ध में जाने योग्य नहीं हो। तुम यहीं पर सुख से तीनों भाइयों सहित राज्य कार्य सम्हालो!

रामचन्द्र—पिताजी! आप यह न समझें कि बच्चा होने के कारण मैं युद्ध नहीं कर सकता। अग्नि की चिनगारी कितनी जरासी होती है किन्तु वही सारे वनको भस्म कर देती है, क्या उगता हुआ सूर्य अपार अंधकार को नष्ट नहीं कर देता? आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं भाई लक्ष्मण सहित युद्ध में जाकर उन म्लेच्छों से प्रजा की रक्षा करूंगा।

लक्ष्मण—पिताजी आप हमें आज्ञा देनेमें कुछ भी संकोच न कीजिये। रण क्षेत्र में जाते ही हम लोग उन्हें मार कर भगा देंगे।

दशरथ—यदि तुम दोनों भाइयों की इच्छा है तो जाओ रण क्षेत्र में जाकर राजा जनक की सहायता करो।

(दोनों पुत्र दूत सहित पिता को नमस्कार कर चले जाते हैं)

(पर्दा गिरता है।)

अंक प्रथम—दृश्य सप्तम

(राजा जनक और म्लेच्छ सर्दार आता है)

म्लेच्छ—या तो तुम हमारे साथ रोटी बेटी व्यवहार करो हमारे वर्ण में आकर मिलो। वरना हम लोग दूसरे देशों की तरह

तुम्हारे देश को भी उजाड़कर फेंक देंगे।

जनक—कदापि नहीं, चाहें सारा देश क्यों न उजड़ जाय किंतु मैं तुम लोगों म्लेच्छोंके साथमें जिनमें जीव दयाका नाम मात्र भी नहीं है। रोटी बेटी व्यवहार कदापि नहीं कर सकता। मैं क्षत्री हूं। क्षत्री लोग धर्म की रक्षा के लिये हैं न कि धर्म को दूसरों के हाथ सौंपने के लिये। जब तक एक बच्चा भी क्षत्री जाति का बचा रहेगा वह तुम्हारे हाथों से धर्म को बचायेगा।

म्लेच्छ सर्दार—यदि तुम राजी नहीं होते हो तो युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।

जनक—मैं सदैव युद्ध के लिये तैयार हूं। क्षत्री लोग युद्ध से नहीं डरते।

मिटते हैं धर्म पर जो, क्षत्री कहाते जग में।
रहता है जोश हरदम, क्षत्री की हर एक रग में॥
निज देश धर्म जाती, अबलाओं को बचाकर।
मरते हैं वीर रण में, शत्रू के बाण खाकर॥

(पर्दा खुलता है। दोनों ओर की सेना खड़ी हुई है युद्ध के बाजे बजते हैं। दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ होता है। राजा जनक घायल होकर गिरता है, शत्रु उसके ऊपर झपटते हैं। इतने में राम लक्ष्मण आते हैं।)

राम—(ललकार कर) ठहरो, यदि जनकको हाथ लगाया तो समझ लेना कि यह हाथ शरीर से जुदा होजायेंगे। लक्ष्मण तुम जनक को सचेत करो

(लक्ष्मण जनक को उठा ले जाते हैं। फिर आजाते हैं।)

म्लेच्छ—ओ दुध मुंहे बच्चे, जा अपनी मां की गोद में खेल। रण में खेलना तेरे जैसों का काम नहीं है। यदि एक भी बाण लग गया तो तेरी मां निपूती कहलायगी।

राम—बच्चा नहीं मैं काल हूं, हूं प्राण हरने के लिये।
आया हूं मैं रण क्षेत्र में, बस युद्ध करने के लिये॥
हैं प्राण प्यारे गर तुम्हें, तो भाग जाओ देश को।
तन से तुम कर दो अलग, इस वीरता के भेष को॥

लक्ष्मण—समझो नहूं जंगली पशु, बन जाऊंगा तेरा शिकार।
बाणों से तुमको छेदकर, दूंगा बहा मैं रक्तधार॥
बालक के आगे सर झुकाने से प्रथम जाओ चले।
हिंसा न मुझको दो यदी, लगते तुम्हें निज तन भले॥

म्लेच्छ—सुन सुन के बात तेरी, मम क्रोध बढ़ रहा है।
आकर पड़ेगा नीचे, क्यों इतना चढ़ रहा है॥
ये धमकी दूसरों को ही दिखाना छोकरे कल के।
खड़ा रेहने न पायेगा तु सन्मुख वीरता के॥

लक्ष्मण—अकेला ही मैं तुम सबको, यहीं पर दूं सुला क्षण में।

जो मच्छक मांस के हैं, वो दिखा सकते हैं क्या रणमें ।
नहीं अब तक मिला है वीर तुमको कोई मुझ जैसा ।
न देखा होगा तुमने क्षेत्र रण का आज के जैसा ॥
म्लेच्छ—नहीं जाते सहे कर्कश बचन इन दुष्ट बच्चों के ।
राम—लगे हैं दुष्ट को ही वाक भद्दे साधु सच्चों के ॥
घड़ी जब नाश की कोई पुरुष के सामने आती ।
तो सत शिक्षा भी उसके वास्ते अग्नि ही होजाती ॥
म्लेच्छ—बिताते हो समय क्यों बाद में कुछ काके दिखलाओ ।
यदी हो वीर तो बढ़कर के आगे युद्ध में आओ ॥
लक्ष्मण—नहीं आते हैं जब तक ही तुम्हारी प्राण रक्षा है ।
कि आते ही मचेगी किस तरह हो प्राण रक्षा है ॥
(युद्धके बाजे बजते हैं दोनों ओर से घमासान युद्ध होता है)

ड्राप गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य प्रथम

(नारदजी हाथ में वीणा लिये हुवे आते हैं गाते हुवे)

जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र ।

(कुछ देर तक गाकर फिर कहते हैं)

नारद—मैंने राजा दशरथ के पुत्र राम की बहुत प्रशंसा

सुनी है । लोग उसे बहुत पराक्रमी, रूपवान, तेजवान बतलाते हैं । मैं भी उसे देख कर चकित हुआ हूं । सुना है राजा जनक ने उसे अपनी पुत्री जानकी को देना विचारा हैं । देखना चाहिये कि वह जानकी कैसी है ! जिसे राम सरीखा मनुष्य वरेगा ।

(चले जाते हैं)

(पर्दा खुलता है । एक बहुत बड़े दर्पण के सामने सीता अपना श्रंगार सम्हार रही है । इतने में नारदजी आते हैं सीता नारद की जटा को दर्पण में देख कर डरती है । और किलकारी मार कर भाग जाती है नारदजी भी उसके पीछे चलते हैं । इतने में ही एक दर्बान उन्हें आकर रोक देता है । नारदजी दर्बान से लड़ते हैं इतने म और बहुत से लोग आजाते हैं । उन्हें मारते पीटते भगा देते है)

दृश्य समाप्त

अंक द्वितिय—दृश्य द्वितिय

कौमिक

सेठजी—(आकर) भाग्य फूट गया । आखिर मोहिनी कलंक का टीका लगा गई । न मालूम कहां कहां जायेगी । क्या क्या करेगी । अगर मैं उसे नहीं पढ़ाता या जब उसने मिडिल पास किया था तब ही उसका ब्याह कर देता तो यह दिन काहे

को देखना पड़ता। वह सुधारक सच कहता था। मुझे तो अब मुंह दिखाने को भी जगह नहीं रही। हाय क्या करूं।

(चला जाता है)

(पर्दा खुलता है। मोहिनी और सतीष बैठे हुवे हैं।)

सतीष—कहो मोहिनी, हम लोगों का जीवन अब सुखमय है या पहले था ?

मोहिनी—पहले तुम्हारे ऊपर भी तुम्हारे माता पिताओं की निगाह रहती थी। मेरे ऊपर भी यही हाल था, चोरों की भांती एक दूसरे से मिलते जुलते थे। अब इस फिलम कम्पनी में भर्ती होकर मुझे रुपया भी खूब मिलता है और मेरा जीवन भी सुखमय होगया।

सतीष—किन्तु यह किसकी सलाह और सिफारिश से हुआ यह तो कहो ?

मोहिनी—सलाह और सिफारिश क्या, काम तो सब मैं ही करती हूं। मैं ही सबको खुश रखकर रुपया चूसती हूं। तुम भी मेरी ही बदौलत मौज उड़ा रहे हो।

सतीष—यदि मैं तुम्हारे साथ न होता तो इतना सुख तुम्हें कैसे मिलता ये तो कहो ?

मोहिनी—यदि तुम न आते तो और कोई तुम्हारा भाई आता। वो तो जहां गुड़ होता है अनेकों मक्खियां स्वयं आजाती

हैं। पता है सारा कालेज मेरे ऊपर जान देता था।

सतोष—यदि मैं अब चला जाऊं तो?

मोहिनी—मुझे इसकी भी कोई चिन्ता नहीं तुम भले ही चले जाओ। यह फिल्म कम्पनी मेरे लिये सलामत चाहिये। मुझे तुम्हारी कुछ भी परवाह नहीं है।

सतोष—मोहिनी! क्या तुम्हारे हृदय में मेरे लिये प्रेम नहीं है? मैं तो तुम्हारे लिये प्राण तक देने को तैय्यार हूं।

मोहिनी—जब प्रेम था तब प्रेम था। अब नहीं रहा। तुम्हारे जैसे अनेकों मेरे लिये प्राण देने को तैयार हैं। मेरे प्रेम के आगे तुम्हारे प्राणों का कुछ भी मूल्य नहीं है।

सतीष—मोहनी! मैंने तुम्हारे लिये कालिज की पढ़ाई छोड़ी घरबार छोड़ा माता पिता को छोड़ा और सारे संसार में बदनाम हुआ। किन्तु तुम अब मुझे मेरे प्रेमको ठुकरा रही हो।

मोहिनी—मेरे लिये क्यों! छोड़ा होगा अपनी विषय वासना की तृप्ति के लिये। मैंने तुमसे कब कहा था कि तुम मेरे लिये छोड़ो।

सतीष—तो क्या अब मैं तुम्हारे पास नहीं रह सकूंगा?

मोहिनी—मैं रहने के लिये तुम्हें मना नहीं करती। जैसे दूसरे नौकर लोग रहते है ऐसे ही तुम भी रहो।

सतीष—कदापि नहीं ! जिस घर में आज तक मालिक बन कर रहा, नौकर बन कर नहीं रह सकता। मोहिनी मैं जाता हूं। किन्तु तुम भी सुख नहीं पाओगी।

(चला जाता है मोहिनी बैठी हुई है। कम्पनी का डायरेक्टर आता है)

डायरेक्टर—कहो मोहिनी क्या सोच रही हो ?

मोहिनी—आइये डायरेक्टर साहब विराजिये। मैं आपकी ही बाट देख रही थी।

डा०—कहो तुम्हारे सतीष बाबू कहां गये ?

मोहिनी—वो आज मुझसे रुष्ट होकर कहीं चले गये हैं।

डा०—तो क्या अब नहीं आयेंगे ?

मोहिनी—हां, वह मुझसे अत्यधिक रुष्ट होगये हैं। अब कभी न आयेंगे।

डा—तबतो तुम अब बिल्कुल स्वतन्त्र हो ?

मो०—जी हां !

डा—मोहिनी ! तुम मुझसे कितना प्रेम करती हो। क्या मैं पूछ सकता हूं।

मो०—(मुस्कार कर) जितना चकवी चकवे से करती है। आप मुझे कितना प्रेम करते हैं ?

डा०—जितना गधा अपनी गधी से करता है।

मो०—आपतो मेरी हंसी करते हैं।

डा०—तो क्या तुम गधे और गधी का प्रेम कुछ कम समझती हो? मैं तो उनके प्रेम को बराबर दूसरा प्रेम ही नहीं समझता।

मो०—ऊं (मुस्करा कर)'

डा०—कहो मोहिनी तुमने कितना रुपया जोड़ा है?

मो०—इससे आपको मतलब?

डा०—यदि पचास हजार रूपया तुम्हारे पास हो तो तुम क० का शेयर खरीद लो। जिन्दगी भर चैन करना।

मो०—मेरे पास पैंतालीस हजार रूपया हैं।

डा०—पांच हजार मैं अपने पास से देदूंगा।

मोहिनी—तो खरीदवा दीजिये।

डाइरेक्टर—अच्छी बात है तुम एक गाना आज हमारे साथ गाओ।

मोहिनी—जैसी आप आज्ञा दें, लीजिये मैं गाती हूं।

गाना

अपने बलम से मैं प्रेम करूंगी।

प्रेम करूंगी चित्त हरूंगी॥ अपने॥

डायरेक्टर—अपनी प्रिया से मैं प्यार करूंगा ।

प्यार करूंगा, चित्त हरूंगा ॥ अपनी ॥

मोहिनी—मुझे पागल बनाया प्रेममें डायरेक्टर ने ।

डायरेक्टर—दिल लुभाया प्रेम में मोहिनी सी ऐक्टरेसने

मोहिनी—अपने बलम से मैं प्यार करूंगी ।

डायरेक्टर—अपनी प्रिया से मैं प्यार करूंगा ।

(दोनों गाते हुये चले जाते हैं । पर्दा गिरता है ।)

अंक द्वितिय—दृश्य तृतीय

(नारदजी क्रोध पूर्वक आते हैं ।)

नारद—इस सीता की बच्ची ने मेरा घोर अपमान किया । मेरा भी नाम नारद नहीं है यदि मैंने इसे इसके अपमान का बदला न दिया । अभी रथनूपुर में जाकर इसके भाई भामंडल को ही इसके ऊपर आसक्त करूंगा ।

(चलता है पर्दा खुलता है । बगीचे का दृश्य है ।)

बस बस आ पहुंचा ये उसी भामण्डल का बगीचा है, देखो वो भी अपने मित्रों सहित इधर ही आ रहाहै । सीता का चित्र मार्ग में डालकर छिप जाता हूं ।

(चित्र डालकर छिप जाता है । देख मित्रों सहित वो

आता है। भामण्डल चित्र उठाकर देखना है।
देखकर अचेत होकर गिर पड़ता है। उसके मित्र
उसे उठाते हैं। होश में लाते हैं।)

भामण्डल—यह न मालूम किस सुन्दरी का चित्र है। जिसके चित्र में ही इतना आकर्षण है कि मैं देखते ही अचेत होगया। न मालूम उसमें कितना आकर्षण होगा। किन्तु इसको किस प्रकार प्राप्त करूं। इसके बिना मेरा जीवन धिक्कार है। हा सुन्दरी! क्या मैं तुम्हारे साक्षात दर्शन नहीं कर सकुंगा? मित्र तुम ही बताओ यह किसका चित्र है।

मित्र—श्रीमान्! आप राज पुत्र हैं विद्याधर हैं जितना ज्ञान आपको हो सकता है हमें नहीं हो सकता इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह किसी भूमी गोचरी का चित्र है।

भा०—(पागल की तरह) अरे कोई बताओ! बताओ!! यह किसका चित्र है? वृक्षों। पक्षियों!! फूलों!! क्या तुम भी नहीं बता सकते? तुम सब चुप क्यों हो बताओ! शीघ्र बताओ!!

मित्र—(दूसरे से) तुम जाकर शीघ्र ही इसके पिता चन्द्रगती को यहां ले आओ। (चला जाता है)

चन्द्रगती—(आकर) पुत्र! तुम्हारा यह कैसा हाल है? तुम विद्याधर होकर एक भूमीगोचरी के चित्र पर आसक्त हो रहे हो? उठो! महल में चलो। भोजन का समय होगया है।

भा०—जब तक मुझे इस चित्र के समाचार न मिलें, मैं यहां से नहीं हट सकता ।

चन्द्रगती—आखिर ये चित्र यहां आया कैसे ?

चित्र—मैं तो समझता हूं कि ये सब नारद बाबा की करामात है । क्योंकि वह ही ऐसे बे सिर पैर के काम करते फिरा करते हैं ।

चन्द्रगती—हे नारदजी ! कृपा करके प्रगट होकर हमें इस चित्र का पूर्ण समाचार दीजिये । मेरा पुत्र अत्यन्त व्याकुल हो रहा है ।

नारद—(प्रगट होकर) हे भामण्डल! यह चित्र सीता का है ! तुम इस पर इतने आसक्त हुवे हो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । वह परम सुन्दरी है । मुख कमल के समान और केश मेघ के समान काले हैं । कटी केहरी की कटी के समान है । ये मिथिला नगर के राजा जनक की स्त्री विदेहा की पुत्री है । तुम्हारे योग्य जान कर ही मैंने तुम्हें इसका चित्र लाकर दिखाया है । तुम विद्याधर हो तुम्हारे लिये उसे प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं है । अच्छा मैं अब जाता हूं ।

(चला जाता है)

भामण्डल—हा सीता !

चन्द्रगती—पुत्र तुम शोक मत करो। मैं तुम्हें अवश्य ही सीता दिलाऊंगा तुम चैन से रहो। (सेवक से) जाओ चपलवेग को शीघ्र बुला लाओ (जाता है चपलवेग सहित आता है।)

चपलवेग—महाराजा धिराज की जय हो। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है।

चन्द्रगती—(चपलवेग को एकांत में बुलाकर) देखो हम लोग विद्याधर हैं। भूमीगोचरों के घर जाकर उनसे कन्या नहीं मांग सकते इस लिये तुम मिथिला जाकर घोड़े का रूप बनाओ। जब राजा जनक सवारी करें तब उन्हें यहां उड़ाकर ले आओ। कार्य अत्यन्त कुशलता से होना चाहिये। धोका न खाना। काम करके जल्दी आना।

चपलवेग—जैसी आज्ञा (जाता है)

चंद्रगती—पुत्र भामण्डल चलो महल में चलो। तुम्हारी माता तुम्हारी बाट देखती होगी। अब तुम कोई चिंता न करो सीता तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी।

(सब चले जाते हैं। पर्दा गिरता है।)

अंक द्वितिय—दृश्य चतुर्थ

(राजा जनक और चपलवेग आते है।)

जनक—तुम मुझे यहां पर क्यों ले आये हो? क्या तुम लोग इसी लिये विद्या साधन करते हो कि दूसरों को कष्ट दो। किसी विषय की शिक्षा प्राप्त करके यदि उसके द्वारा दूसरों को लाभ न पहुंचा सकें तो कष्ट भी नहीं देना चाहिये।

चपलवेग—तुम्हें अपने यहां आने का हाल अभी मालूम होजायगा। यहीं से थोड़ी दूर पर एक जिन मंदिर है तुम उसमें जाकर ठहरो। मैं रथनूपुर जाता हूं। (चला जाता है।)

जनक—न मालूम क्या क्या मेरे अशुभ कर्मके उदय आयेंगे।

(चला जाता है, पर्दा खुलता है, जिन मंदिर का दृश्य सामने आता है वो वहां पहुंचता है।)

प्रार्थना गाना।

जनक—जग से अनोखा तुझको, हे देव मैंने देखा।
ये शांत रूप तेरा हां, ये शांत रूप तेरा,
जिनराज मैंने देखा।

तू कर्म का विनाशी, मुक्तीका है विलासी।
सब दोषसे रहित तू हां सब दोष से रहित तू।
जिनराज मैंने देखा॥

(दूसरी ओर देखकर) हैं!-ये किसकी सेना आ रही है?

मैं अब किसकी शरण ग्रहण करूं ? याद आया जिनराज की शरण के तुल्य इस जग में दूसरी शरण नहीं है। मैं इन्हींके सिंहासनके पीछे जाकर छिपता हूं। (छिप जाता है।)

(चन्द्रगती सेवकों सहित आता है। भक्त लोग जय जिनेन्द्र के गान में मस्त हैं। कोई नाचते हैं, कोई बाजे बजाते हैं कोई घंटों की ध्वनी कर रहे हैं। सबके सब भक्ती पूर्वक शीष झुकाते हैं।)

चन्द्रगती— प्रार्थना।

तुम परम पावन देव जिन अरि, रज रहस्य विनाशनं।
तुम ज्ञान दृग जल बीच त्रिभुवन, कमलवत प्रति भासनं॥
आनन्द निधन अनंत अन्य, अचित संतत्त परनये।
बल अतुल कलित स्वभावतें नहीं, खलित गुनअमिलित थये

(उसकी प्रार्थना को सुनकर राजा जनक बाहर आ जाता है। चन्द्रगती जनक को देखता है।)

चंद्रगती—हे महाशय ! आप यहां पर किस लिये पधारे हैं। आपका नाम ग्राम कौनसा है ?

जनक—मैं मिथिलापुरी का राजा जनक हूं। माया मई घोड़ा मुझे यहां उड़ा लाया है। आपका क्या नाम है ?

चन्द्रगती—मैं रथनूपुर का राजा विद्याधरों का स्वामी चन्द्रगती हूं। तुम्हें देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। तुम्हें मैंने ही बुलाया है।

जनक—ऐसे योग्य पुरुष से मित्रता करने में मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है ?

चन्द्रगती —मैंने सुना है कि तुम्हारे एक सीता नामक पुत्री है उसके रूप की प्रशंसा सुन कर मेरा पुत्र भामण्डल उसे प्राप्त करने के लिये अत्यन्त व्याकुल है। सो तुम अपनी पुत्री मेरे पुत्र से व्याह कर मुझसे चिरकाल सम्बन्ध स्थापित करो।

जनक—हे विद्याधरादि पती, मैं अपनी पुत्री को तुम्हारे पुत्र के लिये देने में असमर्थ हूं क्योंकि मेरा निश्चय दशरथ के पुत्र राम को पुत्री देने का है।

चन्द्रगती—तुमने उसमें क्या गुण देखे जो उसे पुत्री देने का विचार किया।

जनक—सुनिये जिस समय मेरे ऊपर म्लेच्छों का आक्रमण हुआ था, उस समय राम लक्षमण दोनों भाइयोंने ही आकर मुझे और मेरे नगर को बचाया था, उनको प्रत्युपकार में मैंने अपनी पुत्री को देने का निश्चय किया है। वो महान पराक्रमी ऐश्वर्यमान है

चन्द्रगती—हे जनक ! तुम उस छोकरे की क्यों इतनी प्रशंसा करते हो। हम विद्याधरों से बढ़कर वो कदापि नहीं हो सकता। विद्याधर आकाश में चलने वाले देवों के समान हैं।

राम लक्षमण भूमी पर चलने वाले पशुओं के समान हैं। तुम क्यों हमारे सामने उनकी महिमा गाते हो। तुम्हें बुद्धि लेश मात्र भी नहीं है जो हम बिद्याधरों का सम्बन्ध छोड़कर भूमीगोचरियों से संबंध जोड़ते हो।

जनक—तुम जिन भूमीगोचरियों की इतनी निंदा करते हैं वो ही देवों के द्वारा पूजे जाते हैं। आकाश में तो कौआ भी चलता है इससे क्या हुआ। तीर्थंकर जिनकी इन्द्रादिक देव पूजा करते हैं, विद्याधर लोग जिसके चरणों में मस्तक रगड़ते हैं वो भूमीगोचरी ही होते हैं। कहो विद्याधरों में कभी कोई तीर्थंकर हुआ इतने बड़े २ पुरुषों को पशु बताते हुवे तुम्हें लाज आनी चाहिये।

चन्द्रगती—यदि तुम राम और लक्ष्मण को बलवान पराक्रमी समझते हो तो मैं दो धनुष देता हूं। एक वज्रावती दूसरा सागरावती यदि वो दोनों भाई इन दोनों धनुष को चढ़ा देंगे। या केवल राम ही यदि वज्रावर्त धनुष को चढ़ा देगा तो तुम सीता को उसे देदेना। वरना मेरे सेवक जो धनुष लेकर जायेंगे वो सीता को बलात्कार हर लायेंगे। तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे।

जनक—मैं तुम्हारी इस बात को मानता हूं। अब मुझे दोनों धनुषों सहित मिथिला पहुंचाइये।

चन्द्रगती—(सेवकों से) जाओ आयुधशाला से दोनों धनूष ले जाओ और इन्हें लेजाओ । मिथिलापुर में बीस दिन तक तुम रहना । यदि इस बीचमें कोइ धनुषों को न चढ़ा सका तो सीता को बलात्कार ले आना ।

सब सेवक—(एक स्वर से) जो आज्ञा ।

पर्दा गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य पांचवा

(साधु और ब्रह्मचारी आते हैं)

ब्र०—कहिये साधूजी कुछ देखा ?

साधु—देखा क्या, मेरी तो बुद्धी चक्कर खाती है । क्यों जी ? जैसे इधर उधर से हमले हुवे और आज कल के इतिहासों में वो प्रसिद्ध है ! ऐसे ही क्या उस समय भी होते थे ? ये तो बात बिल्कुल एक नई ही है ।

ब्र०—हिमालय के उत्तर की म्लेच्छ जातियों के भारत वर्ष पर सदा से हमले होते रहे हैं ! जिस समय इन्होंने जनक के राज्य पर हमला किया उस समय इनकी संख्या अधिक थी किंतु रामचन्द्रजी ने इन्हें सबको मारा । इनका सर्दार केवल दस सवारों सहित विंध्याचल आदि पर्वतों में जाकर छिप गया । वहां इन लोगों का परिवार अभी तक चला आता है । किन्तु राम-

चन्द्र के भय से इन लोगों ने मांस खाना बहुत कम कर दिया था और फल फूल आदि खा कर जीवन बिताते थे। इन्हें आज भील कह कर पुकारते हैं।

साधु—धनुष के विषय में मुझे बहुत भ्रम था कि वो परशुराम का किस प्रकार हो सकता है। परशुराम को क्षत्रियोंने शत्रु कहा है। राजा जनक क्षत्री था। फिर परशुराम ने अपने शत्रू के यहां धनुष क्यों रखा? इत्यादि अनेक बातों का विभ्रम मेरे चित्त में नष्ट हो रहा है।

ब्र०—एक ही विभ्रम नहीं, ज्यों २ तुम इसे देखोगे त्यों २ तुम्हारे चित्त से विभ्रम नष्ट होगा। और सुनो? जनक ने वहां पर तो इस बात को स्वीकार कर लिया। किन्तु मन में अति दुखी हुआ। क्योंकि वह समझता था कि राम लक्ष्मण इन धनुषों को नहीं हटा सकेंगे। यह दृश्य बड़ा दुख प्रद है। आओ चलो इसे दिखायें।

(चले जाते हैं। जनक और विदेहा आते हैं जनक को उदास देख कर उसकी स्त्री विदेहा उससे पूछ रही है)

विदेहा—प्राणनाथ! कहिये आप इतने व्याकुल क्यों हैं? क्या किसी ने आपका अपमान किया है जो आप इतने व्याकुल हैं। मुझे कहिये मैं अभी रामचन्द्र के पास समाचार भेज कर

उनसे बदला दिलवाऊं ।

जनक—प्रिये ! तुम मुझे दुखी करो, मेरी चिन्ता दूसरी ही है।

विदेहा—दे देव ! आप मुझे वह चिन्ता कहिये ।

जनक—मत सुनो । यदि सुनोगी तो दुख से व्याकुल हो जाओगी ।

विदेहा—प्राणनाथ ! शीघ्र कहिये वो क्या बात है ।

जनक—रथनुपुर के राजा चन्द्रगती ने दो धनुष वज्रावर्त और सागरावर्त दिये हैं जो महा भयानक हैं। जिनका शब्द अति विकराल है । उसने कहा है कि यदि इनको राम और लक्ष्मण नहीं चढ़ा सके तो उसके सेवक सीता को बल पूर्वक हर ले जायेंगे । मैं समझता हूं कि राम इस धनुष को नहीं उठा सकेंगे वह दुष्ट विद्याधर मेरी पुत्री को हर ले जायेंगे ।

(आंखों में आंसू लाता है)

विदेहा—हा मेरा कैसा बुरा भाग्य है जन्म होते ही किसी ने मेरे पुत्र को हर लिया । अब ये पुत्री भी जो मुझे पुत्र समान है हरी जायगी । मैं कैसी अभागिनी हूं । संतान का सुख क्या मुझे बिल्कुल ही नहीं है ? (रोती है ।)

जनक—प्रिये रोओ नहीं, मैं स्वयंवर रचता हूं । उसमें सब भूमीगोचरी राजाओं को बुलाता हूं । यदि अपने शुभ कर्म

का उदय होगा तो अवश्य ही पुत्री रामचन्द्र से परणाई जायेगी, यदि राम और सीता का संयोग है तो उसे कोई नहीं मिटा सकता। मैं जाकर स्वयंवर की रचना करता हूं तुम महलमें जाओ।

(विदेहा एक ओर को चली जाती है। जनक दूसरी ओर जाता है।)

अंक द्वितीय—दृश्य छटा

(स्वयंवर मंडप। बीच में दोनों धनुष रखे हुवे हैं। वज्रावर्त ऊंचे पर है और सागरावर्त नीचे पर है। सब राजा लोग बैठे हैं। दशरथ भी अपने चारों पुत्रों सहित बैठे हैं। विद्याधर लोग भी बैठे हैं।)

सखियों का नाच गाना

देख सखी धूम मची छा रही खुशी।
आये सभी देशपति मच रही खुशी॥
रत्न जटित देख मुकुट, देख सखी टेढ़ी भ्रकुटि
शोभतेहिं सिंह सरीखे अति सुखी॥
देख सखी धूम मची छा रही खुशी।
धनुष तोड़, पहन मौड़ कौन बने जानकीपति

देख कौन धनुष चढ़ा, देयगा खुशी।
देख सखी धूम मची छा रही खुशी॥
(चली जाती हैं।)

जनक—हे नराधिपतियो मैंने आप लोगों को केवल इसी लिये इतना कष्ट दिया है कि आज मेरी पुत्री सीता का स्वयंवर है यह ऊपर रखा हुआ वज्रावर्त नाम का धनुष जो चढ़ा देगा उसे मैं सीता प्रदान करूंगा। आप सब राजा लोग एक एक कर के इसको चढ़ाने का प्रयत्न करें।

१ राजा—

(घमंड से) चाहूं तो पृथ्वी हिला डालूं एक ही फटकार से।
सारी दुनिया काट डालूं एक ही तलवार से॥
ये धनुष क्या चीज मेरे सामने ना चीज है।
खैंच इसको ब्याहूं सीता, जो अनोखी चीज है॥
(धनुष के पास जाते ही चकरा जाता है। क्योंकि वह चमक रहा है। उसका तेज सूर्य के समान है। वह नीचे उतर कर कहता है।)
प्राण हैं देने नहीं, जाकर धनुष के पास में।
जिसके कारण मौत हो, वो सीता जाय खाक में॥
प्राण हैं बाकी यदि तो, अपना सब संसार है।

प्राण ही जायें चले तो, कौन किस की नार है ॥

(बैठ जाता है । दूसरा राजा उठता है)

देखता हूं बल में अपना, खैंच सकता या नहीं।

ऐसा ना हो खैंचने में, प्राण खिंच जावें कहीं ॥

(नीचे से ही देख कर डर जाता है)

रूप से भरपूर है तो क्या हुआ, है काल मुख।

देखते हैं खैंच आयुध, कौन पाता है वो सुख ॥

नार खानी है नरक की, चाहिये हमको नहीं ।

हमतो बन के साधू जायेंगे करेंगे तप कहीं ॥

(बैठ जाता है । तीसरा उठता है)

दूर से ही देख करके, लोग डरते हैं जिसे ।

देखना दूंगा चढ़ा, क्षण मात्र में ही मैं उसे ॥

जानकी सी नार को कब छोड़ सकता हूं भला।

देखिये आयुध चढ़ाने के लिये अब मैं चला ॥

(वहां जाकर धनुष के हाथ लगाते ही पटाक से पृथ्वी पर आकर पड़ता है उठ कर कहता है)

इसमें है जादू कोई जा छू तलक पाया नहीं।

इन्द्र जालिक तन्त्र है या देव की माया कहीं ॥

भूमी गोचरि कोई भी इसको चढ़ा सकता नहीं ।

बिद्याधर का है धनुष ये बस चढ़ा सकता वही ॥

(बैठ जाता है)

जनक—हे रामचन्द्र ! तुम अभी तक क्यों चुप हो ? क्या इस धनुष को कठिन समझते हो ? या अपने को असमर्थ समझते हैं ?

रामचन्द्र—मैं अभी तक केवल इसी लिये चुप हूं कि कहीं मेरे पश्चात इन राजाओं में से कोई पीछे ताना न मारे कि धनुष हम चढ़ा सक्ते थे। इस लिये आप पहले इन सब राजाओं को अपने बल की परिक्षा कर लेने दीजिये। बाद में मैं आपके संदेह को क्षण मात्र में दूर करदूंगा।

जनक—यदि कोई राजा बाकी रह गये हों तो उठो। धनुष चढ़ाओ। पीछे कोई ताना न देना।

दशरथ—पुत्र ! तुम उठकर धनुष को चढ़ाओ महाराजा जनक के सन्देह को दूर करके इनको सुख उपजाओ।

रामचन्द्र—जो आज्ञा !

(उठकर पिता के पैर छूकर धनुष के पास जाते हैं। पास जाते ही धनुष ज्योति रहित होजाता है, रामचन्द्र उसको आधा उठा लेते हैं। और उरस्थल से लगाकर कहते हैं)

यदि अब भी किसी को अपने बल का अभिमान हो तो आकर इस धनुष को चढ़ाओ।

जनक—हे पद्म! तुम शीघ्रता पूर्वक इसे चढ़ाओ। तुम्हारे सिवा इस पृथ्वी पर इसे दूसरा नहीं चढ़ा सकता।

(रामचन्द्र उसे चढ़ाते हैं। बड़ी भयंकर आवाज होती है। सारा मही मण्डल गूंज उठता है, राम उस पर चढ़ाने के लिये बाण निकालना चाहते हैं। दशरथ कहते हैं।)

दशरथ—पुत्र बस, इसके भयंकर शब्दसे सारा मही मंडल गूंज उठा है। यदि तुम बाण चढाओगे तो न मालूम इस पृथ्वी पर क्या क्या अनर्थ होजाय। अब इसको तुम इसी के स्थान पर रखदो। इसकी डोरी खोल दो।

(रामचन्द्र डोरी खोलकर उसे वहीं रख देते हैं, सीता आकर उनके गले में उसी स्थान पर वर माला पहनाती है। चारों ओर जयकार के शब्द होते हैं। दोनों वहां से आकर बैठ जाते हैं, सीता राम के बायें ओर बैठती है।)

जनक—रामचन्द्र ने इस वज्रावर्त धनुष को चढ़ाकर मुझे परम हर्ष उपजाया है। लक्ष्मण! तुम इस सागरावर्त धनुष को चढ़ाकर इन विद्याधरों के मनको सन्तोष दो।

लक्ष्मण—ये जरासा धनुष मेरे हाथ में नहीं शोभेगा सिंह को खरगोश का शिकार करना नहीं शोभता, केवल ज्ञानी के अवधिज्ञान की प्रशंसा नहीं शोभती, किन्तु फिर आपकी आज्ञा

से मैं इसे चढ़ाता हूं ।

(लक्ष्मण के जाते ही वो धनुष ज्योति रहित हो जाता है । लक्ष्मण उसे एक हाथसे उठाते हैं, भयंकर शब्द होता है, उसको चढ़ाकर डोरी बांधते हैं । विद्याधरों का सर्दार बोल उठता है ।)

सर्दार—हे लक्ष्मण बस करो । हम लोगों ने तुम दोनों भाइयों का अतुल पराक्रम देख लिया । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं अपनी अत्यन्त रूपवती अठारह कन्यायें तुम्हें परणाता हूं तुम्हारे समान इस पृथ्वी पर दूसरा बल धारी नहीं है ।)

(ऊपर से पुष्प वृष्टि होती है । पर्दा गिरता है)

अंक द्वितिय—दृश्य सप्तम

(भामण्डल चन्द्रगती और दो सेवक आते हैं)

भामण्डल—तो क्या मुझे प्राण की देने वाली जानकी नहीं मिलेगी ? आप विद्याधर होकर भी मेरी मनो कामना पूर्ण न कर सके ?

चन्द्रगती—पुत्र, क्या करें हम अपने ही वचन के द्वारा ठगे गये हैं । हमारा दिया हुआ धनुष रामचन्द्र ने चढ़ा कर सीता ब्याह ली ।

भामंडल—आप राम को ब्याहने से पहले ही सीता को क्यों न हर लाये । अब भी किसी प्रकार उस मेरे प्राणों की

भाग्य को मुझसे मिलाओ ।

चन्द्रगती—हे पुत्र ! तू एक भूमी गोचरी पर क्यों इतना आसक्त हो रहा है । तू कहे तो उससे भी कहीं बढ़ कर विद्याधरों की कन्यायें तुझे दिलाऊं । अब वो राम के पास चली गई है । वहां से उसे कोई भी नहीं हर सकता ।

भामंडल—रहने दीजिये, मैं स्वयं जाकर उसे हर कर लाऊंगा । (चलने लगता है । रुकता है)

हैं । यह क्या मेरे पैर पीछे क्यों पड़ते हैं । (सोच कर) नहीं. २ सीता मेरी बहन है । धिक्कार है मुझे जो मैंने ऐसा पाप विचारा । (मूर्छित होजाता है)

चन्द्रगती—भामंडल, भामंडल, उठ, उठ, मुझे सारा वृत्तान्त बता । शीघ्र उठ, तूने कैसे जाना कि सीता तेरी बहन है ! बता ! बता !! (वो सचेत होकर कहता है)

भामंडल—मुझे यका यक जाती स्मरण हो आया है । सो सुनिये पूर्व भव में मैं विदग्धपुर नगर में कुंडल मंडित नाम का राजा था । मुझ पापी ने मायाचार से एक ब्राह्मण की स्त्री हरी । वह ब्राह्मण दुखी होकर कहीं चला गया ! उसने मुनी होकर देव पद प्राप्त किया मैंने दशरथ के पिता राजा अरण्य के देश में उत्पात किया सो उसके सेनापती बालचन्द्र ने मुझे पकड़

कर मेरी सारी राज सम्पदा हरली जब मैं वहां से छूटा तो मुनी होकर समाधि मरण पूर्वक मरा। जिस के फल स्वरूप में रानी विदेहा के गर्भ में सीता सहित आया। उस देवने अवधिज्ञान पूर्वक मुझे विदेहा के गर्भ में जान कर दुख देना चाहा किन्तु गर्भ में दुख इस लिये नहीं दिया कि उसका वैर माता से न होकर मुझसे ही था। उसने जन्मते ही मुझे हर लिया। मारना चाहा किन्तु फिर दया करके छोड़ दिया। आप मेरे बड़े उपकारी हैं जो आपने मुझे पाला। आप दोनों मेरे पुर्व भव के माता पिता हैं! मैं बड़ा नीच हूं। जो मैंने अपनी बहन को ही हरना चाहा ऐसा तो इस जगत में कोई भी नहीं करता।

चन्द्रगती—यह संसार महा दुख रूप है। इस संसार में रमना महा मूर्खता है। पुत्र भामण्डल तुम राज काज सम्हालो। मै जंगल में जाकर अपने लिये मुक्ती का मार्ग ग्रहण करुंगा। यदि इस राज काज में सुख होता तो हमारे बड़े क्यों इसे छोड़ते

भामंडल—पिताजी आप एक दम ये क्या विचार रहे हैं। अभी तो आपकी आयु भी इस योग्य नहीं है।

चन्द्रगती—कुछ भी हो। मैं अब घर में नहीं रह सक्ता मेरे लिये ये राज महल अग्नी कुण्ड सरीखा प्रतीत होता है। तुम्हारे माता पिता अत्यन्त व्याकुल हो रहे होंगे। चलो तुम उनसे मिलो। मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं।

भामंडल—सब से प्रथम मैं अपनी बहन सीता से मिलूंगा जिसके रूप की प्रशंसा इतनी अधिक हो रही है। मेरे धन्य भाग्य हैं कि मैं ऐसी बहन का भाई हूं जो अपने रूप गुण और शील के द्वारा जग विख्यात है।

चन्द्रगती—चलो, वहीं चलो। तुम्हारे माता पिता को भी वहीं बुलायेंगे। (सेवकों से) तुम दोनों में से एक मिथिला जाकर जनक और विदेहा को अयोध्या ले आओ। और एक अयोध्या जाकर हमारे आने की सूचना दो। (दोनों सेवक चले जाते हैं) पुत्र ! लो तुम ये ताज पहनो मैं इससे दबा जा रहा हूं।

(ताज सर से उतार कर भामण्डल को पहनाता है)

भामण्डल—पिताजी ! मुझे आपके वियोग का अत्यन्त दुख है।

(दोनों चले जाते हैं। पर्दा खुलता है, सीताजी और रामचन्द्रजी बगीचे में खड़े हुवे हैं।)

सीता—आज मेरे वाम अंग फड़क रहे हैं। चित्तमें एक नया हुल्लास उत्पन्न होरहा है। अवश्य कोई शुभ समाचार प्राप्त होंगे।

रामचन्द्र—क्यों नहीं ! शुभ लक्षणों वाली तुम्हें अशुभ समाचार किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं। आज ज्ञान होता है कि तुम्हें किसी बान्धव का मिलन होगा।

दूत—(आकर) श्री रामचन्द्रजी की और सीताजी की जयहो।

सीता—कहो दूत क्या समाचार लाये हो ?

दूत—मैं ऐसा समाचार लाया हूं जो अभी तक कोई नहीं लाया होगा।

सीता—वह क्या शीघ्र कहो ?

दूत—आपके भाई………

सीता—मेरा भाई ! मेरा भाई कहां है ?, तू मेरी हंसी क्यों उड़ाता है उसे तो जन्मते ही कोई हर ले गया है। वह अब कहां। हाय भाई……(रोने लगती है)

दूत—आपके भाई आपसे मिलने आ रहे हैं। वह एक विद्याधर के द्वारा पाले गये हैं। उनका नाम भामण्डल है, उन्हें जाती स्मरण हुआ है। आप हर्ष मनाइये।

सीता—कहां है ! कहां है !! कहां है !!! (चारों तरफ देखती है, भामण्डल को आते देख उससे चिपट जाती है।) भाई तुम अब तक कहां रहे ? मुझे क्यों नहीं मिले ? माता तुम्हारे लिये रात दिन रोती हैं।

(गले चिपटकर रोने लगती है, भामण्डल भी रोने लगता है)

भामण्डल—हाय कर्मों की गती विचित्र है। ऐसी बहन से मैं अब तक न मिल सका बहन ! तुम रोती क्यों हो ! खुशी मनाओ। देखो सामने तुम्हारे भर्तार रामचन्द्रजी खड़े हैं। इधर

पिता चन्द्रगतीजी खड़े हैं। प्रेम के लिये बहुत समय है।

सीता—भाई मुझे तुम्हें देखकर आज अनोखी सम्पदा मिली है। (चन्द्रगती से) पिताजी आपने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया जो मेरे भाई को मुझसे मिलाया !

चन्द्रगती—उपकार नहीं, मैं अपने दुर्भाग्य समझता हूं जो अब तक तुम सरीखी पिता कहने वाली पुत्री के दर्शन न कर सका। तुम्हारी और रामचन्द्र की जोड़ी देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष है।

(राजा जनक आता है। विदेहा भी आती है। दशरथ भी आते हैं। और भी सब लोग आ जाते हैं विदेहा दौड़कर भामण्डल के चिपट जाती है। पुत्र ! पुत्र कहते नहीं थकती। सब आपस में मिलेते हैं। जनक की आंखों से भी पानो वह रहा है। दशरथ आदि सब हर्ष मना रहे हैं।)

ड्राप गिरता है

द्वितिय अंक समाप्त

अंक तृतिय—दृश्य प्रथम

(जंगल का दृष्य है। एक शिला पर एक मुनि बैठे हैं। राजा दशरथ उनके पास आते हैं। प्रणाम करके स्तुति करते हैं)

स्तुति

है कांच कंचन एक समजो, बन महल सब एकसे।
चाहै रिपु हो मित्र हो या, भाव हित से देखते ॥
तन सुखाते नित्य तप से, कर्म को हो मेटते ।
छोड़ सब जंजाल तुम निज, आतमा से भेंटते ॥
हे गुरू ? मैं चाहता हूं, धर्म का उपदेश हो ।
चाहता मुनिपद ग्रहण करना सभी ये भेष खो ॥
हूं दुखी संसार से मैं, तारिये मुझ को गुरू ।
दीजिये शिक्षा विमल को, होय आत्मोन्नति शुरू॥

मुनिमहाराज—हे भव्य तेरे धरम उपदेश सुनने के बहुत उत्तम भाव पैदा हुवे धर्म दो प्रकार का है एक मुनि धर्म और दूसरा ग्रहस्थ धर्म । ग्रहस्थ धर्म में मनुष्य घर में रहते हुये व्यापार करते हुवे भी यथा योग्य बारह व्रतों को पालते हुवे अपनी आत्मा का उपकार कर सकते हैं । मुनि धर्म अत्यन्त दुर्लभ है । इसमें सारे घर बार नारी बच्चे सब छोड़ कर जंगल में वास करना पड़ता है । पंच महाव्रत पालने पड़ते हैं । अपनी देह से ममत्व छोड़ना पड़ता है । तू जिस धर्म को चाहे मैं संबोधूं ।

दशरथ—हे गुरू! मैं आपसे मुनि का धर्म सुनना चाहता हूं। मैं इस संसार से व्याकुल हो रहा हुं। मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिससे मुझ में वैराग्य उत्पन्न हो।

मुनी—हे भव्य सुन! इस संसार में चार गतियां हैं। किन्तु जीव का सुख किसी भी गती में नहीं है। मनुश्य गती में मनुष्यों को अनेक प्रकार की चिन्ताओं और इच्छाओं के कारण कभी सुख नहीं मिलता। किन्तु मनुष्य गती से जीव मोक्ष जा सकता है इसीसे इस गती को सर्वोत्कृष्ट बताई है। अत्यन्त कठिनता से जीव को मनुष्य की देह प्राप्त होती है। मनुष्यों में भी उत्तम धर्म उत्तम कुल उत्तम जाति और उत्तम शरीर का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है यदि इन्हें पाकर भी किसी ने धर्माचरण नहीं किया तो समझ लो कि उसने चिन्तामणि रत्न को हाथ से खोदिया। जो लोग कहते हैं मनुश्य बन कर भोगविलास करना चाहिये वो मूर्ख हैं। ये भोगविलास मनुष्य को अपनी ओर लुभाने वाले हैं उनकी ओर न खिच कर यदि ये मनुष्य धर्म के मार्ग पर आचरण करता है तो ऐसे सुख को प्राप्त होता है जो कभी नाश न हो। इस लिये हे भव्य तूने मनुष्य की उत्तम देह पाई है तू इस संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिये मुनी धर्म का आचरण कर।

दशरथ—हे जगत गुरु स्वामी ! आपने अपना सत उपदेश देकर मुझे दृढ़ किया । मैं अयोध्या जाकर रामचन्द्र को राज्य देकर बनमें जाकर मुनीवेष धारण करूंगा ।

पर्दा गिरता है ।

अँक तृतिय—दृश्य द्वितीय

कौसिक

(एक साधू आता है, उसके पीछे साधू भेष में ही सतीष आता है ।)

साधू—जय लक्ष्मी, जय लक्ष्मी ।

गाना

लक्ष्मीसे इस जगके भीतर, नर जन मौज उड़ाते हैं।
लक्ष्मी बिन कहलाते लुच्चे, पगपग ठोकर खाते हैं ॥
चाहे होय कुकर्मी पापी, पर होवे लक्ष्मी वाला ।
भेष छिपा करके उसका यश, पंडित गण सब गाते हैं
लक्ष्मी से परसन हो लक्ष्मी, पति से प्रेम दिखाती हैं,
लक्ष्मी बिन पति तो निंश दिन ही, घर जाते भय खातेहैं
कहलाना हो बड़ा पुरुष तो, करलो लक्ष्मी की सेवा।

जो हैं लक्ष्मीवान जगत में, सब से पूजे जाते हैं॥

सतोष—हे साधु बाबा, आप मुझे ऐसा मार्ग बताइये जिससे मैं इस संसार में अपना हित कर सकूं। मैं दुनिया से भयभीत हूं।

साधू—यदि तुझे अपना हित करना हो तो जाकर किसी शहर से बाहर ध्यान लगाकर बैठ जा। लोग वहां आ आकर के तुझे मस्तक नवायें और तुझे पूजें। तू जिस तरह हो सके उन्हें फांसे में लाकर खूब ठगना इस तरह से तुम बड़े मजे से अपनी जिन्दगी बिता सकोगे।

संतोष—रहने दीजिये मुझे आपका उपदेश नहीं चाहिये जिस संसार से मैं इतना भयभीत हूं उसी में फंसने का आप मुझे मुझे उपदेश देते हैं। आपका काम जिस प्रकार भोली दुनिया का ठगना है वही मुझे बताते हैं। धर्म समझकर लोग आपको पैसा देते हैं। उससे आप महा निंदनीय वस्तु गांजा और भंग पीते हैं।

साधु—दुष्ट कहींके मेरे लिये तू ऐसे बुरे समझ बोलता है। मारे डंडों के तुझे बेहोश कर दूंगा।

सतोष—याद रखो! यदि तू तंढांग से पेश आये तो मारते २ जहन्नुम तक पीछा नहीं छोड़ूंगा। तुम जैसे साधु

साधू नहीं किन्तु गलियों में घूमने वाले गुंडों से भी बदतर हैं। साधू लोग कभी क्रोध नहीं करते। जिसने क्रोध किया वो साधू नहीं क्रोधी स्वाधू है।

साधु—एक ब्राह्मण साधू को ऐसे बचन कहते हुवे तेरी जीभ क्यों नहीं कट जाती ?

सतीष—यदि मैं झूठी निन्दा करता होता तो अवश्य जीभ कटती।

सा०—(चलते २) मैं तुझे श्राप देता हूं कि तेरा सर्व नाश होगा। (चला जाता है)

सतीष—जिस मनुष्य ने अपने जीवन में सदा दुष्कर्मों के सिवा कोइ सुकर्म नहीं किया उसका श्राप कभी नहीं लग सक्ता। जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वो कभी श्राप देते ही नहीं। मैंने सुना है कि जैन मुनि अत्यन्त धीर बीर होते हैं। वो सदा जीवों को संसारसागर से पार उतरने का उपदेश देते हैं। आत्मकल्याण के इच्छुक जीवों के लिये वो नौका के समान हैं। मैं उन्हीं से जाकर धर्म श्रवण करूंगा। और जग से पार उतरने के लिये उनके बताये मार्ग पर आचरण करूंगा। (सामने देख कर) हैं ! ये कौन दुखिया नारी आ रही है।

मोहिनी—(आकर) मैं महा पापिनी हूं। कभी भी मैंने

धर्म का सेवन नहीं किया। पिता ने मुझे अंग्रेजी पढ़ाई। यदि वो मुझे देश भाषा पढ़ाते मुझे सीता जैसी सतियों के दृष्टांत सुनाते तो मेरा यह हाल न होता। सतीष को अनादर करके घर से निकाल कर उस डायरेक्टर के फन्दे में पड़ कर पैंतालिस हजार रुपया बर्बाद कर दिया। बाद में इस प्रकार मारी २ फिर रही हूं। काम के आवेश में आकर मैंने क्या २ कुकर्म नहीं किये

सतीष—(स्वगत) बुरे का परिणाम सदा बुरा होता है जी में आता है इसे अपने अपमान का बदला दूं। किन्तु नहीं ये अपने कामों पर आंपही पछता रही है। सज्जन लोग अपने शत्रू का भी उपकार ही सोचते हैं। ये संसार से दुखी होगई है। (मोहिनी से) तुम कौन हो ?

मोहिनी—मैं एक मोहिनी नाम की पापिनी हूं। तुम कौन हो भाई ?

सतीष—मुझे तुमने नहीं पहचाना मैं सतीष हूं।

मोहिनी—(पैरों में पड़कर) भाई मेरे अपराधों को क्षमा करो। तुम मेरे भाई हो मुझे बहन समझकर धर्म के मार्ग पर लगाओ।

सतीष—मोहिनी ! तुम मेरी धर्म बहन हो। मैं श्री दिगम्बर मुनी के पास धर्म श्रवण के लिये जा रहा हूं। तुम भी मेरे

साथ चल कर धर्म श्रवण करो । और इस मोह जंजाल को छोड़ कर धर्म मार्ग पर आचारण करके अपने जीवन को सफल बनाओ।

मोहिनी—क्यों भाई ! दिगम्बर मुनि के पास जाने की क्या आवश्यक्ता है ? क्या हमारे यहां कम साधू हैं ? हमारे धर्म में तो इनको देखना भी पाप बताया है ?

संतोष—हमारे यहां जितने साधू हैं सब स्वार्थान्ध और दुनियां को जंजाल में फंसाने वाले हैं वह स्वयं ही जग से नहीं छूटते, दूसरे को क्या छुड़ा सकते हैं । उनको देखने में पाप बताने वाले भी स्वार्थी लोग ये ही हैं जिससे उनकी पोल छिपी रहे । जैन मुनि सदा निस्वार्थी हैं वो स्वयं जग से तरने वाले हैं ! तथा दूसरों को तारने वाले हैं । हम उन्हीं के पास चलेंगे ।

दोनों— गाना

सभी है झूंठा जग जंजाल ।
मात पिता भाई औ नारि, स्वारथ के सब मित्र ।
कोई नहीं बचावनहारा जब आता है काल ॥ स०॥
जो इसमें रमकर सुख चाहें, पावें दुःख अनेक ।
मुनी जनन होते हैं सन्मुख, लेय धरम की ढाल ॥स०
पाकर ये नर देह नहीं जो, करते धर्माचार ।

सहते दुख अनेक जगत में, पक जाने पर बाज ॥ स०
जाकर धर्मुपदेश सुनेंगे, बनें तपस्वी वीर ।
करते निज आतम को उन्नत, सुखी रहें सब काल ॥स०

(दोनों चले जाते हैं ।)

अँक तृतिय—दृश्य तृतीय

(दशरथ और केकई बैठे हुवे हैं ।)

केकई—नाथ मुझे अत्यन्त दुख है कि आप दीक्षा लेकर बन में जा रहे हैं ।

दशरथ—इसमें दुख काहे का ? इसमें तुम्हें हर्ष मनाना चाहिये कि तुम्हारा पति कल्याण मार्ग पर लग रहा है ।

केकई—उधर भरत ने जब से आपके वैराग्य का समाचार सुना है कहता है कि मैं भी पिताजी के साथ बन में जाकर दीक्षा लूंगा । नाथ मैं अब क्या करूं ? मैं तो पती और पुत्र दोनों से रहित होजाऊंगी ।

दशरथ—प्रिये ! कोई ऐसा उपाय निकालो जिससे भरत घर में रह जाय और वैराग्य का नाम छोड़दे ।

केकई—आपके पास मेरा बचन धरोहर है उसको मैं अब मांगती हूं ।

दशरथ—मांगो प्रिये ! मैं स्वयं भी चाहता हूं कि दीक्षा धारण करने से प्रथम ही तुम्हारे ऋण से छूटूं । सिवाय मुझे दीक्षा से रोकने के चाहे कुछ भी मांगलो । मैं वही दूंगा ।

केकई—मैं आपसे उस वचन स्वरूप भरत के लिये राज्य मांगती हूं । यद्यपि मैं यह अनर्थ कर रही हूं कि राम के होते हुवे भरथ को राज्य दिलाती हूं, किन्तु मैं पुत्र प्रेमसे विवश हूं ।

दशरथ—मैंने तुम्हारे वचनानुसार भरथ को राज्य दिया अब तुम व्याकुल नहीं होओगी ।

(उदास होकर बैठ जाते हैं ।)

रामचन्द्र—(आकर) पिताजी के चरण कमलों में सेवक का प्रणाम ।

दशरथ—चिरंजीव हो पुत्र !

रामचन्द्र—पिताजी आप उदास क्यों हो रहे हैं ?

दशरथ—जिस समय स्वयंवर में मैंने केकई प्राप्त की थी उस समय दूसरे राजाओं ने कोप किया था । इन्होंने अत्यन्त चतुराई से रथ चलाकर मेरी रक्षा की थी । उस समय मैंने इनसे वर मांगने को कहा इन्होंने धरोहर रख दिया । अब अपने पुत्र भरथ को वैराग्य से बचाने के लिये पुत्र के मोह वश इन्होंने उस वचन द्वारा भरथ के लिये राज्य मांग लिया है । तुम सदा से मेरे पक्ष में रहते आये हो । मैं समझता हूं कि तुम इससे उदास न

होकर ऐसा उपाय करोगे जिससे भरथ सुख पूर्वक राज्य कर सके।

रामचन्द्र – पिताजी ! मनुष्य के जीवन का ध्येय केवल राज सम्पदा प्राप्त करना ही नहीं है किन्तु सबको प्रसन्न रखते हुवे अपनी आत्माको उन्नत करना है।

मुझे है हर्ष उस ही में, हो जिसमें आपको श्रीमन्।
मुझे है खेद उसही में, हो जिसमें आपको धीमन॥
करुं मैं शोक किसके वास्ते, जो नाश होना है।
जगत की सम्पदाओं से सभी को हाथ धोना है।
न मुझको हर्ष महलों में, न मुझको शोक बन में है।
न आपत्ती से भय मुझको, नहीं भय मुझको रण में है।
मनुष जैसा कर्म करता, उसीका फल भुगतता है।
जो ज्ञानी ज्ञान से सहता है, मूरख दुख करता है।

दशरथ—मेरे प्यारे पुत्र मुझको, आशा थी तुझसे यही।
तेरे जैसा पुत्र विरला धारती है ये मही॥

किन्तु मुझे शोक इस बात का है कि ये अन्याय हो रहा है। पुत्र तुम्हारे अयोध्या में रहते हुवे, उसकी आज्ञा को प्रजा न मानेगी।

रामचन्द्र—आप शोक न कीजिये ! मैं अयोध्या छोड़कर अन्यत्र वन में जा बसूंगा। जिसमें भाई भरथ का हित होता हो वही कार्य मेरे लिये श्रेष्ठ है।

भरथ—(आकर) पिताजी के चरणों में सेवक का प्रणाम।

दशरथ—चिरंजीव हो पुत्र। तुम उदास क्यों होरहे हो?

भरथ—पिताजी! मैं किसी दुःख से उदास नहीं हूं। मेरी उदासीनता जग से है। इस दुःखों की खान भोगविलासता को छोड़ कर मैं अनंत सुख की देने वाली जिन दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूं।

दशरथ—पुत्र! तुम्हारी माता ने अपने धरोहर बचन में तुम्हारे लिये राज्य मांगा है। मैं तुम्हें इस अयोध्या का राजा बनाऊंगा। तुम ये वैराग्य की बातें छोड़दो।

भ०—मुझे राज्य नहीं चाहिये। इस राज्य से कहीं बढ़ कर मुक्ती का राज्य मैं चाहता हूं। ये राज्य सम्पदा दुखों से पूर्ण और नाशवान है। मुक्ती राज्य सम्पदा अविनाशी अनन्त और निरंतर सुख की देने वाली है। बड़े भाई रामचन्द्रजी के होते हुवे मैं किस प्रकार सिंहासन पर बैठ सकता हूं।

रामचन्द्र—हे भरथ तुम पिता की आज्ञा प्रमाण करके राज्य के अधिकारी बनो। मैं दक्षिण की ओर जाकर विन्ध्याचल आदि पर्वतों पर वास करूंगा।

भ०—कदापि नहीं हो सकता कि आप बनों में भटकें और मैं राज्य भोगूं।

रामचन्द्र—तुम पिता की आज्ञा मानकर कुछ दिन राज्य करो फिर मैं वापिस आजाऊंगा। मेरे रहते प्रजा तुम्हारी आज्ञा नहीं मानेगी। वह उपद्रव मचायेगी।

दशरथ—पुत्र तुम इस योग्य नहीं हो कि वैराग्य धारण करो तुम्हारी आयु अभी बहुत कम है।

भरथ—पिताजी! जिस समय काल आता है तो वो आयु का कुछ भी विचार नहीं करता उसके लिये बाल वृद्ध सब समान हैं मैं वैराग्य धारण अवश्य करूंगा। आप स्वयं जिस कार्य को कर रहे हैं उससे मुझे क्यों रोकते हैं? मुझे भी अपना सरीखा बनाइये?

दशरथ—पुत्र मैं तुम्हारी युक्तियों के सामने निरुत्तर हूं! किन्तु तुम्हारी माता इससे बहुत दुखी होगी।

भरत—इस संसार में जीव अकेला ही दुख सुख भोगता है। यदि मैं नरकों में जाउंगा और दुख सहुंगा तो माताजी कदापि मेरी रक्षा नहीं कर सकेगी। संसार में मोह ही जीवों को भटकाता है।

दशरथ—किन्तु आज तक तुमने मेरी आज्ञा नहीं टाली। जिस समय मैं तुमसे अलग हो रहा हूं उस समय तुम्हें मेरी आज्ञा भंग करके मेरे चित्त को दुखी न करना चाहिये। तुम हठ करके

मुझे शोक न पहुंचाओ। जिस प्रकार अभी तक आज्ञा मानते आये हो अब भी मानो और राज्य के भार को सम्हालो।

भरथ—मैं विवश हूं क्या करूं। इधर वैराग्य ने चित्त में स्थान बना रखा है, इधर पिताजी की आज्ञा, किंतु पिताजी की आज्ञा मेरे लिये सबसे प्रथम है।

रामचन्द्र—भरथ तुम बड़े धर्मात्मा और न्यायनिष्ठ हो तुम भरथ चक्रवर्ती की वृत्ती को धारण करके राज्य सम्पदा भोगो। भरथ चक्रवर्ती सब प्रकार के भोग भोगते थे छहों खंड का राज भोगते थे किंतु फिर भी उनका ध्येय आत्मा की ओर ही था। जिस प्रकार जल से कमल भिन्न रहता है वो उसी प्रकार घर में रहते हुवे भी उससे अलग थे, तुम पिताजी की आज्ञा मानो। मै बन को जाता हूं कुछ दिन बाद लौट आऊंगा। पिताजी प्रणाम! माताजी प्रणाम! भरत तुम चिरंजीव हो।

(राम चले जाते हैं। दशरथ को मूर्छा आ जाती है भरथ रोते हैं। कैकई भी शोक में आंसू गिराती है।)

पर्दा गिरता है।

अंक तृतिय—दृश्य चतुर्थ

(रामचन्द्रजी आते हैं)

रामचन्द्र—(स्वगत) संसार के ढंग कैसे निराले हैं।

मोह के वश में होकर जीवोंको न्यायान्याय कुछ भी नहीं सूझता किन्तु मुझे इन बातों से कोई सरोकार नहीं पिताजी ने जैसा उचित समझा वैसा किया। इसमें मेरा कुछ हस्तक्षेप करना मूर्खता है मातीजी से अपने वन गमन की सूचना करके मैं बन में जाता हूं। (सामने देख कर) अहा, सामने सीता सहित माताजी चली आरही हैं। इनके मुख पर हर्ष है। मैं इन्हें वियोग की बात सुनाऊंगा। वो हर्ष न मालूम किस प्रकार के विषाद में बदल जाय। क्या मैं इनसे नहीं कहूं ? किन्तु कहना तो पड़े ही गा।

(खड़े सोच रहे हैं। माताजी और सीता आजाती हैं)

कौशल्या—क्यों पुत्र ! हर्षित मुख से तुम क्या सोच रहे हो ? मालूम होता है राजगद्दी के विषय में मन में उमंगें आ रही हैं।

राम—हां माताजी मैं यही यही सोच रहा हूं कि राज गद्दी होते हुवे देख कर आपके मन में किस प्रकार का हर्ष उत्पन्न होगा। किन्तु मैं तो सिंहासन पर बैठूंगा। आप कहां बैठेंगी ?

कौशल्या—मैं झरोखे में से तुम्हारे वैभव को देखूंगी।

राम—नहीं आपको सिंहासन पर बैठना पड़ेगा। सिंहासन पर बैठ कर आप मुझे गोदी में बिठा लेना।

कौशल्या—पुत्र ! अपने यहां ऐसी रीति नहीं है। तुम

सिंहासन पर बैठना । मैं नहीं बैठ सकती ।

राम—यदि आप नहीं बैठेंगी तो मैं भी नहीं बैठूंगा । मैं बन में जाकर रहूंगा ।

कौशल्या—क्यों पुत्र ! ऐसा क्यों ?

राम—पिताजी की मेरे लिये यही आज्ञा है । राज सिंहासन पर छोटा भाई भरथ बैठेगा ।

कौशल्या—हर्ष में ये विषाद कहां से आ कूदा ? पुत्र क्या तुम ये सच कह रहे हो ? मालूम होता है हंसी करते हो ।

रामचन्द्र—(हंस कर) माता ! हंसी नहीं वास्तव में यही बात है आप कोई चिन्ता न करें मैं अवश्य ही कुछ दिन बाद लौट आऊंगा ।

कौशल्या—पुत्र तुमने ये क्या बुरे समाचार सुनाये । तुम्हारे बिना मैं किस प्रकार अपना जीवन बिताउंगी । स्त्री के केवल तीन सहारे होते हैं । पिता पती और पुत्र ! पिता तो पहले ही मर गये ! पती वैराग्य धारण कर रहे हैं । पुत्र बन को जा रहा है । मेरे लिये अब कौनसा सहारा बाकी रह गया । मुझे भी तुम अपने साथ ले चलो ।

राम—माता ! तुम व्याकुल न होओ । मैं बन में जाकर कोई राज्य जीत कर वहां तुम्हें अवश्य ले जाऊंगा । छोटे भाई के अधिकार में रेहना मेरे लिये सर्वथा अनुचित है ।

कौशल्या—जिस माता के तुम ही एक अकेले पुत्र हो उसे तुम्हारे बिना किस प्रकार चैन पड़ सकेगा। क्या करूं विवस हूं। पती के कार्य में हस्तक्षेप करना कुल्टा नारियों का काम होता है। इस लिये जाओ पिता की आज्ञा का पालन करो।

रामचन्द्र—अच्छा माताजी प्रणाम। (चरण छूकरे जाने लगते हैं। सीता रामचन्द्रजी के पैर पकड़ लेती है) क्यों सीते तू मुझे क्यों रोकती है ?

सीता—प्राणनाथ ! मैं आपको रोकती नहीं हूं। केवल यह प्रार्थना करती हूं कि आप अपनी अर्धांगिनी को छोड़ कर न जाइये। मैं भी आपके साथ चलूंगी।

राम—सीते ! तुम कोमलांगी हो। बन में कठिन मार्गों में किस प्रकार चल सकोगी वहां पर पत्तों के बिछोने पर सोना पड़ेगा। फलों का आहार करना पड़ेगा। तुम बन के कष्ट सहने में सदा असमर्थ हो। इस लिये यहीं पर रह कर माता जी की सेवा करो।

सीता—चाहे कुछ भी क्यों न हो, आपके संग में बनों के दुख भी मेरे लिये सुख है। किंतु आपके बिना यहां पर नाना प्रकार के सुख भी मेरे लिये दुख है।

पंडित नारी अरु लता, आश्रय बिन दुख पांय।

मारे मारे फिरत हैं, जैसे नट बिन पांय ॥

राम—माता ! आप सीता को समझाओ कि वो घर रह जावें ।

कौशल्या—पुत्री ! अपने पतीका वचन मानकर मेरे चित्त को शांति देती हुई घर पर रहो।

सीता—यह नहीं हो सकता कि पती के बिना मैं घर रहूं ।

गाना

चाहे लाख मुझे कोई कहे, संग पती के जाऊंगी ।
दुख सहते भी पती संगमें, कभी नहीं घबराऊंगी ॥ चा०
बनकी महिमा देख देखकर, सुन सुन पक्षीगण के बोल
पूछ पूछकर बात अनेकों, मनमें हर्ष मनाऊंगी ॥चा०
सेवा करूं पती की बनमें, पाऊं सेवा फल अनमोल।
बांध पती को प्रेम पाशमें, मन चाहा सुख पाऊंगी ॥ चा०

कौशल्या—पुत्र ! सीता पती प्रेम में पागल हो रही है । वह तुम्हारे बिना नहीं रह सकेगी । क्यों कि नारीके हृदय की व्यथा नारी ही जान सकती हैं । तुम इसे बनमें अपने साथ ले जाओ बड़ी चतुराई से रखना ।

लक्ष्मण—(आकर) (स्वगत) केकई ने अधर्म पूर्वक

बड़े भाई साहब को राज न दिलाकर अपने पुत्रको राज दिलाया मुझसे यह अधर्म नहीं देखा जाता, किंतु नहीं। जिसमें पिताजी की मर्जी है उसके विरुद्ध मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिये। मैं अपने बड़े भ्राता रामचन्द्रजी के साथ बनमें जाऊंगा, ऐसे राज्य में मैं कदापि न रहूंगा।

राम—क्यों लक्ष्मण तुम यहां किस लिये आये? और खड़े होकर क्या सोचते हो?

लक्ष्मण—भाई साहब मैं आपके साथ बन में जाने की सोच रहा हूं। आप मुझे आज्ञा दीजीये कि आपकी सेवा करने के लिये मैं वन को चलूं।

राम—भाई लक्ष्मण? जिस प्रकार सीता ने बन जाने की ठान रखी है! उसी प्रकार तुम मूर्ख न बनो। तुम घर पर रह कर सुख भोगो। माता सुमित्रा को शान्ती दो।

लक्ष्मण—भाई साहब! आप मुझे अपने साथ ले चलने से न रोकिये। मैं अवश्य ही आपके साथ चलूंगा, आपके जैसा संग मुझे तीनों लोकों में भी दुर्लभ है।

राम—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो माता पिता से आज्ञा प्राप्त करो।

पर्दा गिरता है

अंक तृतिय—दृश्य पंचम

(राजा दशरथ शोक की अवस्था में बैठे हुवे हैं।)

दशरथ—इस संसार की लीला निराली है। मनुष्य जो चाहता है वह उसके विरुद्ध देखता है। कहां मैंने रामको राज्य देना विचारा था और कहां एक दम बनमें जाने को आज्ञा दी जो पुत्र मेरी आंखों का तारा था आज वही बनको जा रहा है। इस संसार से प्रीती करने वाले मूर्ख हैं, मैं किसके लिये शोक करूं? क्या पुत्र के लिये? नहीं, इस संसार में न कोई मेरा पुत्र है न कोई नारी है। सब जीतेजी का झगड़ा है। मैं बन में जाकर अपनी आत्मा का कल्याण करूंगा।

(कौशल्या और सुमित्रा आती है।)

कौशल्या—नाथ! अब मेरे लिये इस जग म कौन सहारा है। आप दीक्षा धार रहे हैं और रामचन्द्र और सीता दोनों लक्ष्मण सहित बन को चले गये हैं।

सुमित्रा—हे प्रभो! आप किसी प्रकार भी उन्हें लौटा लाइये। दुख रूपी समुद्र में डूबते हुवे परिवार को बचाइये।

दशरथ—मेरे हिसाब चाहे कुछ भी हो। मुझे किसी से कुछ सरोकार नहीं है, मैंने अपने बचन का पालन किया है और जो कुछ युक्त समझा सो किया है। अच्छा हुआ जो लक्ष्मण भी राम के साथ चला गया, बड़े भाइयों का छोटे भाई के राज्य

में रहना सर्वथा अनुचित है। आगे तुम पुत्रों की माता हो। यदि वो लौट सकें तो लौटा लाओ। मैं तो राज्य दे चुका मेरे हिसाब चाहे कोई भी उसका अधिकारी बने। तुम जैसा उचित समझो करो। मैं वनमें जाकर दीक्षा लेकर अपना कल्याण करूंगा मैं इन संसारिक झगड़ों में भाग नहीं लेना चाहता।

(चले जाते हैं। बाद में दोनों स्त्रियां भी चली जाती है)

अँक तृतिय—दृश्य छठा

(साधू और बृह्मचारी आते हैं।)

साधू—इसमें आपने कुछ बातें रामायण के एक दम विरुद्ध दिखाई हैं।

ब्र०—वह कौन कौनसी ?

साधू—प्रथम तो परशुराम को बिल्कुल छोड़ ही गये, दूसरे रामायण में लक्ष्मण ने कोई सा भी धनुष नहीं तोड़ा था, तीसरे भामंडल का कहीं भी हमारे यहां उलेख नहीं आया, चौथे केकई ने दो वर मांगे थे, आपने केवल एक ही बताया है, और बनोवास पिता के द्वारा बताया है, पांचवे हमारे यहां दशरथ को पुत्र के विरह में मरता बताया है। आपने उसे बन में भेज दिया। छटे आपने भरथ को अयोध्या में ही दिखाया है हमारे यहां कहा है कि वो मामा के यहां थे।

ब्र०—तो क्या आप रामायण को बिल्कुल सत्य मानते हैं?

सा०—उसे मैं ही नहीं किन्तु सारा हिन्दुस्तान सत्य मान रहा है। जिसे सब सत्य रहे वो सत्य है।

ब्र०—यह बात कदापि नहीं होसकती। यह हमारा नाटक उस पद्मपुराण के आधार पर है जिसकी रचना को आज हजारों वर्ष व्यतीत होगये। जिसमें उसके वचन हैं जो भूत भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का ज्ञाता था, जिसे राग द्वेष छू तक भी नहीं गया था, किंतु अभाग्यवश अभी तक उसका शास्त्र रूप होने से प्रचार नहीं हुआ था। आपने क्या बाल्मीकीजी के विषय में जिनकी बनाई हुई रामायण पर विश्वास करते हो, कुछ नहीं सुना आपके यहां ही उन्हें पक्का चोर हिंसक और झूंठा बताया है!

सा०—किन्तु वो बाद में धर्मात्मा बन गये थे। तभी उन्होंने रामायण की रचना की है।

ब्र०—क्या आप बाल्मीकीजी को केवलज्ञानी मानते हैं?

सा०—नहीं।

ब्र०—तो फिर उन्होंने जो कहा है सो सब सत्य है यह कभी नहीं होसकता। सारे जीवन उन्होंने कभी शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया। बाद में राम की भक्ती में लवलीन होकर कुछ सुनी हुई कुछ जोड़ी हुई रखकर रामायण बनादी।

सा०—किंतु वो तो संस्कृत में रची हुई है।

ब्र०—तो क्या जो पुस्तक संसकृत में रची हुई हो वो झूठ नहीं हो सकती ? ये गलत है। संस्कृत तो उस समय की बोल चाल की भाषा थी। जिसे हर कोई बोलता था। कहिये और कुछ ?

सा०—अब इसके बाद क्या दिखाओगे ?

ब्र०—आज का खेल राम का गंगावतरण दिखा कर समाप्त करेंगे, कल सीता हरण, रावण मरण और राम का अयोध्या गमन दिखायेंगे।

सा०—तो चलिये ! (दोनों जाते हैं)

अंक तृतिय—दृश्य सप्तम

(गंगा नदी बड़े वेग से बह रही है। उसके किनारे पर राम सीता और लक्ष्मण खड़े हैं। इधर उधर अनेक पुरवासी खड़े हैं।)

१ पुरवासी—रामचन्द्रजी ! आप बड़े निर्दई हैं, अब तक आपने हम लोगों के अनेकों उपकार किये। हमारे साथ खेले किन्तु अब हमें सोते को छोड़ कर ही चले आये।

दूसरा पुरवासी—सीता माता को धन्य है जो ये इनके साथ आईं इन्होंने बहुत अच्छा काम किया है। यदि ये इनके साथ न होती तो रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी शीघ्रता से चलते किन्तु माता के साथ होने से इन्हें धीरे २ चलना पड़ा। जिससे

हम लोगों ने इन्हें दौड़ कर पकड़ लिया ।

रामचन्द्र—हे भाइयों ! मुझे तुम्हारी बातें सुन कर दया आती है किन्तु मैं क्या करूं मैं तुम्हें अपने साथ ले चलने में सर्वथा असमर्थ हूं तुम लोग अयोध्या जाकर भरतजी की आज्ञा प्रमाण करो । मैं गंगा को पार करके सीता और लक्ष्मण सहित विंध्याचल पर्वत की ओर जाऊंगा ।

१ पुरवासी—हमें भी आप गंगा पार कराइये । हम भी आपके साथ चलेंगे । माता सीता ! तुम रामचन्द्रजी से कह कर हमें अपने साथ लेलो । लक्ष्मणजी आप ही कुछ कहो !

सीता—नाथ...(पती की ओर देखती है)

लक्ष्मण—भाई साहब...(राम की ओर देखते हैं)

राम—(दोनों की ओर देख कर पुरवासियों से) तुम लोग मुझे अधिक तंग न करो । बार २ मना करते हुवे मेरा हृदय दुख पाता है । सीता ! लक्ष्मण !! जाओ तुम भी इनके साथ अयोध्या लौट जाओ ।

सीता—मैं आपके साथ लौटने में सदा हर्षित हूं ।

लक्ष्मण—मैं भी अत्यन्त हर्ष मनाऊंगा ! यदि आप मुझे लेकर लौटेंगे ।

राम—(पुरवासियों से) जाओ भाइयों ! अब तुम लौट

जाओ। (लक्ष्मण और सीता से) आओ तुम दोनों मेरे दोनों हाथ पकड़ लो। और नदी में घुसो।

(तीनों नदी में घुसते हैं।

१ पुरवासी—रामचन्द्रजी……हमें भी साथ में लेलो वरना हम लोग मुनि होजायेंगे।

राम—जो तुम लोगों को अच्छा लगे सो करना।

तीनों नदी में घुसते चले जा रहे हैं)

२ पुरवासी—देखो, २ नदी भी इन्हें चाहती है। वो भी इनके लिये घुटनों तक हो गई। चलो हम भी चलें हमारे भी घुटनों तक ही आयेगी।

(सब पुरवासी घुसने के लिये बांस डाल कर देखते हैं।)

(तो बहुत गहरी देख कर डर कर हट जाते हैं)

नहीं भाई ये तो उन्हीं के लिये थी उनका पुण्य विशेष है।

सब गाते हैं—गाना

रोते सभी को छोड़ कर, श्रीराम चल दिये ।
दुखिया जनों के हाथ थे विश्राम चल दिये ॥

ड्राप गिरता है

तृतिय अंक समाप्त

तृतिय भाग समाप्त
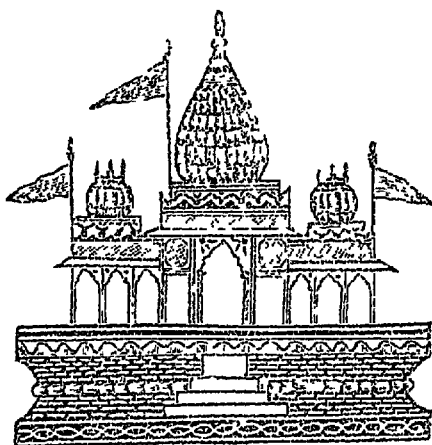
श्री जैन नाटकीय रामायण

चतुर्थ भाग

अंक प्रथम

दृश्य प्रथम

(वन में एक शिला पर राम और सीता बैठे हैं। दूसरी शिला पर लक्ष्मण बैठे हैं)

राम—लक्ष्मण ? हमारे धन्य भाग्य हैं जो वन रहने को मिला। महलों में प्रकृती की इतनी शोभा कहां जो यहां वन में है स्थान २ पर सरोवर हैं वृक्षों पर पक्षी बैठे हुवे कलरव सुना रहे हैं। चारों ओर से सुगन्धित वायु आ रही है दुर्गंध का कहीं नाम भी नहीं है।

लक्ष्मण—जिस स्थान पर श्रेष्ठ पुरुषों के पग पड़ते हैं वहां के सूखे वृक्ष भी हरे हो जाते हैं। सूखे सरोवरों में जल भर जाता है चुप चाप पक्षी गण चहचहाने लगते हैं। जब आपने

गंगा पार की थी तो वह आपके पुण्य के प्रभाव से आपके घुटनों तक हो गई थी।

राम—अच्छा लक्ष्मण ! जाओ किसी निर्मल सरोवर में से रसोई के लिये जल भर लाओ। सीता रसोई बनायेगी।

लक्ष्मण—जो आज्ञा। (चला जाता है)

राम—कहो सीते ? तुम्हें तो यह बन पसन्द है न ?

सीता—क्यों नहीं, जिसे आप पसन्द करें वह मुझे भी पसन्द है। ऐसा बन तो मैंने कभी भी नहीं देखा था। मैं बन का नाम ही सुन कर डरा करती थी। किन्तु यहां की लीला देख कर मेरा भय भाग गया।

राम—सीते ? यह प्रातःकाल का समय, ये मन्द सुगन्ध पवन, ये बन की शान्तता, तुम सरीखी शान्ती की अवतार का गाना सुनना चाहती है।

सीता—क्यों नहीं वह भी तो आपके ही कारण है। कहिये कौनसा गीत सुनाऊं।

राम—तुम सर्व गुण सम्पन्न हो। जो इस समय के योग्य हो गाओ। जिससे मन को प्रसन्नता मिले।

सीता— गाना

मैं तो सेवा करूं। मैं तो सेवा करूं॥

आई बन में संग तुम्हारे, सेवा करने स्वामी।
सेवा से सुख अद्भुत पाऊं, शीश नमाऊं स्वामी। मैं०
तुम हो प्रीतम नैन सितारे, मन मन्दिर के बासी।
प्रियेतमा के प्रेम तुम्ही हो, सिया तुम्हारी दासी। मैं०

लक्ष्मण---(भागा हुआ आकर) भाई साहब देखिये। सामने से न मालूम वो किसकी सेना आ रही है। सारे गगन में धूल छा रही है।

राम---तुम निर्भय होवो, पास आने पर जैसा होगा भुगता जायगा।

लक्ष्मण---भाई साहब देखो वो सामने से भरथ आ रहा मालूम होता है।

राम---भरथ की मेरे प्रति अत्यन्त भक्ती है जाओ तुम जाकर उसे लिवा लाओ।

लक्ष्मण---जैसी आज्ञा। (चला जाता है)

सीता---प्राणनाथ! मैंने रात्री में स्वप्ना देखा है कि आपकी माता केकईके द्वारा भेजे हुवे भरथजी आपसे मिलने आते हैं। उसके पश्चात उनकी माता भी आई हैं। वो आपसे चलने को आग्रह कर रही हैं।

(भरथ आकर रामचन्द्रजी से चिपट जाते हैं।)

भरथ—भाई साहब, लौट चलिये। आपकी और लक्ष्मण जी की मातायें अत्यन्त दुखी हो रही हैं। प्रजावासी चिल्ला रहे हैं, माता सीता के बिना सारा राज महल सुना है, आप मुझे राज्य में फांसकर यहां आनन्द से न बैठिये। आप अयोध्या लौट चलिये !

(सब पुरवासी भागे हुवे आते हैं। राम लक्ष्मण दोनों भाई उन्हें उर से लगाते हैं।)

१ पुरवासी—आपके बिना अयोध्या में हाहाकार मचा हुआ है। बालक कहते हैं हमारे खिलौने हमारे गुरु चले गये युवा कहते हैं हमें हंसाने वाले सत् सम्मति देने वाले हमारे सच्चे मित्र चले गये। बूढ़े कहते हैं हमारे मन को प्रसन्न करने वाले चले गये। आपके बिना सारे पुरवासी दुखित हो रहे हैं।

२ पूरवासी—आप हमें गंगा के उस पार ही छोड़ आये थे। यदि भरथजी लठ्ठे काट काटकर नौकायें बना बनाकर हमें इस पार न करते तो आपके दर्शन दुर्लभ थे।

(केकई आती है। राम, राम, कहती हुई रामको हृदय से लगा लेती है।)

राम—माता के चरणों में सेवक का प्रणाम।

लक्ष्मण—माता के चरणों में सेवक का प्रणाम।

सीता—(पैर छूकर) माताजी प्रणाम।

केकई—तुम तीनों चिरंजीव होओ। मेरी मूर्खताके कारण तुम लोग वन के कष्ट उठा रहे हो।

राम—माताजी ! हमें यहां वन में किसी प्रकार भी कष्ट नहीं है।

केकई—पुत्र ! तुम्हारी मातायें तुम्हारे विरह में अत्यन्त व्याकुल हैं। मैंने महान मूर्खता की जो भरथ के लिये राज मांगा अब तुम मुझे क्षमा करो ! कृपा करके अयोध्या लौट चलो।

राम—माता इसमें आपका कोई अपराध नहीं। इसमें हमें अत्यन्त हर्ष है कि किसी प्रकार भरथ घर में रह गये। हमें यहां वन में ही सुख है ! आपके हृदय में मेरे लिये जितना प्रेम है उसका वर्णन नहीं कर सकता। मैं पिताजी की आज्ञा पालन कर रहा हूं।

भरथ—नहीं, भाई साहब आपको अयोध्या अवश्य लौटना पड़ेगा।

राम—भाई ! तुम हठ न करो पिताजी की आज्ञा प्रमाण करो। पिताजी ने जो कुछ भी किया वो ठीक किया है। बड़े कुलों की यही रीति है। कि वह सदा अपने पिता की आज्ञा का पालन करें। तुम वहां जाकर पिताजी की आज्ञा प्रमाण राज्य करो मैं यहां वन मैं रहूँगा।

केकई—नहीं ? पुत्र राम ! तुम चल कर राज्य करो। भरथ तुम्हारे ऊपर चंवर ढोरेगा। लक्ष्मण मंत्री पद ग्रहण करेगा शत्रुघन तुम्हारी आज्ञा में खड़ा रहेगा।

राम—माताजी ! आप मेरे न जाने से दुखी न होओ। मैं भरथ का राज्य देख कर अत्यन्त हर्षित हूं। माता आप समझना कि मैंने स्वयं अपना राज्य भरथ को दिया है। भरथ तुम मेरे अयोध्या लौटने तक बराबर राज काज करना।

भरथ—किन्तु भाई साहब आप कब लौटेंगे ? अभी चलिये न ?

राम—मुझे बन बहुत पसन्द आया है। यहां कुछ दिन रह कर मैं अयोध्या लौट आऊंगा। तुम किसी बात से चिन्तित न होना।

केकई—पुत्र ! तुम न जाने के लिये इतने प्रकार के बहाने बना रहे हो तुम ही कहो कि मैं कौशल्या और सुमित्रा को किस प्रकार धीर बंधाऊंगी।

राम—आप उनके पति कृपा दृष्टी रख कर उन्हें धीर बंधाना मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप सबको साथ लेकर अयोध्या लौट जाइये।

केकई—पुत्र मैं लौटती हूं किंतु लौटा नहीं जाता। पैर

नहीं फिरते। (रोने लगती है)

राम—माता ! धीर धरो, आपके रोने से ये सब लोग रोने लगे। इनका दिल न दुखाओ। अयोध्या लौट जाओ।

केकई—अच्छा पुत्र तुम जैसा कहो……

गाना

कीराम मुझे तुमने व्याकुल, नहीं धीर बंधाकर संग चले
जब मात तिहारी निहारेगी, नहीं देख दुखी हो हाथमले
जबभांति भांतिसे रुदन करें, किस तौर उन्हें समझाऊंगी
जब शाक सभी में फैलेगा, कैसे होवेंगे काम भले॥

पर्दा गिरता है।

———

अंक प्रथम—दृश्य द्वितीय

कौमिक

(एक मनुष्य उसकी स्त्री और १२ वर्ष का लड़का आता है)

स्त्री—क्यों जी आज दस तारीख होगई ; अभी तक भी तनखा नही लाये ?

मनुष्य—लाया तो हूं ले ये सौ रुपये का नोट। (देता है)

स्त्री—(लेकर) लाये तो बड़ा मेरे ऊपर ऐहसान किया।

मनु०---अच्छा ला मुझे दो रुपये दे ।

स्त्री०---काहे के लिये चाहियें ?

मनु०---तुझे क्या मतलब, मुझे एक काम को चाहते हैं।

स्त्री०---जब तक मुझे बताओगे नहीं, मैं एक पैसा भी नहीं दूंगी ।

मनु०---अरे बाबा क्लब में चन्दा देना है ।

स्त्री---कोई जरूरत नहीं किलब उलब में जाने को, अपने घर में ही छोरे को दो रुपये महीना दे दिया करो, और गंजफा खेला करो ।

मनु०---मैं अगर क्लब नहीं जाऊंगा तो मेरी तन्दुरुस्ती खराब होजायगी ।

नारी---होजायगी तन्दुरुस्ती खराब तो होजाओ । पता है बड़ी मुश्किल से पैसा इकट्ठा होता है ।

मनु०---अच्छा तो ला चार पैसे पान खाने को तो दे ।

नारी---पान एक पैसे का खाया जाता है ।

मनु०---अगर कोई मित्र लोग साथ में हों तो ?

नारी---वो अपने पास से लेकर खावें । वो क्या कोई भूखे नंगे हैं जो उन्हों को तुम ही खिलाओगे । बस सब खाने वाले ही हैं कोई खिलाने वाला भी है ?

मनु०—बेटा प्रकाश ! जरा सा पानी तो ले आ ।

नारी—वो कोई तुम्हारा नौकर थोड़े ही है । खुद जाके पी लो, मेरे लिये भी एक गिलास में लेते आना ।

मनु०—तो क्या तुम्हारा और इसका ये भी सहारा नहीं, कि एक गिलास पानी भी पिलादो ?

नारी—सहारा नहीं, सहारा नहीं करते हो । रोटी कोई दूसरी करके खुला देती होगी । बड़े आये सहारा चिल्लाने वाले ?

प्रकाश—बाबूजी सहारा हिन्दुस्तान में थोड़े ही है वो तो अफ्रीका में है । अगर आपको सहारा देखना हो तो अफ्रीका जाइये ?

मनु०—अच्छी बात है, अब से मैं तनखा का एक पैसा भी तुम्हें लाकर नहीं दूंगा ।

नारी—तुम होते कौन हो न देने वाले । ये धौंस किसी और को ही दिखाना ! घर में नहीं घुसने दूंगी । और दफतर में जाकर भड़ाभड़ जूते लगाऊंगी । लालाजी सारा दाल आटे का भाव भूल जायेंगे ।

मनु०—मैं तो इससे भरपाया ।

नारी—तो मैं भी तुमसे भरपाई (रोने लगती है)

म०—क्यों मेरी प्यारी ! रोने लग गई । तुम्हें तो मैं

हृदय से चाहता हूं।

ना०—चाहते होते तो भरेपाया न कहते। मेरी तो तकदीर उसी दिन से फूट गई जिस दिन से इस घर में आई। पहले वो सासू थी। वह नोच २ खाय थी। अब ये ऐसी ऐसी कहें जो उठाई जांय न धरी जांय।

म०—तो क्या तुम एक दम इतनी नाराज होगई। लो तो मैं भी अब जाता हूं। (चला जाता है)

ना०—प्रकाश जा बेटा! सुनार को बुला ला। उससे सोना मंगा कर एक जोड़ी कानों की बिजली बनवाऊंगी।

प्रकाश—अच्छा अम्मा जाता हूं।

(चला जाता है वो भी चली जाती है)

अंक प्रथम—दृश्य तृतिय

(दंडक वनमें रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता बैठे हुवे हैं)

राम—लक्ष्मण! देखो यह दंडक बन कैसा शोभायमान है इसकी छटा कैसी निराली है। ये नर्मदा नदी कैसी गम्भीरता से वह रही है। अनेकों उपाय करने पर भी राज महलों में रहते हुवे यह शोभा देखने को न मिलती।

लक्ष्मण—भाई साहब, आप मुझे आज्ञा दीजीये कि मैं इसको दूर तक देखकर आऊँ।

राम--जाओ ! किन्तु सावधान रहना।

(लक्ष्मण चले जाते हैं)

सीता--नाथ ! वन में भी कितना सुखमय जीवन व्यतीत होता है। यहां पर न क्रोध करने की आवश्यक्ता पड़ती है न मान माया लोभ आदि की ही आवश्यक्ता पड़ती है।

राम--इसी लिये तो मुनि लोग बहुधा जंगलों में ही रहते हैं। जो वन में रहने का आनन्द लूट चुका हो। उसे नगर का रहना कभी भी अच्छा नहीं लगेगा। वनवास से दूसरी श्रेणी ग्राम वास की है। ग्रामों में भी लोग सुख पूर्वक रहते हैं।

सीता--नाथ ! इस वन की सुन्दरता पर मैं मुग्ध हूं। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की, जो मुझे साथ में ले आये।

राम--यदि मुग्ध हो तो मुग्धता से भरा हुआ अपने इस मुखारविंदु से कोई आनन्दकारी गीत गाओ।

सीता-- गाना

फूलों ने मोह लई, रंग दिखाय के।
रंग दिखाय पिया, महक उड़ाय के॥ फूलों ने०
वन में खिले हैं, मन में बसे हैं।
झुम झुम झूम रहे, इठ लायके॥ फूलों ने०

राम—वाह, मैं किस प्रकार तुम्हारे गान की प्रशंसा करूं तुम साक्षात इन्द्राणी की अवतार हो।

सीता—नाथ आप क्यों मुझे बड़ाई दे कर लज्जित करते हैं।

राम—सीते ! देखो ये नर्मदा कैसी बह रही है। इसकी चाल तुम्हारी चाल से मिलती है। इसकी सुन्दरता तुम्हारे आगे फीकी है।

सीता—किन्तु इसका जल आपके मन समान निर्मल नहीं है। बस यही एक कमी है।

राम—सीता ! क्या कारण है। अभी तक लक्ष्मण नहीं आया।

सीता—देखो वह सामने खड़्ग लिये चले आरहे हैं।

राम—मालूम होता है इसने कोई अद्भुत वस्तु प्राप्त की है। यह बहुत हर्षित है।

लक्ष्मण—(आकर) भाई साहब देखिये मैं इस बन में से ये खड़्ग लाया हूं।

राम—यह तुमने कहां प्राप्त किया ?

लक्ष्मण—यहां से थोड़ी दूर पर एक स्थान पर कोई विद्याधर इसे साध रहा था। वह बांसों के बीडे पै बैठा हुआ था। मैंने इसकी ज्योति औ सुगन्धता देख कर इसे सूर्यहास

खड्ग जान कर उठा लिया। तथा इसकी परीक्षा करने के लिये उस बांसों के बीड़े पर चलाया। उसमें बैठा हुआ वह विद्याधर भी उसी के साथ कट गया।

राम—भाई तुमने ये अच्छा नहीं किया।

लक्ष्मण—किन्तु भाई साहब जिसके साधने में बारह वर्ष सात दिन लगते हैं यदि मैं उसे एक दिन में ही ले आया तो मैंने क्या बुरा किया।

राम—हां ये तुम्हारे पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है जो तुम्हें बिना प्रयत्न के ही ऐसी दुर्लभ वस्तु की प्राप्ती हुई किन्तु मुझे मालूम होता है कि इसका परिणाम अवश्य कुछ रंग लायेगा।

(चन्द्रनखा रोती हुई आती है। स्वगत में ही कहती है)

चन्द्रनखा—हाय न मालूम किस दुष्ट पापी ने मेरे पुत्र शंबूक को मार कर उसका खड्ग लेलिया मैं रावण की बहन चन्द्रनखा हूं। खरदूषण की नारी हूं। उस अन्यायी को अवश्य ही इसका फल दूंगी। हाय पुत्र तुम्हें बारह वर्ष चार दिन विद्या साधते होगये थे। केवल तीन दिन शेष थे। इस खड्ग का लेने वाला अवश्य कोई रावण का बैरी सिद्ध होगा।

(राम लक्ष्मण आदि की ओर देख कर)

मालूम होता है इनमें जो ये छोटा बैठा हुआ है इसी ने

वह खड्ग लिया है। अहा इन दोनों भाइयों का कैसा सुन्दर रूप है। ये अपनी सुन्दरता से देवों को भी मात कर रहे हैं। यदि मैं इनकी स्त्री बनूं तो मेरे परम सौभाग्य हैं।

राम—सीता ! देखो वह सामने कोई दुखिया नारी रोरही है जाओ उसे धैर्य बंधाकर यहां ले आओ।

सीता—जैसी पती की आज्ञा। (चन्द्रनखाके पासजाकर) क्यों बहन आप यहां पर इतनी क्यों दुखी हो रही हैं, मेरे नाथ आपको बुलाते हैं।

चन्द्रनखा—हे नारी आप बड़ी दयालू हैं। आपके स्वामी बड़े दयालू हैं। मैं अभी चलती हूं। (जाती है)

राम—हे अबला, तुम क्यों इस प्रकार हृदय को भेदने वाला रुदन कर रही थीं ?

चन्द्रनखा—हे सुन्दरता के अवतार ! दयासागर ! मेरा दुख न पूछो, मैं एक राज कन्या हूं। मेरे माता पिता मुझे बालक को छोड़कर मर गये थे, बन्धू जनों ने मुझे बन में पटक दिया था, तब से अब तक मैं कन्या रूप में ही फिर रही हूं। कोई आश्रय न होने से मैं इधर उधर भटकती हूं। और रोती हूं, आप दोनों ही परम सुंदर और दयालु हैं। दोनों में से कोई भी मुझे अपनी प्रिया बनाकर मुझे आश्रय दें। मैं आपको हृदय से चाहती हूं।

(राम लक्ष्मण दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं। बिल्कुल चुप हैं बहुत देर तक कुछ उत्तर न मिलने पर वो कहती है)

तो क्या आपको मुझे स्वीकार करने में कुछ हानी है? लीजिये तो मैं जाती हूं।

राम—तुम प्रसन्नता पूर्वक जा सकती हो! हमें तुम्हारी आवश्यक्ता नहीं है। (वह चली जाती है)

लक्ष्मण—भाई साहब मालूम होता है इसका उस खड़ग से कुछ सम्बन्ध है।

राम—हां तुमने वह खड़ग लेकर अच्छा नही किया। ये कुल्टा स्त्री अवश्य कुछ न कुछ रंग लायेगी।

पर्दा गिरता है।

(चन्द्रनखा आती है)

चन्द्रनखा—हाय, मेरा पुत्र भी मर गया और मेरी इच्छा की भी पूर्ती नहीं हुई। मैं अभी जाकर अपने पती से झूँठा बहाना बनाऊंगी। और इनको अपने अपमान का फल चखाऊंगी हाय पुत्र! हाय पुत्र!! (चली जाती है)

अँक प्रथम—दृश्य चतुर्थ

(पाताल लंका में खरदूषन की राज्य सभा)

नाच गाना

आली आओ, नाच दिखाओ, मन मोहलो।
खेलो कूदो, नैन उड़ाओ, मन मोहलो॥
आओ आओ, प्यारी गाओ, होयके खुशी।
ताली दे दे नाच दिखाओ, मिल के सभी॥

चन्द्रनखा—(आकर) नाथ ! आप यहां सुख से बैठे हुवे हैं। मेरे ऊपर जो आपत्तियां आई उन्हें मैं ही जानती हूं।

खरदूषन—कहो प्रिये (पास में बैठा कर) तुम इतनी व्याकुल क्यों हो ? तुम्हारी ये साड़ी क्यों चीर २ हो रही है। तुम्हारी चोली क्यों फटी हुई है ?

च०—नाथ ! आपका पुत्र शंबूक जो खड़ग साध रहा था उसे मार कर एक बनवासी वीर पुरुष खड़ग लेगया हाय ! मैं तो अपने पुत्र को खो बैठी।

ख०—हाय ? पुत्र तुम्हारा वह कौन शत्रू था जिसने तुम्हें मारा ? क्या इस पृथ्वी पर अब खरदूषन के हाथ से बच सकता है।

च०—और सुनिये जब मैं ढूंढती हुई उसके पास पहुंची तब उस दुष्ट ने मुझे बलात अपनी नारी बनानी चाही ! वो वीर पुरुष मैं अबला। उसने मेरी साड़ी फाड़ी। मेरी चोली के टुकड़े २ कर दिये। न जाने कौनसे पुण्य के उदय से मैं अपना शील बचा कर यहां भाग आई।

ख०—ओ, हो, वह कौन है जिसे काल ने घेरा है ! किसके आठवें चन्द्रमा आया है। उसने समझा होगा कि इस प्रकार वन में एक नारी की लाज हर कर मैं बच जाऊंगा मैं अभी उसे मारने के लिये चलाता हूं।

१ सामन्त—स्वामी आप विचार कर काम करिये। जिसके हाथ में वह सूर्य हास खड्ग आया है उसे कोई साधारण पुरुष न जानिये। उसके लिये जितनी भी अधिक सेना हो थोड़ी है। प्रथम आप श्रीमान रावण को सूचित कीजिये। उन्हें अपनी सहायता के लिये लिखिये। फिर कूंच कीजिये।

खरदूषण—(दूत से) जाओ तुम रावण के पास जाकर कहो कि वह मेरी सहायता के लिये दंडकवन में आवें।

दूत—जो आज्ञा (चला जाता है)

खरदूषण—चलो सामन्तो उठो! मैं उसके मारे बिना थोड़ा भी विश्राम नहीं ले सकता। एक दम सेना तैयार करो, (चन्द्र-

नखा से) प्रिये तुम घबराओ नहीं, तुम्हारे पुत्र और अपमान का बदला मैं अच्छी प्रकार से लूंगा।

चन्द्रनखा—(रोती हुई) नाथ मुझे अब तक भय लग रहा है।

खर०—भय करने की कोई बात नहीं, तुम न रोओ। जितनी तुम रोती हो उतना ही मेरा क्रोध अधिक बढ़ रहा है, तुम शीलवती हो। भाग्य से तुम्हारे शील की रक्षा हुई।

पर्दा गिरता है

(एक सामन्त आता है।)

सामंत—मुझे चन्द्रनखा की बातों से ज्ञात होता है कि ये कुलटा है, इसने वहां जाकर उनसे छेड़ छाड़ की होगी उन के मना करने पर अपना अपमान समझकर इसने इतना जाल बिछाया है। जिसके हाथ में सूर्यहास खड्ग है, मैं तो उसको कम बलवान नहीं समझता। आज अपशकुन भी बहुत हो रहे हैं।

(चला जाता है।)

अंक प्रथम—दृश्य पंचम

(सीता सहित राम और लक्ष्मण दंडक बन में बैठे हैं।)

राम—आज कल न मालूम मेरा हृदय क्यों घबराया करता है, मैं बहुत अपने को सम्हालता हूं किन्तु चैन नहीं पड़ता।

सीता—नाथ आप तो स्वयं बड़े धीर वीर हैं। आपको समझाना सूर्य को दीपक दिखाना है। आप क्यों इतने व्याकुल होते हैं? आपके भाई लक्ष्मण सदा आपके लिये प्राण नौछावर करने को तैय्यार रहते हैं।

राम—हैं, ये सेना के से आने की ध्वनी कैसी सुन पड़ती है?

सीता—(घबराकर राम से चिपटकर) नाथ मेरी रक्षाकरो

राम—मालूम होता है उस कुल्टा स्त्री ने कुछ जाल बिछाया है। ये सेना उसी के किसी सम्बन्धी की है। लक्ष्मण! तुम सीता की देख भाल करना, मैं युद्ध करने के लिये जाता हूं।

लक्ष्मण—नहीं, आप यहां बैठकर माता सीता की रक्षा कीजीये। मैं जाकर अभी उन्हें मारकर भगाता हूं। क्या आपको मेरे बल पर विश्वास नहीं है।

मैं वो सिंह हूं जहां उछलुं वहां पृथ्वी हिला डालूं।
जो मेरे सामने आये उसी को चूर कर डालूं॥
ये जितने स्याल हैं सबको, भगाऊंगा मैं क्षण भर में।
इन्हों की वीरता सारी मिटाऊंगा मैं क्षण भर में॥

राम—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो जाओ। अपने सूर्य-हास खड्ग का प्रयोग करो। सागरावर्त धनुषसे उन्हें मार भगाओ।

लक्ष्मण—आप यहां पर मेरे लिये चिन्ता न करना। जब मेरे

ऊपर भीड़ पड़ेगी तो मैं सिंहनाद करदूंगा । आप आ जाना ।

(भाई के पैर छूकर चले जाते हैं। इतने में वहां
रावण आ जाता है ।)

रावण—जिसने मेरी बहन के बच्चे को मार कर उसका अपमान किया है उसे मार कर मैं पृथ्वी में सुलाउंगा। (सामने देख कर) हैं यह कौन । यह नारी क्या इन्हीं की है ? आह, कितनी सुन्दर कितनी मन मोहिनी कितनी रूपवती है । यदि मैं इसे प्राप्त न कर सका तो मेरा जीवन धिक्कार है। अपनी विद्या से पहले मैं इनके विषय में पूछता हूं ।

(कुछ ध्यान करता है । ऊपर से विद्या पूछती है)

विद्या—स्वामी ! मैं उपस्थित हूं ।कहिये क्या पूछना है।

रावण—मुझे पूंछना है कि ये सामने बैठे हुवे कौन हैं।

विद्या—राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण पिता की आज्ञा से यहां आये हुवे हैं । ये नारी राम की स्त्री है । लक्ष्मण खरदूसण की फौज के लिये गया है । वह कह गया है कि आपत्ती पड़ने पर मैं सिंहनाद करूंगा । इस स्त्री का नाम सीता है । (बन्द हो जाती है)

रावण—बस, २ मेरा काम बन गया । मैं अभी सिंहनाद करता हूं । और इन्हें रण में भेजता हूं । इनके चले जाने पर मैं सीता को हर ले जाउंगा । इस प्रकार छिपे तौर से ले जाने

में मुझे कोई नहीं जानेगा। खरदूषण भी समझ लेगा कि मै आया ही नहीं था !

(चला जाता है)

(अन्दर जाकर सिंहनाद करता है राम, राम, पुकारता है)

राम—सीते ! देखो लक्ष्मण सिंहनाद करके मुझे बुलाया है। उसके ऊपर अवश्य कोई आपत्ती पड़ी है। तुम यहां सावधानी से रहना मैं अभी उसकी रक्षा कर के लौट आऊंगा।

(चले जाते हैं)

रावण—(बाहर आकर) बस, अब कार्य बन गया। मैं सीता को यहां से ले जाऊंगा। उधर राम लक्ष्मण दोनों को खरदूषन समाप्त कर देगा। फिर मुझसे सीता को मांगने वाला कोई नहीं मिलेगा।

(रावण सीता की ओर जाता है। सीता भय से नाथ, नाथ चिल्लाती है। रावण उसे बलात उठा ले जाता है। सीता चिल्लाती है।

सीता—ओ पापी छोड़ दे, दुष्ट छोड़ दे,

(दोनों चले जाते हैं)

पर्दा गिरता है

अंक प्रथम— दृश्य शष्ट

(स्थान युद्ध क्षेत्र। लक्ष्मण चारोंओर के वारों को सहते हुवे युद्ध कर रहे हैं। इतने में राम पहुंच जाते हैं वो भी लड़ने लगते हैं)

लक्ष्मण—(रुक कर) भाई साहब आप माता सीता को अकेली छोड़ कर यहां क्यों आये ?

राम—भाई तुमने सिंहनाद करके मुझे पुकारा था सो आया हूं।

लक्ष्मण—भाई साहब ? आप धोखा खा गये। शीघ्र जाकर सीता की खबर लिजिये। मैं इन सब योद्धाओं के लिये यहां अकेला ही काफी हूं।

राम—अच्छा तुम अच्छी प्रकार लड़ना मैं जाता हूं।

(जाते हैं)

खरदूषन—ओ पापी मूढ़ तूने मेरे पुत्र शम्बूक को मारा है और मेरी स्त्री के कुच मर्दन करके उसका शील भंग करना चाहा। मैं तुझ जैसे पापी को अभी मार कर अपने पुत्र का बदला लूंगा।

लक्ष्मण—मालुम होता है तुम्हें अपने पुत्र से बहुत प्रेम है। लो मैं तुम्हें अभी उसके पास पहुंचाता हूं।

है जिससे प्रेम तुमको, पास में उसके पठाता हूं।

न कर अभिमान मानी, मान तेरा मैं डिगाता हूं॥

विराधित—(आकर लक्ष्मण के पैर पकड़ कर) हे वीर पुरुष तुम मेरी सहायता करो। मुझे इस खरदूषन से अपने पिता का बदला लेने दो।

लक्ष्मण—उठो मैं इस खरदूषन को मारता हुं। तुम इसकी फौज को मार कर भगाओ। मेरे पछे निर्भय होकर अपनी सेना सहित इससे लड़ो।

विराधित—खरदूषन ? सम्हलजा अब तेरा काल निकट आगया है। तूने मेरे पिता को निरपराध मारा था। उसका बदला आज तुझसे उसका पुत्र विराधित ले रहा है।

खरदूषन—एक नहीं, अनेक विराधित आजयें तो मुझसे कभी नहीं जीत सकते. जा यदि अपना भला चाहता है तो पिता के बदले की बात भूल जा।

अभी क्षण में भुला दूंगा, तेरे अरमान सब दिल के।
तुम्हें दोनों को मारूंगा, करो क्या युद्ध तुम मिलके॥
मेरा है नाम खरदूषण, कि शत्रू को सुलाता हूं।
जो हंसता है अधिक मनमें, उसे ही मैं रुलाता हूं॥

लक्ष्मण—जो अपनी मारते शेखी, वो समझो हैं निरे कायर।
धरे जो मौन वो ही जानिये, बन राज है नाहर।
गरजते बादलों को भी, बरसते क्या कभी देखा।

कि रणवीरों को रण में, धीर ही हमने सदा देखा ॥

(लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग से खरदूषण को मारता है। विराधित भी उसकी सेना को मार भगाता है।)

लक्ष्मण—विजय, विजय, इतनी बड़ी सेना पर विजय विराधित में तुमको खरदूषण की राजधानी पाताल लंका का अधिपती बनाता हूं। तुम सुख पूर्वक वहां राज्य करना।

(चले जाते हैं।)

पर्दा गिरता है

अँक प्रथम—दृश्य सातवां

(लक्ष्मण और विराधित आते हैं।)

विराधित—हे नाथ आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। आपके प्रशाद से मेरे हृदय का कांटा निकल गया। इस दुष्ट राक्षस वंशी खरदूषण ने मेरे पिता चन्द्रोदय को मारा था।

लक्ष्मण—हे विद्याधर तुम क्यों बराबार मेरी प्रशंसा करते हो। इसमें तो तुमने ही मेरा उपकार किया है। मैं अकेला युद्ध में लड़ रहा था, तुमने आकर सहारा दिया। सामने से कुछ रोने की आवाज आ रही है। चलो देखें,

(दोनों चले जाते हैं। पर्दा खुलता है।)

(रामचन्द्रजी अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं)

राम—हाय सीता ! मैंने तुझे अयोध्या में ही मना किया था तूने एक न मानी । तुझ कोमलांगी को कौन उठा ले गया हा अब मैं अयोध्या क्या मुंह लेकर लौटूंगा ? सीता ! तू सतियों में श्रेष्ठ है न मालूम तुझ पर क्या आपत्तियां पड़ेगी । यदि मैं ऐसा जानता तो तुझे कदापि छोड़कर न जाता । हाय मेरा दुर्भाग्य । मैं तुझे कहां ढूंढूं, क्या करूं ।

गानाः—सीता सीता पुकारूं मैं बन में,
सीता प्यारी बसी मेरे मन में ।
जाके क्या समझाऊंगा वतन में,
छोड़ आया कहां सीता बन में ॥
जानती थी कि जाऊंगी तजकर,
क्यों लुभाया मुझे प्रेम कर कर ।
कर गई शोक पैदा वदन में,
छोड़ आंसू गई तू नयन में ॥

(रामचन्द्र बेहोश होकर गिर जाते हैं । लक्ष्मण और विराधित आते हैं ।)

लक्ष्मण—भाई साहब ! आप यहां किस लिये सो रहे हैं चलिये स्थान पर चलिये । माता सीता कहां है ? (रामचेतते हैं)

राम—लक्ष्मण तुम लौट आये ? देखूं तुम्हारे कहां कहां घाव लगे हैं ? यह तुम्हारे साथी कौन हैं ?

लक्ष्मण—भाई साहब आपके चरणों के प्रशाद से मैंने इस चन्द्रोदय के पुत्र विराधित की सहायता से बहुत सुगमता से युद्ध जीत कर खरदूषण को मार दिया। आप पहले बताइये कि माता सीता कहां है ?

राम--सीता को मैं अकेली छोड़ गया था। न मालूम कौन उसे यहां से उठा लेगया।

लक्ष्मण—आह हमारे क्या बुरे भाग्य हैं। एक पर एक आपत्तियां आती हैं। न मालूम कौन दुष्ट उन्हें हर लेगया ?

विराधित—स्वामी। आप दोनों किसी प्रकार का शोक न कीजिये मालूम होता है कि उन्हें कोई विद्याधर ही हर ले गया है मेरे ऊपर आपने बहुत उपकार किया है। मैं उनका पता अवश्य लगा कर उन्हें आपसे मिलाऊंगा। विद्याधर से विद्याधर नहीं छिप सकता।

लक्ष्मण—विराधित ! तुम यदि सीता का पता लगाओगे तो अत्यन्त उपकार करोगे। भाई साहब सीता के विरह में अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। यदि इन्होंने प्राण त्याग दिये तो मैं भी अग्नी में भस्म होकर अपने प्राण तज दूंगा। यदि तुम मेरा

उपकार मानते हो तो कहीं से भी मेरे भाई साहब की स्त्री को ढूंढ कर लाओ।

विराधित—स्वामी! मैं इसके लिये भरसक प्रयत्न करूंगा।

रामचन्द्र— गाना

वन वन में राम पुकार रहा, सीता सीता सीता सीता।
हे वैदेही पतिव्रता सती तू, कहां गई सीता सीता॥
मेरे बिन चैन न पड़ती थी, संग में रहती थी छाया सी।
किस भांति अब दिन काटेगी, शत्रू के घर सीता सीता॥

विराधित—हे प्रभो आप शोक न तजिये। सीता के भाई भामंडल पर मैं समाचार भेजता हूँ। आप यहां से पाताल लंका के लिये चले चलिये। खरदूषण सब विद्याधरों का स्वामी था उसके मरने पर वो विद्याधर कोप करके आपके ऊपर आपत्ती डालेंगे। पवनसुत हनूमान उसका जमाई है वो पृथ्वी पर अत्यन्त बलवान है। अपने ससुर की मृत्यु सुन कर वो अवश्य आपको हानी पहुंचायेगा। सुग्रीव आदि सब उसके परम मित्र हैं। उसकी मृत्यु सुन कर कोप करेंगे। इस लिये आप शीघ्र ही पाताल लंका चले चलिये।

राम—भाई! तुम सच कहते हो। वास्तव में तुम बड़े

बुद्धिमान हो । हम तुम्हारे कहे अनुसार चलते हैं ।

ड्राप गिरता है

अँक द्वितिय—दृश्य प्रथम

(सीता वाटिका में एक वृक्ष के नीचे शिला पर बैठी हुई है ।)

सीता—हाय, मेरा कैसा बुरा भाग्य है । अपने प्यारे पती से मैं बिछुड़ गई । ये दुष्ट रावण मुझे यहां हर लाया । हे प्राणनाथ ! मेरे विरह में आपको न मालूम क्या २ कष्ट भुगतने पड़ रहे होंगे । यदि मैं ऐसा जानती कि ये दुष्ट मुझे हर ले जायगा तो आपके साथ ही युद्ध में चलती । जब तक पती देव के कुशल समचार न सुनूं तब तक मेरे लिये जल पान वृथा है । बिना स्वामी के ये वाटिका वाटिका नहीं, अग्नी कुण्ड है । वह देखो वृक्ष पर पक्षी मेरे भाग्य पर हंस रहे हैं ।

गाना

आ फसी हूं कैद में, जियरा मेरा घबराय है ।
बिन पियारे के मुझे, कुछ भी न ये सब भाय है ॥
पक्षियों क्यों चह चहाते, मुझको रोती देख कर ।
मेरे रोने पर दया तुमको न कुछ भी आय है ॥

शोक में मेरे न जाने होगी उनकी क्या दशा।
मन मिला है तन जुदा है, भाग्य ठोकर खाय है।

मन्दोदरी—(आकर) हे सीता ? तू क्यों इतनी रो रही है

सीता—न पूछो बहन, जो दशा जल से मीन को अलग करने पर होती है। वही मेरी हो रही है।

मन्दोदरी—सीता ' तुम नादान हो। जिससे सारे विश्व की नारियां प्रेम करने में अपना सौभाग्य समझती हैं उसी के प्रेम को तुम ठुकराती हो। कहां वो निर्धन भूमी गोचरी कहां ये वैभव सम्पन्न समस्त विद्याधरों के स्वामी तुम अपनीहठ छोड़ कर यदि भला चाहती हो तो मेरे पती का प्रेम स्वीकार करो।

सीता—बहन मन्दोदरी मैंने सुना था कि तुम पतिव्रताओं में श्रेष्ठ हो। किन्तु तुम्हें पतिव्रताओं के कुछ भी गुण नहीं मालूम जो पतिव्रता होती हैं उनके लिये उनका निर्धन पती भी चक्रवर्ती के समान होता है।

जो पतिव्रता कहलाती हैं, वो पर नर को ठुकराती हैं।
निर्धन बल हीन पती को भी. वो तन मन धनसे चाहती हैं।
पति से विछुड़ा कर यदि उन्हें, कोई इन्द्रों की सम्पत दे।
उनको वो धूल समान सभी, जो शील वरत अपनाती हैं॥
हा शोक, बहन हो पतिव्रता, पतिव्रत से मुझे डिगाती हो।

धिक्कार तुम्हें जो स्वामी के, अपयश में हाथ बटाती हो ॥

रावण—(आकर) सीता ! सीता !! मैं तेरे प्रेम में पागल हो रहा हूं । एक बार मेरी ओर प्रेम की दृष्टी से देख । हां तू कितनी सुन्दर है। मुझ प्रेम के भिखारी को प्रेमदान देकर कृतार्थ कर । तू मुझसे प्रेम कर मैं ये सब विभूति तेरे चरणों पर रखूं । सीता ! सीता !! जरा मेरी ओर देख ।

सीता—सीता को अपनी आंखों पर अधिकार नहीं है जो इन्हें तेरी ओर फेरे : वो आंखें श्रीराम की हैं। सिवाय उनके किसी की ओर नहीं देख सकती । तू प्रेमी नहीं किन्तु विषय लम्पटी है । यदि प्रेमी होता तो रामसे मेरे प्रेम की रीति पहचान कर मुझे उनसे अलग न करता ? तू ज्ञानी है । विचार कि मेरा यह रूप ये यौवन क्षणभंगुर है , जिसके ऊपर तू इतना मुग्ध हो रहा है, वो नाशवान है। यदि अपना कल्याण चाहता है तो पर स्त्री रूपी जो नरक की राह है उसे तू न ग्रहण कर ।

रावण—सीता, तेरा उपदेश मेरे लिये भी में अग्नी के समान है मैं काम रूपी अग्नी से जल रहा हूं । यदि मेरा जीवन चाहती है तो मुझे अपने प्रेम रूपी शीतल जल से सींच ।

सीता—मेरे आगे तेरे जीवन का कुछ मूल्य नहीं है । तू यदि लाख उपाय से भी चाहेगा कि सीता तुझे अपनाये तो नहीं हो सकता ।

रावण— सीता ! उन निर्धन बनवासियों का ध्यान छोड़कर तू मेरी पटरानी बन।

सीता—रावण ! याद रख तू इन बातोंसे दुखों की खान नरक का सामान कर रहा है। तू पृथ्वी का रक्षक कहलाकर भक्षक न बन। अपनी इस नाशवान विभूति का घमंड न कर।

तेरी ये सम्पदा सारी, तेरा वैभव सभी रावण।
न कुछ भी साथ जायेगा, तेरे मरने पे ये रावण ॥
मुझे लालच दिखाता है, दिखाना और कोई को।
जिसे मरने का भय न हो, गहेगी ये वही रावण ॥
पतीव्रत धर्म के आगे, जगत की सम्पदा सारी।
नहीं तिनके से बढ़कर है, समझ लेना सही रावण ॥

रावण—तू बड़ी हठी स्त्री है। सीधी उंगलियों से घी नहीं निकलता अब मैं दूसरा उपाय करता हूं।

सीता—मैं अबला नार हूं, तू दुख दिखायेगा मैं रोदूंगी।
रखेगा हाथ गर मुझपर, मैं अपने प्राण खोदूंगी।
है सीता सत धरम की, डिग नहीं सकती डिगाने से।
पतीव्रत छोड़ सकती हूं, नहीं कोई बहाने से ॥

रावण—अच्छा ठहरजा अभी अपनी विद्याओं से तुझे भय दिखाता हूं फिर देखूंगा कि तू मेरे सिवा किसकी शरणलेगी।

(रावण विद्या द्वारा महान्धकार कर देता है। तरह तरह

के भयानक शब्द होते हैं। सीता के आगे बड़े २ अजगर जाते हैं। सीता डर डर चिल्लाती है किन्तु रावण की शरण में नहीं जाती है। इतने में विभीषण आता है।)

विभीषण—भाई साहब ये नारी कौन रो रही है। बड़ी दुखद वाणी है।

रावण—विभीषण ! ये सीता है।

वि०—(सीता से) क्यों सती तुम कौन हो ?

सीता—मैं राजा जनक की पुत्री भामण्डल की बहन राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम की स्त्री हूं। मुझे मेरे स्वामी के पास से ये दुष्ट मायाचारी से हर लाया है। और अब अपनी स्त्री बनाना चाहता है। तुम धर्मात्मा पुरुष मालूम होते हो। किसी प्रकार मुझे मेरे स्वामी के पास पहुंचा दो वो मेरे बिना अत्यन्त व्याकुल होंगे।

वि०—(रावण से) हे प्रभो ! आपने मुझे कहा था कि यदि आप किसी खोटे मार्ग पर हो तो मैं आपको उससे बचाऊं। ये नारी अत्यन्त दुखी हो रही है। परनारी है आप इसे इसके स्वामी के पास भेज दीजिये ?

रावण—विभीषण मैं इस पृथ्वी का अधिकारी हूं। जो वस्तु पृथ्वी पर है वो मेरी है। सीता को परनारी कहना योग्य

नहीं है ।

वि०—राजा का धर्म प्रजा की रक्षा करना है । न कि उसके द्रव्य को लूट कर अपना बता कर हरना । आप सर्व श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमान हैं । ऐसा अनर्थ न कीजिये । जिससे इस भव में अपयश और परभव में दुख उठाने पड़ें ।

पर्दा गिरता है

(विभीषण और दो मन्त्री आते हैं)

वि०—अब क्या करना चाहिये ? राजा कामोन्मत्त होकर राज्य कार्य को भूल गया है । इस प्रकार अवश्य ही रावण की मृत्यु होजायगी । राम अवश्य ही इसे मारडालेगा ! उसकी दाहिनी भुजा खरदूषण पहले ही मारा गया है । बहन चन्द्रनखा और उसके बचे हुवे एक पुत्र को उन्होंने पाताल लंका से भगा दिया है । विराधित कितना दीन था किन्तु वो भी संयोग पाकर एक सिंह के समान हो गया है । ऊपर सुग्रीव मारा २ फिर रहा है। कहीं ऐसा न हो कि उनसे जा मिले । उसके जा मिलने पर खरदूषन के जमाई हनूमान क्या करेंगे । मुझे आशा है कि वह अन्याय मार्ग पर चलते हुवे रावण का कदापि पक्ष ग्रहण न करेंगे । किसी उपाय से इस समय लंका की रक्षा करनी चाहिये।

१ मन्त्री—(गर्व से) आप इतने साहसी होकर भी

क्यों डरपोक बन रहे हैं। यदि खरदूषण मारा गया तो क्या हुआ ? हमारी इतनी सेना है कि वह कुछ भी नहीं कर सके वह दो छोकरे हमारा सामना किस प्रकार कर सकते हैं।

२ मन्त्री—दो छोकरे नहीं, जरासा अग्नी का कण ही सारे बनको भस्म कर देता है। दूसरे को कभी अपने से कमजोर नहीं गिनना चाहिये। बजाय उनको कष्ट पहुंचाने के उनसे लंका की रक्षा करनी चाहिये।

विभीषण—तो आप ही बताइये ऐसे समय में क्या किया जाय।

२ मन्त्री—लंका के चारों ओर माया मई यंत्र बनाये जांय जिससे लंका में कोई घुसने न पावे। कोई भी मनुष्य यहां के समाचार न ले जा सके। इस प्रकार राम को सीता का समाचार न मिलने पर वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा। उसके मरने पर लक्ष्मण अवश्य ही मर जायगा। विराधित को जीतना कोई बड़ी बात नहीं है।

विभीषण—किसी प्रकार भी रावण का हित हो, मेरी यही भावना है।

(सब जाते हैं)

अंक द्वितिय—दृश्य द्वितिय

(ब्रह्मचारी और साधू आते हैं।)

साधू—ये तो बताइये कि आपने सूर्पनखा की नाक कटना सोने का मृग मारा जाना आदि क्यों नहीं दिखाये ?

ब्र०—लक्ष्मण जैसे बलवान न्यायनिष्ठ पुरुष का हाथ एक अबला की नाक पर चले ये असम्भव है। दूसरे आज तक न कभी किसी ने स्वर्ण मृग देखा न सुना। यदि हो भी तो स्वर्ण धातु है। इसका बना हुआ मृग किस प्रकार चल फिर सकता है ? तीसरे ये कि राम जैसे धर्मात्मा पुरुष कभी शिकार नहीं खेल सकते थे, और सीता जैसी धर्मात्मा और विचारवान स्त्री कभी भी मृग को मारने के लिये नहीं कह सकती ?

सा०—इससे अगाड़ी क्या हुआ।

ब्र०—सुनिये ! जिस समय सुग्रीव अपनी स्त्री सुतारा और राज्य से छूटा हुवा उनके विरह में अपने सामन्तों सहित फिरते हुए जहां खरदूषण की सेना मरी पड़ी थी वहां पर आया, खर-दूषण की मृत्यु सुनकर उसे बड़ा दुख हुआ कि उसका मित्र मारा गया अब उसे राज्य और नारी कौन दिलायेगा ?

सा०—फिर क्या हुआ ?

ब्र०—फिरे वो अपने जमाई हनूमानजी पर पहुंचा।

सा०—क्या हनुमानजी सुग्रीव के जमाई थे ?

ब्र०—हां सुग्रीव की पद्मरागा नामकी कन्या उन्हें विवाही थी। हनूमानजी उसकी सहायता को आये। किन्तु दोनों का समान रूप देखकर लौट गये। जब ये सब ओर से निराश हो गया तो विराधित को रामचन्द्र का मित्र जान उनसे सहायता लेने के लिये ये विराधित के पास पाताल लंका पहुंचा। वहां रामचन्द्र की और इसकी गाढ़ मित्रता हुई, उसने यह वचन दिया कि यदि तुम मेरा राज्य दिलादोगे तो मैं सात दिन के अन्दर सीता का पता लगाऊंगा।

सा०—इसके पश्चात राम ने क्या किया?

ब्र०—राम ने नकली सुग्रीव को मारकर सुग्रीव को राज्य और नारी दिला दी। उसने चारों ओर अपने दूत खबर लेने को भेजे, तथा स्वयं भी गया एक जगह उसने रत्नजटी नामक विद्याधर को विद्या रहित और दुखी देखकर उससे सीता का समाचार मालूम किया। सुग्रीव यह समाचार पाकर अत्यन्त हर्षित हुआ और वह उसे अपने साथ ले आया।

सा०—इसके पश्चात क्या हुआ?

ब्र०—राम लक्ष्मण को सीता का समाचार सुनकर हर्ष हुआ लक्ष्मण ने रावण को मारने को कहा तब सुग्रीव के सामंतों ने कहा कि उसे वही मार सकता है जो कोटी शिलाको उठावे।

लक्ष्मण ने उसे उठाली। यह देखकर सामन्तोंने रावण का मरण निश्चय कर लिया। उसकी जान बचाने के लिये उन्होंने हनुमानजी को बुलाने के लिये दूत भेजा कि वह रावण के मित्र हैं उसे समझावेंगे, दूत हनूमानजी के पास जाकर क्या क्या कहता है सो इस दृश्य में देखना।

सा०—आपने इतनी बातें तो वैसे ही बता दीं दिखाओगे क्या?

ब्र०—यदि इस बात की एक एक बात दिखाई जावे तो यह बहुत बढ़ जाय। इस लिये थोड़ा सा किस्सा मैंने संक्षेप में बतला दिया है जिस समय दूत हनूमानजी के पास जाकर समाचार देता है उस समय खरदूषण की पुत्री अनंग कुसुमा और सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा दोनों उनके निकट बैठी थी। उनमें से एक रोती है एक खुश होती है। सो देखना।

सा०—अच्छा चलिये दिखाइये (दोनों चले जाते हैं)

अँक द्वितिय—दृश्य तृतिय

(राज महल मे बीच मे हनूमान बैठे हैं। इधर उधर पद्मरागा और अनंग कुसुमा बैठी हैं।)

गाना

आओ गावें सखीरी, तान मिलाके।

पद्मरागा—हमारे दिलको लुभाने के लिये फूल हो तुम,
हमारे नैन के तारे हो कमल फूल हो तुम ॥
अनंग कुसुमा—प्राण प्यारे के लिये प्राण मेरे नौछावर।
नैन तारे के लिये नैन मेरे नौछावर ॥
दोनों—आओ गावें सखीरी तान मिला के ।
हनूमान—तुम्हारी बाणी ने बाणों का किया काम प्रिये ॥
तुम्हारे नैनोंने दिल छीना बिना दाम प्रिये ॥
दोनों—झूँठी तारीफ सदा करके हंसी करते हो ।
प्रेम के दिल में नया प्रेम आप भरते हो ॥
आओ गावें सखीरी, तान मिलाके ।

दासी—(आकर) श्रीमान् की जय हो ! बाहर किष्कि-न्धा से आया हुआ दूत आपके दर्शनों को चाहता है ।

हनूमान—उसे शीघ्र ही मेरे पास भेजो ।

दासी—जो आज्ञा (चली जाती है, दूत आता है ।)

दूत—महाराज की जय हो ।

हनूमान—कहो ! किष्किन्धा से क्या समाचार लाये हो ?

दूत—आपने अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राम और

लक्ष्मण के विषय में सुना होगा।

हनूमान—हां मैं उन्हें जानता हूं भामण्डल की बहन सीता उनसे व्याही है !

दूत—वन में घूमते हुवे, लक्ष्मण ने शम्बूक को जो कि सूर्यहास खड्ग साध रखा था, मारकर वो ले लिया इसके पश्चात चन्द्रनखा अपने पुत्र के शत्रू को खोजने गई वह उन पर मोहित हुई किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं की इस पर खरदूषण राम से भिड़ा था. लक्ष्मण ने खरदूषण को मार दिया।

अनंगकुसुमा—हाय हाय, मेरे तो पिता और भाई दोनों ही मारे गये। वो कैसे दुष्ट हैं। जिन्होंने मेरे पिता और भाई को मारा।

हनूमान—ओह, इतना अभिमान, राम लक्ष्मण को इतनी शक्ती हो गई कि उन्होंने मेरे साले और ससुर को मार दिया। उन्हें मेरे बल का पता नहीं है।

दूत—थोड़ा और सुनिये।

हनूमान—कहो।

दूत—विराधित ने लक्ष्मण को रण में सहायता दी थी। जिस समय खरदूषण और लक्ष्मण का युद्ध हो रहा था उस समय रावण सीता के रूप पर मोहित होकर मायाचारी से राम

को युद्ध में भेज कर सीता को हर ले गया। लक्ष्मण ने युद्ध जीत कर पाताल लंका का राज्य विराधित को दिया। सुग्रीव ने विराधित के द्वारा राम से मित्रता की। राम को देखते ही बनावटी सुग्रीव की वैताली विद्या भाग गई। जिससे वह साहस गती नाम का विद्याधर प्रगट हुआ। राम ने उसे मार कर सुग्रीव को राज्य और नारी दिलाई सुग्रीव ने अपने बचनानुसार सीता का पता लगा कर रावण को समझाने के लिये आपको भेजना निश्चित किया है। क्योंकि आप सर्व गुण सम्पन्न हैं। आप तुरन्त ही राम के निकट चलिये।

पद्मरागा—आज मेरे धन्य भाग्य हैं जो अपने पिता के शुभ समाचार सुने। जिन्होंने मेरे पिता का कल्याण किया भगवान की कृपा से उनका कल्याण हो।

हनूमान—मैं सब कुछ समझ गया। अब अवश्य ही रामचन्द्र जैसे पुरुशोत्तम से मिल कर उनके उपकार का बदला चुकाऊंगा। चलो दूत मैं चलता हूं।

अनंगकुसुमा—स्वामी आप मेरे पिता के शत्रु की सहायता को क्यों जा रहे हैं!

हनूमान—प्रिये जो न्याय मार्ग पर हो वह चाहे शत्रु ही क्यों न हो। उसकी सहायता करना मेरा धर्म है। तुम्हीं देखो तुम्हारे मामा रावण ने कितना घोर अत्याचार किया है कि

उन बेचारों की नारी हरी ! क्या तुम इसमें सहमत हो ?

अनंगकुसुमा—कदापि नहीं । आप जाइये और मेरे मामा से उनकी नारी उन्हें दिलवाइये ।

(हनूमान और दूत चले जाते हैं)

पर्दा गिरता है

(सुग्रीव और हनूमानजी आते हैं)

सुग्रीव—आपने मेरी प्रार्थनानुसार यहां पर पधार कर बड़ी कृपा की ।

हनूमान—आप मेरे पिता के समान हैं आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है । आपका उपकार हुआ उसे मैं अपना ही उपकार समझता हूं । मुझे उन राम लक्ष्मण से मिलने की अत्यन्त उत्कण्ठा है ।

सुग्रीव—चलिये मैं आपको उनसे मिलाऊं सिंह की सिंह से मित्रता कराऊं ।

(पर्दा खुलता है राज महल में राम और लक्ष्मण बैठे हैं ।)

देखिये वही रामचन्द्रजी हैं । ये इनके भाई लक्ष्मणजी हैं ।

हनूमान—इनके रूप को सुन्दरता को और इनकी आकर्षण शक्ती को धन्य है ।

रामचन्द्र—आइये ? मैं हृदय से आपका स्वागत करता हूं।
(हनूमानजी रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी से गले मिलते हैं)

हनूमान—सचमुच जैसा मैंने सुना था वैसा ही प्रत्यक्ष देखा। लक्ष्मणजी आपको देख कर मैं फूला नहीं समा रहा हूं। उस कोटि शिला को आपने क्षण भर में उठाली। मुझे निश्चय है कि आप युद्ध में रावण को अवश्य मारेंगे!

लक्ष्मण—आप मेरी प्रशंसा करके मुझे लज्जित करते हैं मेरी प्रशंसा उसी में है कि भाई साहब को सीता माता के दर्शन हों।

हनूमान—क्यों नहीं ? जिनके भाई आप जैसे पुरुशोत्तम नारायण हैं। उन्हें किस प्रकार सीता नहीं मिल सकती ? सीता अवश्य मिलेगी।

जांबूनद—(हनूमान से) श्रीमान आप से प्रार्थना है कि आप लंका जाकर सीता को राम का समाचार दें और रावण को किसी प्रकार सीता लौटा देने के लिये कहें।

हनूमान—अच्छी बात है। मैं अभी लंका के लिये प्रयाण करता हूं।

रामचन्द्र—(हनूमान से एकांत में बुलाकर) देखो मित्र! आप हमारे मित्र हो। आपसे कोई बात छिपानी वृथा है। मैं सीता के शोक में अत्यन्त व्याकुल रहता हूं। उसके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता आप सीता से मेरी सब हालत कहना

और यह भी कहना कि बहुत शीघ्र ही तुम्हें यहां से छुड़ायेंगे। तुम शोक करके अपने तन को दुर्बल न बनाओ। विश्वास के लिये मेरी ये मुद्रिका उसे दे देना और उसका चूड़ामणी लेते आना।

हनूमान---आपने जिस प्रकार कहा उसी प्रकार किया जायगा आप निश्चित रहिये। और मुझे अपना परम हितु समझिये। अच्छा मैं अब जाता हूं।

(गले मिलकर चले जाते हैं।)

पर्दा गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य चतुर्थ

(ब्रह्मचारीजी आते हैं।)

ब्र०—सज्जनों! जिस समय हनुमानजी लंका के लिये जा रहे हैं। उस समय क्या क्या घटनायें घटती हैं सो सुनिये!

श्री वायू सुत चल पड़े, सबसे हृदय मिलाय।
मनमें हर्षित होयकरे, श्री जिनराज मनाय॥
आकाश मार्ग से जाते हैं, सारी सेना को संग लिये।
हैं सोच रहे जो राम लखन ने, उनके प्रति उपकार किये॥
जो बड़े पुरुष कहलाते हैं, थोड़ा उपकार बड़ा मानें।
है नीच जनों की रीत यही, उपकारी को शत्रू जानें॥

थोड़ा आगे बढ़ने पाये. नाना का पुर दीख पड़ा ।
माता की आई याद तभी, मन में उनके यूं क्रोध बढ़ा ॥
माता जब इनके शरण गई, तब बाहर से दुतकारा था ।
बन में जाकर कष्ट सहे, जब होया जन्म हमारा था ॥

क्रोध बढ़ा इस भांत से, मचा युद्ध घन घोर ।
नाना मामा आगये, सुन हनुमन्त की शोर ॥

टंकोर धनुषों की होती, बाणों से सब नभ छाय गया ।
दोनों सेना के वीरों ने, बल दिखलाया तब नया नया ॥
आखिर में अंजन के सुत ने, नाना जीता पकड़ लिया ।
जब दोनों इक स्थान मिले, तब बैर सभी ने भगा दिया ।
दोनों गल मिलकर के रोये, भूलों पर पश्चाताप किया ।
दो. मदद राम और लक्ष्मण को, ये कहकर उनको भेज दिया ।

पवनकुमार आगे बढ़े, पहुंचे बन. के मांहि ।
देखे दो मुनिराज को, प्रेम द्वेष जिन नाहिं ॥

बन में थी अगनी लगी हुई, थे वृक्ष गिर रहे जल बल कर ।
धर ध्यान खड़े मुनिराज वहां, अपनी आतम को निश्चल कर ॥
देखा मुनियों पर कष्ट पड़ा तब दया भाव मनमें आये ।
करने को रक्षा जीवों की, विद्या से बादल बरसाये ॥
उपसर्ग दूर कर मुनियों का, लेकर आसीष चले आगे ।

शत्रू गण आते देख उन्हें, निज प्राण बचा करके भागे।
कुछ दूर बढ़े आगे त्योंही, रुक गया अचानक उनका दल।
सोचा क्या धर्म स्थान यहां, जिसका है अतिशय अति प्रबल॥
जब मन्त्री से कारण पूंछा, तब विनय सहित ये बात कही।
लंकापत ने माया द्वारा, रच रखा यन्त्र श्रीमान यही॥
सारी सेना को दूर रखा, बन्दर का भेष बनाया है।
घुस गये पेट में पुतली के, माया को तुरत भगाया है॥
फिर तोड़ दिया माया का गढ़, जो कुछ था सब बर्बाद किया।
ये देख वहां के रक्षक ने, हनुमत पर अपना कोप किया।

दोनों सेना लड़ पड़ी, जूझ पड़े सब वीर।
करी दया हनुमान ने बोले वचन गम्भीर॥

क्यों मौत तुम्हारी आई है जो इतना कोप दिखाते हो
बोलो अभिमान वचन ऐसे, मरने से भय ना खाते हो॥
ये कहकर उसको मारा है, सेना सारी की तितर बितर।
कोपित होकर उसकी कन्या फिर आती इनको पड़ी नजर॥
यौवन से थी भरपूर अति, सुन्दर सब अंग सुहाते थे।
कुच अरु कपोल आदि सब ही, पुरुषों के मन को भाते थे॥
देवी सी कोप दिखाती थी, था शोक पिता के मरने का।
था ख्याल उधर से रावण की, आज्ञा को पालन करने का॥

बोली ललकार पवनसुत को, क्यों मेरे पिता को मारा है ।
ले सम्हल बचा अब प्राणों, को. मैंने भी धनुष सम्हारा है ॥
बोले हनुमान बचन ऐसे, नारी से युद्ध नहीं करते ।
तुम वार करो मैं रोकुंगा, क्षत्री गण कभी नहीं डरते ॥
छिड़े युद्ध इस भांति से दोनों दोनों ओर ।
काम बाण अरु धनुष है, बाण चले इम घोर ॥
कन्या ने आखिर में छोड़ा, एक तीर पत्र जिसमें था यूं ।
हे प्राणनाथ स्वीकार करो, दासी को तड़फाते हैं क्यूं ॥
था प्रेम बढ रहा दोनों में, दोनों ही बढ कर मिले जुले ।
जो अभी तलक मुरझाये थे, दोनो के दिल के पुष्प खिले ॥
स्वीकार किया उस कन्या को, रात्री भर उसके पास रहे ।
सारी सेना को छोड़ वहां, प्रातः लंका हनूमान गये ॥
जा पहुंचे पास विभीषण के, सब समाचार उससे पाये ।
उपवास सुना सीता का जब, चल दिये अंजना के जाये ॥
थी सीता रोती शोक भरी, कर रही विलाप अती नाना ।
देखो अब क्या क्या होता है, जय वीर मुझे है अब जाना ॥
(चला जाता है)

अँक द्वितिय—दृश्य पंचम

(अशोक वाटिका में सीता गा रही है)

गाना

सिया को काहे बिसारी राम ।
जबसे छूटी प्राणनाथसे, प्राण हुवे बे काम ।
बिना प्राण प्यारे के पाये, नहीं मुझे आराम ॥सि०॥
मुझ बिन तुम, तुम बिन मैं व्याकुल नहीं मिले सुखधाम
आओ दरश दिखाओ मुझको, दो मुझको विश्राम ॥

(ऊपर से मुद्रिका गिरती है उसे देख कर)

हैं, ये मेरे पती की मुद्रिका यहां कहां से आई । आज मेरे परम सौभाग्य हैं जो इनकी ये मुद्रिका आई ।

मन्दोदरी—(आकर) सीता ! आज तो बड़ी प्रसन्न मालूम हो रहीं हो ! मालूम होता है मेरे स्वामी के प्रेम ने मन में स्थान बनाया है ।

सीता—तेरे स्वामी का प्रेम और मेरे मन में स्थान बनावे, ये असंभव है ।

चन्द्र सूर्य स्थित होजावें, पर्वत अपनी छोड़े रीत ।
कभी नहीं हो सकता सीता, पर प्रीतम से जोड़ें प्रीत ॥

म०—तो फिर क्या कारण है ?

सी०—आज मेरे पती की मुद्रिका मुझे प्राप्त हुई है ।

म०—सीता ! सीता ! तू कोइ पागल तो नहीं होगई ।

सी०—कृपा करके जो मेरे पती की मुद्रिका लेकर आये हैं वो मुझे दर्शन देकर मेरे संशय को दूर करो ।

हनूमान—(आकर) माता तुम्हें मेरा बार २ नमस्कार है !

सी०—कहो भाई तुम कौन हो इतने बड़े समुद्र को उलांघ करे तुम यहां कैसे आये ? मेरे पती और देवर तो प्रसन्न हैं ।

हनूमान—माता मैं हनूमान हूं । मैं विद्याधर हूं मेरे लिये समुद्र कोइ बड़ी बात नहीं । आपके पती और देवर कुसल पूर्वक हैं ।

सी०—क्यों भाई तुम्हारे सरीखे विनयवान और बलवान मेरे पती के पास कितने पुरुष हैं ?

म०—सीता इनके समान तो सारे भरत क्षेत्र में दूसरा मनुश्य नहीं है । इनका बल और पराक्रम अतुल्य है । मेरे स्वामी इन्हें अपने पुत्रों से भी अधिक चाहते हैं । इनके दर्शनों के लिये लोग व्याकुल होते हैं । किन्तु इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि ये रामचन्द्र के दूत बन कर आये हैं ।

हनूमान—मन्दोदरी? तुम पतिव्रता हो। जिस पती के द्वारा तुम्हें देवियों के से सुख प्राप्त हैं। उसी के अपयश में तुम सहायता करती हो। अपने पती को आप ही नरकों के दुख में डालना चाहती हो। तुम रावण की महिषी अर्थात पटरानी हो। मैं तुम्हें महिषी अर्थात भैंस समझता हूं।

म०—हनुमान! हनुमान!! तुम्हारी और ये जबान। उन गीदड़ों के संग में रह कर ये कृतघ्नता। उन सबको हराना मेरे स्वामी के बांये हाथ का खेल है। अभी तक वो तुम्हें अपना समझते थे किन्तु अब तुम्हें शत्रु समझ कर कठिन से कठिन दण्ड देंगे।

सीता—मन्दोदरी! तूने मेरे स्वामी के बल को नहीं सुना है। जिस समय वज्रावर्त धनुष उठाया था तब सारा आकाश मण्डल गूंज उठा था। याद रख! तुझे शीघ्र ही विधवा होना पड़ेगा हमेशा के लिये रोना पड़ेगा।

मन्दोदरी—सीता! तू ऐसे अभिमान के वचन बोलती है, ले सम्हल मैं तुझे प्राणों रहित करती हूं।

(मन्दोदरी वार करती है, हनूमान बचा लेते हैं। मन्दोदरी क्रोधित होकर चली जाती है, सीता और हनूमान ही रह जाते हैं।)

हनूमान—माता, तुम मेरे कांधे पर बैठ जाओ मैं तुम्हें

तुम्हारे स्वामी के पास पहुंचा दूंगा । वरना न मालूम तुम्हें और क्या २ कष्ट यहां रह कर उठाने पड़ेंगे ।

सीता—नहीं भाई ! मैं इस प्रकार नहीं जा सकती । यदि मेरे स्वामी मुझसे पूछेंगे कि तू बिना बुलाई क्यों आई तो मैं क्या उत्तर दूंगी । लो तुम मेरा यह चूड़ामणी उन्हें दे देना और मेरी सब अवस्था उन्हें बता देना ।

हनूमान—जैसी आज्ञा । मैं तुम्हारे लिये खाना मंगाता हूं । क्यों कि अब तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगई है । मैं विभीषण के घर जाता हूं वहीं भोजन करूंगा । प्रणाम,

(चले जाते हैं । पर्दा गिरता है । विभीषण और हनूमान दोनों आते हैं ।)

विभीषण—कहो भाई साहब क्या समाचार लाये ?

हनूमान—मैं माता सीता को भोजन खिला आया हूं । माता के रूप को देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ ?

विभीषण—क्या कहूं बेचारी भांति २ के कष्ट पा रही है । भाई साहब को मैं अनेक बार समझा चुका किन्तु उनकी समझ में एक भी नहीं आता । आप उन बेचारों की सहायता कर रहे हैं इसमें मुझे बड़ा हर्ष है ।

हनूमान—मुझे एक बार रावण से मिलना है ।

विभीषण—देखो! देखो! वे सामने से सिपाही लोग तुम्हें ही पकड़ने आ रहे हैं। तुम भाग जाओ।

हनूमान—आप भाग जाइये वरना आपको मेरे साथ खड़े हुवे सुन कर रावण आप पर नाराज होगा। मुझे रावण से मिलने का यह अच्छा मौका है।

(विभीषण चला जाता है। सेना आती है। हनूमान उन्हें मार कर भगा देता है।)

हनूमान—थोड़ा कौतूहल अवश्य दिखाना चाहिये।

(चला जाता है।)

अँक द्वितीय—दृश्य छठा

(रावण का दर्बार। मेघवाहन इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, विभीषण और दो मन्त्री बैठे हैं। दूत आता है।)

दूत—महाराजाधिराज की जय हो। उस हनूमान ने लंका में घोर उपद्रव मचा रखा है। बड़े बड़े रत्नोंके महलों को अपनी जंघा से चूर्ण कर रहा है। जलाशय तोड़ दिये हैं सारी सड़कों पर कीचड़ हो रही है, तमाम मकानों को ढा रहा है, नगर के लोग त्राही मचा रहे हैं। दुहाई है महाराज की।

रावण—मेरे टुकड़ों का पला हुआ हनूमान और मेरे ही नगर पर उपद्रव। मेघवाहन जाओ जिस प्रकार हो सके जीता या

मरा हुआ उसे मेरे पास पकड़ कर लाओ।

मेघवाहन—जो आज्ञा! (चला जाता है)

रावण—कोई डर की बात नहीं। देखता हूं कौन कौन मुझसे अलग होकर उन निर्धन बनवासियों की सहायता करता है। यदि सारे पृथ्वी के राजा लोग एक ओर होजायें तो भी क्या परवाह है रावण अकेला ही सबको काफी है।

दूत—(भागा आकर) महाराज गजब होगया। हनुमान अकेला ही सबको मार मार कर भगा रहा है। मेघवाहन खतरे में है तुरन्त सहायता भेजिये।

रावण—ओ! उस चार दिन के छोकरे में ये शक्ती।

इन्द्रजीत—पिताजी मुझे आज्ञा दीजिये मैं अभी उसे नाग पाश द्वारा बांध कर दर्बार में लाता हूं।

रावण—जाओ उसे मेरे सामने पकड़ कर लाओ।

(इन्द्रजीत चला जाता है)

आखिर ये हनुमान उनकी सहायता के लिये गया क्यों?

मन्त्री—सुनिये महाराज। सुग्रीव की राम ने सहायता की इस लिये सुग्रीव ने इन्हें बुलाया ये राम की सहायता के लिये आये। वहां से सीता की सुध लेने के लिये चले। बीच में इनके नाना का नगर पड़ा उसको इन्होंने जीत कर राम की सहायता के लिये भेजा। अगाड़ी बढ़ने पर एक बन में दो मुनि

राजों को अग्नी में जलते हुवे बचाया। आगे बढ़ कर आपका बनाया हुआ माया का यन्त्र तोड़ कर लंका सुन्दरी को परणा!

दूत—(भागा आकर) महाराज की जय हो। इन्द्रजीत हनूमान को नाग फांस में फांस कर ला रहे हैं।

इन्द्रजीत—(हनुमान को अगाड़ी करके) देखिये पिताजी आपके चरणों के प्रशाद से मैं इसे बांध लाया हूं। अब जो उचित समझें इसे दण्ड दें।

रावण—हनूमान! हनूमान!! मैंने तुझे पुत्र समझ कर राज्य दिया और मेरे ही साथ में तूने ये विद्रोह किया। तुझे लाज नहीं आती।

हनूमान—तुम्हारा मेरा राजा और प्रजा का नाता था। जिस समय राजा अन्याय करता है उस समय उसका साथ देना धर्म के विरुद्ध है। तुम तो क्या अन्याय और अनीती के कारण पिता पुत्र का सम्बन्ध छूट जाता है।

कुंआरी कन्यां से यारी, कु नृपति की सेवा करके।
कुमित्रों के संग में रह कर, पुण्य सब नष्ट भ्रष्ट करके॥
नरक में दुःख उठाते हैं, घूमते हैं धक्के खाते।
न्याय और नीती पर चलते, वहीं हैं जग में यश पाते॥

रावण—तूने कितना बड़ा अधर्म किया हैं जो अपने सहारा देने वाले का साथ छोड़ कर उन निर्धन वनवासियों की

सेवा की ! जिनके ऊपर तू इतना उछल रहा है उन्हें मैं एक चुटकी से पीस सकता हूं।

हनूमान—जिन्हें तुम बल हीन समझते हो वो तुम्हारे लिये काल हैं। यदि अब भी अपना भला चाहते हो तो जाओ रामके पैरों में गिरकर उनसे क्षमा मांगो। और सीताको लौटा दो।

रावण—ओ नहीं सुना जाता। इस दुष्ट की मौत निकट है। जाओ इसे मेरे सामने से ले जाओ। इसे नंगा करके सारे नगर में पागल की तरह से घुमाओ।

(सेवक लोग हनूमान को ले जाते हैं)

मेरे द्वारा पाला हुआ और मेरे लिये ये शब्द।

दूत—(भागा आकर) गजब होगया।

रावण—क्या हुआ ?

दूत—हनूमान सब बन्धन तुड़ा कर आकाश में उड गया लंका के सारे दरवाजे ढा दिये। आपका राज महल चूर २ कर दिया बन्दीखाना तोड़ कर सब कैदियों को छुड़ा लेगया।

रावण—कोई चिन्ता की बात नहीं, सब देखा जायगा।

बिभीषण—भाई साहब ! आप इस बात को अच्छी प्रकार जानते हैं कि जब तक आप नीती और न्याय पर चलते रहे आपकी कभी पराजय नहीं हुई। न्याय और नीती पर चलने

वालों की सदा जीत होती है। लंका इस समय आपत्ती में है। ये सब आपत्ती सीता के कारण हैं। आप मेरा कहा मान कर सीता लौटा दीजिये।

इन्द्रजीत—चाचा ! चाचा !! तुम जो कह रहे हो सिंहों के अखाड़े में रेह कर स्यार बन रहे हो। पृथ्वी के जितने रत्न हैं वो पिताजी के लिये हैं। सीता भी एक स्त्री रत्न है ! उसे लौटा दिया जाय ये असंभव है।

विभीषण—ओ दुष्ट इन्द्रजीत ! पुत्र कहला कर पिता का अहित सोचते हुये तुझे लज्जा नहीं आती। सुग्रीव विराधित महेन्द्र हनूमान भामंडल आदि सब उनकी सहायता के लिये तैय्यार हैं उन लोगों के सामने तेरा बाल भी नजर नहीं आयेगा ! वो न्याय मार्ग पर हैं उनकी अवश्य जीत होगी।

रावण—दुष्ट विभीषण ! उस बच्चे से लड़ते हुवे लज्जा नहीं आती ? मेरा भाई होकर मेरे शत्रू की मेरे सामने वडाई करता है ? ले मैं अभी तेरा जीवन समाप्त करता हूँ।

(रावण वार करता है। दोनों में युद्ध होता है। मन्त्री लोग बचाते हैं।)

मंत्री—महाराजाधिराज आपको ये उचित नहीं कि भाई को मारें, आप इन्हें बहुत करें तो अपने राज्य से निकाल दीजिये।

रावण—अच्छी बात है इस दुष्ट को मेरे राज्य से बाहर

निकाल दो ।

विभीषण—रावण ! अब तक मेरा तेरा भाई का नाता था किंतु अब शत्रू का नाता है । यदि तू रत्नश्रवा का पुत्र है तो मैं भी उसीका हूं । इस अपमान का बदला तुझे अच्छी तरह दूंगा तीस अक्षौहिणी सेना से राम को सहायता दूंगा । और तेरा सत्यानाश कर दूंगा । (चला जाता है ।)

मंत्री—महाराज ये बहुत बुरा हुआ ।

रावण—बहुत अच्छा हुआ । ऐसे विद्रोहियों को मैं अपने राज्य में नहीं रखना चाहता ।

पर्दा गिरता है

अंक द्वितिय—दृश्य सांतवां

(विभीषण एक दूत सहित आता है ।)

विभीषण—जिस समय किसी मनुष्य के विनाश की घड़ी आती है, तो उसकी बुद्धि पहले से ही पलट जाती है, लोग कहते हैं कि जिसका नमक खाना उसका अन्त तक साथ निभाना चाहिये । किंतु ऐसा कहना सर्वथा उचित नहीं है । यदि खास पिता भी हो, और वह अधर्म में चलता हो तो कदापि उसका साथ नहीं देना चाहिये । जो किसी भय से भी खोटे पुरुषों का साथ देते हैं वो अपने लिये नरक का सामान करते हैं । धार्मिक

पुरुषों की सहायता करना मनुष्य के लिये परम धर्म है । दूत ! तुम जाओ श्री रामचन्द्रजी से मेरा समाचार कहो । मैं तन मन धन से उनका साथ दूंगा ।

दूत—जो आज्ञा महाराज । (चला जाता है)

(विभीषण भी चला जाता है । पर्दा खुलता है ।)

(रामचन्द्रजी अपने सब मित्रों सहित बैठे हुये हैं ।)

सेवक— गाना

न्याय पर होजाओ बलिदान ।

न्याय मार्ग पर चलें पुरुष जो, सहते कष्ट महान ।
नहीं ध्यान दे बनते उन्नत, पाते हैं सम्मान ॥
न्याय मार्गका धारक रावण, करता है अन्याय ।
पर स्त्री को हर कर मूरख, बना बड़ा अज्ञान ॥न्या०॥
न्याय मार्ग पर युद्ध छिड़ेगा, शत्रू का संहार ।
न्याय मार्ग पर लड़ने वालों, का होगा यश गान ॥न्या०

हनूमान—(आकर) महाराजा रामचन्द्र की जय हो ।

राम—कहो मित्र क्या समाचार लाये ? सीता की क्या अवस्था है ।

राम—(चूड़ामणी को हृदय से लगाकर मूर्छित होजाते हैं

सब लोग उनका उपचार करते हैं ।) हा ! सीते तू कभी मुझसे अलग नहीं रही । इस समय तेरी क्या अवस्था होगी ।

लक्ष्मण—भाई साहब ! धैर्य धारण कीजिये । माता सीता को लाने का उपाय कीजिये ।

भामंडल—(आकर) श्रीरामचन्द्रजी को मेरा प्रणाम !

राम—(बड़े हर्ष से) प्रिय भामंडल ! आओ, आओ, मैं तुम्हारी ही बाट देखता था । (दोनों गले मिलते हैं)

भामंडल—प्रियवर मुझे सब वृत्तान्त मालूम होगया है । रावण को मैं इस पृथ्वी से मिटा दूंगा । अपनी बहन के बदले उसके प्राणों का दहन करूंगा ।

हा बहन, तुम किस प्रकार उस स्थान पर अपना जीवन चलाती होंगी ? तुम्हारे जैसी सती पर ये आपत्ती कहां से टूट पड़ी ।

दूत—(आकर) महाराज श्रीरामचन्द्रजी की जय हो । विभीषण का दूत आपसे मिलना चाहता है ।

राम—उसे मेरे समीप भेजो । (दूत जाता है)

लक्ष्मण—भाई साहब मुझे इसमें थोड़ा सन्देह मालुम होता है । कहीं विभीषण राजनीती तो नहीं चल रहा है । कहीं वो हमसे कपट तो नहीं करेगा ।

हनूमान—आप इस बात से निश्चिन्त रहिये। विभीषण धर्मात्मा पुरुष है। उसे रावण का व्यवहार पसन्द नहीं आया होगा इसी लिये वो न्याय मार्ग पर आपको सहायता देना चाहता है। मालूम होता है रावण ने उसका अपमान किया है।

दूत—(आकर) महाराज श्री रामचन्द्रजी की सब मित्रों सहित जय हो।

राम—कहो दूत! क्या समाचार लाये हो?

दूत—महाराज मैं विभीषण का दूत हूं। जिस समय विभीषण रावण को समझा रहे थे उस समय रावण को क्रोध आया विभीषण ने अपमानित होकर तीस अक्षौहिणी सेना लेकर आपको सहायता देने का संकल्प कर लिया है। क्योंकि वह समझते हैं कि यदि न्याय मार्ग पर हो और शत्रू भी हो तो उसका साथ देना चाहिये। आप संशय रहित होकर मुझे आज्ञा दीजिये। मैं उन्हें आपके सन्मुख लाऊं।

राम—अवश्य, मैं उनसे मिलने के लिये बहुत इच्छुक हूं।

दूत—मैं अभी उन्हें आपके पास भेजता हूं।

(चला जाता है)

सुग्रीव—मुझे निश्चय है कि हमारी युद्ध में अवश्य जीत होगी। क्योंकि प्रथम कारण तो हम न्याय पक्ष पर हैं। दूसरा

कारण जितने भी राजा लोग श्रीरामचन्द्रजी की शरण में आते हैं। सब से मित्रता का व्यवहार होता है।

विभीषण—(आकर) हे राम मुझे शरण दीजिये ?

राम—(उसको हृदय से लगा कर) मित्र विभीषण ! तुम्हारे भाई ने जो तुम्हारे साथ व्यवहार किया उससे मुझे दुःख होता है। किन्तु कोइ बात नहीं तुम धर्मात्मा हो। न्याय पक्ष पर हो। तुम्हारी अवश्य जीत होगी।

विभीषण—भाई का अपमान मेरे हृदय में खटक रहा है। मैं तीस अक्षौहिणी सेना से तुम्हें सहायता देकर उसका नाश कराउंगा। सीता वहां पर व्याकुल हो रही है। जल्दी से लंका पर चढ़ाई करके रावण को मार कर उसे बन्धन से छुड़ाइये।

पर्दा गिरता है

(साधू और ब्रह्मचारी आते हैं)

साधु—ब्र० जी मैं आपसे एक बात पूछता हूं।

ब्र०—अवश्य पूछिये।

सा०—रावण इतना बलवान था और सीता एक अबला थी रावण के सामने कुछ भी नहीं थी। रावण ने उस पर बलात्कार क्यों नहीं किया।

ब्र०—बड़े पुरुष अपनी प्रतिज्ञा के दृढ़ पालक होते हैं।

उसने एक केवली के सामने ये प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री उसे न चाहेगी, उसको वो बल पूर्वक अपनी अर्धांगिनी न बनायेगा। इसको दृढ़ता से पालने में ही उसने तीर्थंकर प्रकृति का बन्धकर लिया तीसरे चौथे भव से मोक्ष जायेगा।

स्वा०---अक्षौहिणी किसे कहते हैं ?

व्र०—जिस सेनामें इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ इतने ही हाथी एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास पियादे और पैंसठ हजार छै सौ दस घोड़े हों उसे एक अक्षौहिणी कहते हैं। ऐसी तीस अक्षौहिणी सेना लेकर विभीषण राम से आकर मिला था। रावण के पास चार हजार अक्षौहिणी सेना थी, रामके पास सब राजाओं को मिलाकर एक हजार अक्षौहिणी से अधिक नहीं थी, फिर भी युद्ध में राम की जीत हुई।

साधु—इसमें आप लक्ष्मण को मूर्छा आदि दिखायेंगे या नहीं ?

व्र०---हमारे पास इतना समय नहीं है। और न ही ये मूर्छा आदि कोई खास दिखाने की बातें हैं।

यदि हर एक बात देखनी है तो श्री पद्मपुराण नामक ग्रंथको पढ़ो जिससे हृदय के पट खुलकर उसमें ज्ञानका प्रकाश हो। ये अंक हमें युद्ध दिखाकर समाप्त करना है। दोनों सेनायें एक स्थान

पर, दोनों में घमासान युद्ध होरहा है। दोनों ओर के वीर लोग अपने प्राण दे रहे हैं। देखिये वो कैसा दृश्य है।

(दोनों चले जाते हैं।)

(पर्दा खुलता है। रण के बाजे बज रहे हैं। भांति भांति के शब्द हो रहे हैं। वीर लोग वीरों से भिड़ रहे हैं। रण में लड़ लड़ कर गिरते हैं। उन्हींके ऊपर होकर दूसरे युद्ध कर रहे हैं।)

ड्राप गिरता है

अंक तृतिय—दृश्य प्रथम

(अयोध्या में महलमें भरथजी सो रहे हैं। हनूमान और भामण्डल आते हैं।)

हनूमान—आधीरात के समय भरतजी सुख निद्रा में सो रहे हैं। यदि इनको जगायें तो कोपित होने का भय, नहीं जगायें तो उधर लक्ष्मण के प्राण जाते हैं। विशल्या बिना इनकी सहायता के नहीं मिल सकती।

भामण्डल—चाहे कुछ भी हो हमें भरथजी को जगाना पड़ेगा भरथजी बहुत सरल चित्त हैं वो कभी क्रोधित नहीं होंगे। देखो वो स्वयं ही जाग उठे।

भरथजी—कहो भाइयों आप लोग इस समय यहां पर

किस कारण से किस प्रकार आये ?

(आगे आ जाते हैं । पर्दा गिरता है ।)

दोनों—श्री भरथजी को हमारा नमस्कार ।

भामंडल—आप मुझे जानते होंगे, मैं भामण्डल हूं । ये हनुमान हैं । हम दोनों रामचन्द्रजी की सहायता कर रहे हैं । वहां पर रावण ने सीता को हरली थी, जिसके कारण युद्ध हो रहा है लक्ष्मण के रावण की शक्ति लगी है सो वो अचेत पड़े हुवे हैं । उन्हीं का समाचार देने हम आकाश मार्ग से आपके पास आये हैं ।

भरथ—शोक, शोक, महाशोक, आह रावण की इस प्रकार शक्ति बढ़ गई, कोई चिन्ता नहीं, मैं अभी अपनी सारी सेना लेकर आप लोगों के साथ चलता हूं और उसको उसकी धृष्टता का देता हूं फल ।

हनूमान—इस समय क्रोध करने से काम न चलेगा । सारी सेना लंका में पड़ी हुई है । हम लोगों की सेना ही उसके लिये काफी है । बीच में समुद्र होने से आपकी सेना वहां तक जा भी न पायेगी ।

भरथ—तो क्या करना चाहिये ? जिसमें भाई लक्ष्मणजी का हित होसके वो उपाय बताओ ।

भामंडल—आपके राज्य में विशल्या नामकी कन्या है । उसके स्नान का जल हमें दिलवा दीजिये । उसका छींटा लक्ष्मण

परे पड़ते ही वह उठ खड़े होंगे । ये काम अत्यन्त शीघ्रता से होना चाहिये, वरना सुबह होने पर उनकी कुशल नहीं है ।

भरथ—अच्छी बात है, उसके स्नान का जल नहीं, आप विशल्या को ही ले जाइये । निमित्तज्ञानी मुनि ने भी यही कहा था कि लक्ष्मण का विशल्या हित करेगी । और उन्हें वरेगी । सो आज वह बात सत्य होगी । चलिये मैं आप लोगोंके साथ विशल्या को भेजता हूं । (सब चले जाते हैं ।)

(पर्दा खुलता है । लक्ष्मणजी अचेत पड़े हुये हैं । उनके कलेजे में तीर लगा हुआ है । राम उनके पास बैठे विलाप कर रहे हैं । और सब लोग भी उनके इधर उधर बैठे हैं ।)

राम—हा भाई ! तुम किस प्रकार अचेत पड़े हो ? उठो क्या रावण को युद्ध में नहीं जीतोगे ? क्या सीता को उसके बंधन से नहीं छुड़ाओगे ? तुम्हारे बिना मैं किस प्रकार लोक में मुंह दिखाऊँगा ? जिस समय लोग कहेंगे कि राम ने स्त्री के कारण भाई को मरवा दिया उस समय मैं क्या उत्तर दूंगा ? सुमित्रा जब मुझे तुम्हारे बिना दिखेगी और तुम्हें पूछेगी तब उसे क्या उत्तर दूंगा ।

गाना

जगजा जगजा भाई मेरे,

तेरे बिन मैं तड़फ रहा हूं।
बोल सुनन को भटक रहा हूं॥
तेरे लिये मैं बिलख रहा हूं।
धीर बंधा जारे, जगजा जगजा भाई मेरे॥
शोक नहिं मोय राज तजे को।
शोक नहीं मोय सीय हरण को॥
शोक मुझे तव भूमी पड़न को।
धीर बंधा जारे, जगजा जगजा भाई मेरे॥

(हनूमान और भामण्डल विशल्या को लेकर आते हैं। विशल्या को देखते ही शक्ति बाण उनके उर स्थल से निकलकर आकाश की ओर जाती है। हनूमान दौड़कर उसे पकड़ता है)

हनूमान—बता तू कौन है ?

शक्ति—मैं अमोघ विजिया नामक शक्ती हूं। जिस रावण ने कैलाश उठाया था उसके बाद में उसने बड़ी भक्ती पूर्वक स्तुति की थी इस पर धरणेन्द्र ने प्रसन्न होकर मुझे रावण को सौंपी थी मैं जिसके लगती हूं। उसको जीता नहीं छोड़ती। इस विशल्या का महान पुण्य है। इसके सामने मैं नहीं ठहर सकती। अब

लक्ष्मण अच्छे होजायेंगे। मुझे छोड़ दो मैं अब तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ूंगी।

(ये आवाज ऊपर से होती है हनूमान बाण छोड़ देते हैं। ऊपर चला जाता है)

(विशल्या लक्ष्मण के पैर दबाती है। उनके पैरों को चन्दन मलती है। हनूमान उससे चन्दन का कटोरा लेकर सब के माथे पर लगाते हैं। रावण के भाई कुम्भकरण तथा पुत्र मेघनाथ और इन्द्रजीत भी लगाते हैं)

सुग्रीव—धन्य है, इस कन्या का पुण्य श्रेष्ठ है। इसके छुवे हुवे चन्दन से सबके शरीर घाव रहित होगये। हनूमान तुम बड़े क्षमावान हो, कुम्भकर्ण मेघनाद और इन्द्रजीत जो कि हमारे बंधन में हैं और शत्रू हैं उन्हें भी तुमने इससे अच्छा कर दिया।

(लक्ष्मण सचेत होकर उठते हैं। क्रोध से पुकारते हैं।)

लक्ष्मण—कहां है? कहां है? वह दुष्ट रावण कहां है? मेरे सामने आ। मैं तेरे प्राणों को लिये बिना न छोड़ूंगा।

राम—लक्ष्मण! लक्ष्मण! क्रोध न करो। रावण तो अपने कटक में है। वो यहां से तुम्हारे अचेत होते ही चला गया था। ये देखो विशल्या कुमारी खड़ी है इन्हीं के प्रताप से तुम्हारा जीवन बचा है।

(लक्ष्मण उसकी ओर देखकर मुसकराता हुआ नीचा सिर कर लेता है)

भामण्डलः—भरथजी ने कहा है कि विशल्या को लक्ष्मणजी से परणाना सो आप इन्हें स्वीकार कीजिये। ये भी आपके प्रेम की भूखी है।

लक्ष्मणः—मुझे स्वीकार है।

दूतः—(आकर) महाराजा रामचन्द्र की जय हो। यहां का समाचार लंका में रावण के पास पहुंचा। वहां से उसने सन्धी के लिये दूत भेजा है सो आप आज्ञा कीजिये तो मैं उसको यहां लाऊं।

रामचन्द्रः—अवश्य लावो। (दूत जाता है)

रावण का दूतः—(आकर) हे रामचन्द्रजी सुनिये! मेरे महाराज ने कहा है कि यदि तुम मुझसे लड़ोगे तो विजय नहीं पा सकते इस लिये सन्धी कर लेना उचित है। तुम मेरे भाई कुंभकर्ण पुत्र मेघनाद और इन्द्रजीत इन तीनों को छोड़ दो। सीता मुझे सौंप दो। मैं तुम्हें सारी पृथ्वी का राज्य देने को तैयार हूं। यहां तक कि लंकामें से भी आधी ले सकतेहो।

रामचन्द्रः—रावण से कहना कि राम को केवल सीता की चाह है। ये सब राज पाट तू अपने पास रख। सीता सहित मैं वन में रह कर ही अपना जीवन बिता दूंगा। मुझे कुछ आवश्यकता नहीं मैं उसके भाई और पुत्रों को भी छोड़ दूंगा।

दूतः—मालूम होता हे आप लोगों की मृत्यु निकट है!

जो रावण से लड़ाई करते हो। कहां वो सिंह और कहां तुम लोग भेड़ के बच्चे।

भामण्डल:—नहीं सहा जाता। जरा सी जबान और इतने बड़े बोल। ले अब तेरी मृत्यु निकट है। (शस्त्र उठाता है)

लक्ष्मण:—(रोक कर) अनर्थ! भामण्डल! तुम ये कैसा अनर्थ करते हो दूत कभी नहीं मारा जाता।

दूत बाल नारी अरु रोगी, पशु पक्षी सोता शरणागत।
आयुध रहित वृद्ध अरु साधु, इनको कभी न कीजे आहत॥

राम:—हे दूत! तू रावण से जाकर कहना कि अपनी खोटी बुद्धि छोड़ दे। सीता को लौटा कर अपने भाई और पुत्रों को छुड़ा ले।

दूत:—जैसी आज्ञा। (चला जाता है)

सुग्रीव:—इस दुष्ट दूत ने आकर सबके मन क्लेषित कर दिये! अब चित्त प्रसन्न करने के लिये किसी सेवक का गाना होना चाहिये।

दूत:—(भागा आकर) महाराज गजब हो गया।

लक्ष्मण:—क्या हुआ?

दूत:—रावण बहुरूपिणी विद्या साधने में उद्यत हुआ है। उसके सध जाने पर वह किसी से नहीं हार सकता शीघ्र ही कोई उपाय कीजिये।

लक्ष्मण:—भाई अंगद तुम जाकर ऐसा उपाय करो जिस से रावण को क्रोध उत्पन्न हो।

अंगद—जैसी आपकी आज्ञा।

लक्ष्मण—ये ध्यान रखना कि उसके शरीर को हाथ न लगाना। मन्दिर में किसी प्रकार कोई नुकसान न करना।

अंगद—आप निश्चिन्त रहिये।

पर्दा गिरता है

अंक तृतिय—दृश्य द्वितीय

(रावण और मंदोदरी आती है।)

रावण—प्रिये! मैं श्री शान्तिनाथ के मंदिरमें बहु रूपिणी विद्या साधने के लिये जाता हूं। तुम नगर का पूरा पूरा इन्तजाम करना।

मन्दोदरी—जो आप कहें सो ही मैं करने को तैयार हूं।

रावण—नगर के जितने मंदिर हैं सबको सजवाओ। सारे नगर में ढिंढोरा पिटवाओ कि सब लोग मंदिर में जाकर पूजन करें। चाहे जैसी आपत्तियां आवें किन्तु कोई भी शस्त्र न उठावें भले ही लंका नष्ट होजावे। परन्तु किसी के मनमें किसी प्रकार का क्रोध न आय। जो इसके विरुद्ध करेगा वह दण्ड का भागी होगा।

मन्दोदरी—प्राणनाथ ! यदि शत्रु सेना ने इन दिनों में लंका पर हमला करके मनुष्यों को मारा या लँका लूटी या उपद्रव मचाया तो ?

रावण—प्रिये ! तुम इस बातसे निश्चिन्त रहो। वो क्षत्री लोग हैं न्यायनिष्ठ और धर्मात्मा हैं, वो कभी निहत्तों पर वार नहीं करते। यदि कोई दुष्ट सेवक उनकी आज्ञा के बिना उपद्रव मचावे, तो भी उसे उपद्रव मचाने देना २४ दिन में मुझे विद्या सिद्ध होजायगी तब तक पूर्ण शांति रखना। तुम जाओ इसका प्रबन्ध करो। मैं मंदिर में जाता हूं।

(दोनो, दोनों ओर को चले जाते हैं)

(पर्दा खुलता है। रावण आता है। एक चौकी पर बैठ कर हाथ में माला लिये हुवे भगवान की प्रार्थना करके ध्यान लगा लेता है।)

प्रार्थना

कर्म मैल धोकर आतमसे, छोड़ा प्रभु इस जगका साथ
प्राप्त किया अविनाशी सुखको, जाय भये मुक्तीके नाथ॥
आतम की की सिद्धी तुमने, सिद्ध कहाये हे जगदीश।
कारज होवे पूरण मेरा, तुमको प्रभुजी नमाऊं शीश॥

(रावण ध्यान में मग्न है। अंगद आता है।)

अंगद्—यही है वो रावण। अहा, कैसा ढोंग बनाकर बैठा है, उधर तो दूसरों की नारियां चुराता फिरता है। और इधर भगवान का भक्त कहाना चाहता है। अन्याई कहीं के तुझे लाज नहीं आती। डूब नहीं मरता। (रावण निश्चल बैठा है) अच्छा मैं अभी दूसरा उपाय करता हूं।

(जाता है। मन्दोदरी को पकड़ कर लाता है। उसके केश पकड़ता है।)

मन्दोदरी—ओ दुष्ट पापी छोड़, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है

अंगद्—रावण ! देख तु श्रीराम की स्त्री सीता को हर कर लाया है। मैं मन्दोदरी सहित तेरी अठारह हजार रानियोंको हर कर ले जाता हूं। यदि बचा सकता है तो बचा ?

(मन्दोदरी को खींचता है)

मन्दोदरी—नाथ ! छुड़ाओ, इस दुष्टसे मुझे छुड़ाओ ? आपके सामने मेरी यह दशा। स्वामी ! स्वामी ! बचाओ, बचाओ, (रावण निश्चल बैठा है। अंगद मन्दोदरी को खींचता है)

अंगद्—चल, अब तुझे मेरे स्वामी की चाकर बनकर रहना पड़ेगा।

(बहुरूपिणी विद्या प्रगट होती है। उसे देखते ही अंगद मन्दोदरी को छोड़कर भाग जाता है।)

बहुरूपिणी विद्या—नाथ, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं बहु

रूपिणी विद्या आपके सामने खड़ी हूं । आपके निश्चल मनको देखकर मैं इतनी शीघ्र आपके वश में हुई हूं ।

रावण---ओं, शांति, शांति, तुम यदि मेरे वश में हुई हो तो जाओ जिस समय तुम्हें युद्धमें याद करूं तुम मुझे दर्शन देना।

विद्या—जो आज्ञा। (चली जाती है ।)

रावण—बस अब मैं किसीसे नहीं हार सकता।

मंदोदरी—नाथ आप तो विद्या साधनेमें लग रहे । सुग्रीव के बेटे अंगद ने मुझे नाना प्रकार के कष्ट दिये ।

रावण---कोई चिन्ता की बात नहीं, उसने कष्ट दिये मैंने उस समय अपने चित्तको संभालकर उस पर क्रोध नहीं किया इसी लिये मुझे इतनी शीघ्रता से विद्या सिद्ध हुई । तुम्हारे अपमान का बदला मैं उससे अवश्य लूंगा ।

मन्दोदरी—नाथ आप ये इतना सब कुछ क्यों कर रहे हैं ? आपके भाई और पुत्र पकड़े गये तो भी आप अपनी हठ क्यों नहीं छोड़ते ।

(पर्दा गिरता है । दोनों बाहर आ जाते हैं)

रावण—प्रिये ! इसमें मान अपमान का प्रश्न है । यदि भाई और पुत्र पकड़े गये तो क्या हुआ । मैं उन सब को छुड़ाऊंगा । राम पर अवश्य विजय पाऊंगा ।

मन्दोदरी—आपजो कर रहे हैं उसे मैं सब समझती हूं ।

जब सीता आपको नहीं चाहती तो आप क्यों उसे चाहते हैं? क्या मेरे में सीता से कम सुन्दरता और लावण्यता है। आप मेरा निरादर करके परनारी को क्यों चाहते हैं? आप कहें जैसा सुन्दर से सुन्दर शृंगार करके मैं आपके मन को रिझाऊं! आप को शत्रु का तनिक भी भय नहीं है। हनुमान जैसे बीर उनके साथ में हैं उसी दिन उसने कैसा उपद्रव मचाया था तुम्हारे सहायकों को उन्होंने पहले ही बन्धन में डाल रखा है।

रावण—मन्दोदरी चुप रहो। मेरे सामने मेरे शत्रू की बड़ाई न करो। तुम्हें मैं ने सीता का प्रबन्ध सौंपा है सो करो। यदि वो भी न कर सको तो सीता को मुझे सौंप दो।

मन्दोदरी—क्यों नहीं; आप मेरे अधिकार में से सीता को लेकर अपने मन की इच्छा पूर्ण करेंगे; इसी लिये न? आपके मैं पैर छूती हूँ आप ऐसा अनर्थ न कीजिये।

रावण—नहीं मैं सीता से अपनी इच्छा पूरी नहीं करूंगा। उसे राम को वापिस दूंगा। किन्तु अभी नहीं।

मन्दोदरी—तो और कब?

रावण—मैं जाकर उनके दल से युद्ध करुंगा। सिवाय राम लक्ष्मण के और सब अन्याई हैं। नमक हराम हैं। उन सब को युद्ध में मारुंगा। राम को जीता पकड़ कर उसे राज्य दूंगा और उसकी सीता उसे लौटा दूंगा।

मन्दोदरी—ये आपने बहुत अच्छा विचारा। आप युद्ध में जाइये और सीता पर अब कुदृष्टि न डालियेगा।

रावण—मैं युद्ध में जाता हूं। नगर में सारा प्रबन्ध तुम करना। जितने दिनों युद्ध होता रहे। दीनों और याचकों को उनके मन माफिक दान देना। सारी स्त्रियां अपने २ घरों में मंगल गावें। सुबह को सब मिल कर पूजन करें और युद्ध में जीत के लिये भगवान से प्रार्थना करें।

मन्दोदरी—जैसी आज्ञा। (दोनों चले जाते हैं)

अंक तृतिय—दृश्य तृतीय

युद्ध क्षेत्र

(युद्ध के बाजे बज रहे हैं। दोनों ओर घमासान युद्ध हो रहा है। युद्ध रुकता है बाजे बन्द होते हैं।)

राजामय—कहां है वो वानर वंशी। आज मैं उन्हें अपने बाणों से यमपुरी पहुंचाऊंगा।

हनूमान—अपने जमाई रावण के बल पर कूदने वाले दुष्ट आज तुम्हें मैं काल के घाट पठाऊंगा।

अगर तू प्राण चाहता है, तो छुप जाकर कहीं बनमें।
ये अंतिमकाल है तेरा, मरेगा आज तू रण में॥

राजामय—जरा से छोकरे ना बोल, बढ़कर बोल तू ऐसे।

सम्हलजा मेरे तुझ पर बाण चलते काल के जैसे ॥
(दोनों में युद्ध होता है, मय गिर पड़ता है)

हनूमान—बस दुष्ट मारा गया।

(रावण उसे उठाकर दूसरा धनुष देता है। फिर लड़ाई होती है, वो हनूमान को भगा देता है। सुग्रीव को भी भगा देता है विभीषण को भी भगा देता है)

मय—आओ ! मेरे सामने कौन कौन आता है।

राम—अभी तक तूने औरों से युद्ध किया अब मेरे वार सम्हाल इस वज्रावर्त धनुष के बाण को सम्हाल।

(राम उसे मारते हैं। रावण अगाड़ी आता है)

रावण—आये, मेरे सामने आये जिसकी युद्ध करने की इच्छा हो मुझसे युद्ध करे।

लक्ष्मण—आगया, आगया, अरसे से छिपा हुआ चोर मेरे सामने आगया आज तुझे दण्ड दिये बिना न छोडूंगा।

जिसे मैं ढूंढता था, आज मेरे सामने है वो।
निकल आया छुपा था, घोंसले में भाग करके जो ॥

रावण—न बढ़कर बोल ओ बच्चे, नजर लग जायगी तुझको।
तेरी मां बैठ रोयेगी, दया आती यही मुझको ॥

लक्ष्मण—बड़ा गजराज होता है, उसे सिंह मारता क्षण में।
बड़ी सेनाका भय कुछ भी, लखन लाता नहीं मनमें ॥

रावण—तू इतना मुंह चलाता है, नहीं डरता है मरने से।
अभी यमपुर को जायेगा, रखा क्या बात करने में ॥
(दोनों में युद्ध होता है, कोई भी नहीं हारता, युद्ध बन्द होता है रावण के हाथ में चक्र आता है रावण उस चक्र को लक्ष्मण के मारने के लिये फेंकता है। वह चक्र लक्ष्मण के तीन प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मण के हाथ में आजाता है।) .

सब—बोल चक्रवर्ती लक्ष्मण की जय।

लक्ष्मण—अभी तक तू मुनी वाक्य को झूंठ मानता था अब प्रत्यक्ष देखले। तू प्रतिनारायण है तो तुझे मारने के लिये नारायण तेरे सामने खड़ा है अब तक ये चक्र तेरे पास था किन्तु अब मेरे पास आगया है. तेरा शस्त्र तेरे ही प्राणों का घातक होगा।

रावण—(स्वगत) आह, निमित्तज्ञानी मुनिके वाक्य ठीक हुवे, मुझ प्रति वासुदेव अर्थात प्रति नारायण अर्थात अर्धचक्री की मृत्यु इनके हाथों से होगी मुझ दुष्टने मोह के वश में होकर सीता को हर कर अपनी मृत्यु आप बुलाई। अब किसी प्रकार भी मेरा जीवन नहीं है, विभीषण और मन्दोदरी ने मुझे समझाया। उसे भी न समझा। विभीषण! मन्दोदरी! क्षमा करना। भाई कुम्भकर्ण! पुत्र मेघनाथ! और इन्द्रजीत! क्षमा करना। मैं इस संसारमें कुछ ही समय के लिये जीवित हूं। मेरी मृत्यु मेरे सामने खड़ी है।

मेरे दुष्कर्मों का फल मुझे नरकों में जाकर मिलेगा।

लक्ष्मण—बोल क्या सोचता है ? यदि अब भी अपना जीवन चाहता है तो सीता लौटा दे। तू सुख पूर्वक राज्यकर वरना याद रख ये नारायण तेरे मारने के लिये खड़ा हुआ है। अब तक मैं साधारण मनुष्य था किंतु अब चक्र हाथ में आने से चक्रवर्ती कहलाता हूं।

रावण—ओ अभिमानी लक्ष्मण ! जरा से चक्रको पाकर तू क्यों इतना फूल रहा है. रावण तेरी इन गीदड़ भभकियों से डरने वाला नहीं, अपने मुंह से यदि तू नारायण वासुदेव और चक्रवर्ती बनता है तो बन. किंतु मैं तुझे कुछ नहीं समझता। तुझे चक्र मिल गया तो क्या हुआ। मेरी भुजायें ही चक्रों का काम करेंगी।

लक्ष्मण—ओ मान के पुतले ! ले सम्हल, यदि तेरी यही इच्छा है तो चक्र के वार को रोक।

(लक्ष्मण चक्र चलाते हैं। रावण के वह लगकर फिर लक्ष्मणके पास आजाता है, रावण पृथ्वी पर गिरकर मर जाता है। लोग जै बोलते हैं।)

विभीषण—(रोता है) आह, भाई भाई, मैंने तुम्हें कितना समझाया था तुमने एक न सुनी, लाखों को जीवन प्रदान करने

वाले आज निर्जीव पड़े हो। उठो, उठो, आप तो महलों में सोते थे, आज भूमी पर क्यों पड़े हो !

राम—विभीषण ! तुम इतने व्याकुल न होओ। धीर धरो इस पृथ्वी पर जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्य ही होती है, केवली के वाक्य झूंठे नहीं हो सकते। रावण की मृत्यु लक्ष्मण के हाथ से ही होनी थी। नारायण सदा से प्रति नारायण की मृत्यु का कारण होता है।

(इतने ही में मन्दोदरी रोती हुई आती है।)

मन्दोदरीः— प्राणनाथ ! मुझ अबला को छोड़ कर कहां चल दिये। आपने तो कहा था कि मैं युद्धसे जीत कर आऊंगा। अब ये आपकी क्या अवस्था हो रही है।

पर्दा गिरता है

अंक तृतिय—दृश्य चतुर्थ

(राम लक्ष्मण सब राजाओं सहित आते हैं।)

विभीषणः— लंका आपके अधिकार में है। आप जैसा चाहें इसे करें।

रामः— मित्र विभीषण ! तुम मेरे सामने अपने भाई और भतीजों को जो कि बन्धन में पड़े हुवे हैं लाओ। ताकि उन्हें मैं बन्धनमुक्त करूं।

विभीषण:—जैसी आज्ञा, (जाता है और लेकर आता है)

राम—कुम्भकरण, मेघनाथ, और इन्द्रजीत, आप लोग जानते हैं, कि रावण खोटे मार्ग पर था। दूसरे उसकी मृत्यु लक्ष्मण के हाथ से थी, उसे कोई रोक नहीं सकता था, अब जो हुवा सो हुआ, यदि तुम लोग बन्धन से छूटना चाहते हो और आनन्द सहित विभीषण सहित लंकाका राज्य करना चाहते होतो हमें मस्तक नमाओ।

कुम्भकरण—जैसा आप कहते हैं, हम लोग उससे सहमत हैं हम आपको मस्तक नमाते हैं। आज से हम आपके सेवक बनकर रहेंगे।

राम—विभीषण! इन्हें बंधन मुक्त कर दो।

(विभीषण उन्हें खोल देता है, मेघनाथ, और इन्द्रजीत उसके पैर छूते हैं। कुम्भकर्ण गले से मिलता है, फिर तीनों राम के और लक्ष्मण के पैर छूते है)

सब—बोल श्री राम लखन की जै।

हनूमान—महाराज! जिसके लिये आपने ये सब कुछ किया है उसकी चलकर सुध क्यों नहीं लेते? वो आपके विरह में व्याकुल हैं।

राम—आह, सीता! तुम मेरे विरह में कितेनी व्याकुल होंगी? मित्र विभीषण! सीता कहां है?

विभीषण—आप मेरे साथ आइये । मैं आपको उनसे मिलाऊंगा ।

(सब चले जाते हैं । पर्दा खुलता है । सीता विरह में गा रही है । सखी पास है ।)

सीता— गाना

सखी कब देंगे दर्शन राम ।

बिन दर्शन के तन मन व्याकुल, लगी मुझे है वाट

आओ प्यारे दरश दिखाओ, दो नैननि विश्राम ॥

सखी कब देंगे दर्शन राम ।

सखी—देख सखी ! वो सामने से तेरे पती श्री रामचन्द्रजी आ रहे हैं ।

सीता—कहां हैं ? कहां हैं ? मेरे प्राणनाथ कहां हैं ?

राम—सीते !

(सीता. राम से जाकर चिपट जाती है। सब उन्हों पर फूल बरसाते हैं। सीता राम की जय बुलती है, आकाश से देव लोग बाजे बजाते हैं।)

ड्राप गिरता है

चतुर्थ भाग समाप्त।

श्री जैन नाटकीय रामायण

भाग पंचम

अङ्क प्रथम—दृश्य प्रथम

(रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों मातायें और सुग्रीव आदि सब मित्र आते हैं। सीता और विशल्या भी साथ में हैं।)

रामचन्द्र—भाई भरतजी ! तुम इतने चिन्तित क्यों हो।

भरत—मुझे इस समय संसार रूपी रोग लगा हुआ है। मैं उससे मुक्त होने के लिये वैराग्य रूपी औषधी को सेवन करना चाहताहूं।

रामचन्द्र—जब देखो तब तुम वैराग्य ही वैराग्य करते हो। घर में तुम्हें क्या दुःख है ?

भरत—घर में मुझे वही दुःख है जो पिंजड़े में पड़े हुवे पक्षी को होता है। मैं इन दुःखों की खान ग्रह के झगड़े से छूटना चाहता हूं। अब तक आपके बचन से टिका हुआ था।

अब मैं घर में नहीं रह सकता। सारी सभा को मेरा अंतिम प्रणाम है। भरत अब वन में जारहा है। (चला जाता है)

केकई—पुत्र, पुत्र, ठहर, चला गया चला गया। मेरे नैनों का तारा चला गया। जिसके कारण मैंने इतने अपयश सहे वही अन्त में मुझे छोड़ कर चला गया। हाय अब मैं निपूती होगई।

(गिर पड़ती है)

रामचन्द्र--(उठा कर) माता, माता, आप ज्ञानवान हैं। भरत जी तो सच्चे मार्ग पर लग गये हैं। उनके धन्य भाग्य हैं जो उन्हों ने वैराग्य मार्ग में प्रवर्ती की। हमें वो अवसर कब प्राप्त होगा ?

लक्ष्मण—माता! आप शोक न करो। हमें अपना पुत्र समझो। हम तीनों आपकी सेवा में सदा उपस्थित हैं।

केकई—मैं महा मूर्ख हूँ जो शोक कर रही हूँ। ये मोह जीवों को दुखदाई है। ये स्त्री पर्याय बहुत दुखदाई है। मैं भी सब शोक छोड़ कर सारे भोग छोड़ कर आर्यिका बनूँगी। तप करके इस स्त्री पर्याय को मिटाउँगी। धन्य है, ये समय जिसमें मुझे वैराग्य उपजा। पुत्र राम, लक्ष्मण, शत्रुघन! तुम लोग हर्ष पूर्वक राज्य करो। मैं भी वन में जाती हूँ।

गाना

सब है ये झूठी माया ।
तू क्यों इस में भरमाया ॥
मानुष देह अती दुर्लभ है ।
पाकर धरम गमाया ॥
सब है ये झूठी माया । तू क्यों० ॥
ध्यान दिया तन पर ही तूने ।
आतम चित नहीं लाया ॥
सब है ये झूठी माया । तू क्यों०

(चली जाती है ।)

राम---आह, मैं कैसा अभागा हूं । मेरे आते ही अयोध्या से भाई और माता का वियोग होगया ।

सुग्रीव—महाराज ! आप शोक तजकर हमारी प्रार्थना के ऊपर ध्यान दीजिये ।

राम—कहो मित्र सुग्रीव ! तुम्हारे वचन मुझे सदा मान्य हैं ।

सुग्रीव---हम सब विद्याधर और भूमीगोचरी आपको अपना सम्राट बनाना चाहते हैं । आप अयोध्या का सिंहासन अपने चरण कमलों से सुशोभित करें । आप सर्व श्रेष्ठ पुरुषोत्तम हैं ।

राम—मैं इसके योग्य नहीं हूं। ये पद लक्ष्मण का है। लक्ष्मणजी नारायण हैं, सारे भरत खण्ड के चक्रवर्ती हैं। इन्हें ही सिंहासन पर बिठाइये।

लक्ष्मण—मैं नहीं. आप लोग हमारे छोटे भाई शत्रुघन को सिंहासन पर बैठावें।

शत्रुघन—ये मेरे लिये असंभव है। आप क्यों मेरी हंसी करते हैं। मैं तो आप लोगों के चरणों का सेवक हूँ।

रामचन्द्र—तो माताओं को सिंहासन पर बिठाइये।

कौशल्या—नहीं पुत्र ! ये सिंहासन तुम्हारे ही लिये है। तुम और लक्ष्मण दोनों मिल कर सिंहासन पर बैठो और शत्रुघन को अपना सहायक बनाओ।

हनूमान—इस बात से हम सब लोग सहमत हैं। आप चलिये। हम लोग आप दोनों का राज्याभिषेक करेंगे।

(सब चले जाते हैं।)

अँक प्रथम—दृश्य द्वितिय

कौमिक

(तीन भाई आते हैं।)

रामलाल—जब से पिताजी मरे हैं तब से मुझे तो पढ़ाई के लिये खर्चा तक मिलना बन्द होगया।

श्यामलाल---अब तू बहुत पढ़ चुका अब कहीं नौकरी की सूथ लगा ले ।

रामलाल---नहीं भाई मेरा तो हिस्सा बांट दो मैं तो अपनी दुकान खोलूंगा ।

गणेशलाल---कैसा हिस्सा ?

श्यामलाल---जो बापने छोड़ा उसमें का ।

गणेशलाल---उसमें तुम दोनों का क्या हक है । मरते वखत बाप मुझे ही सब कुछ सौंप गया है । तुम्हारा उसमें कुछ भी नहीं है ।

रामलाल---देखो तुम सबसे बड़े भाई हो तुम्हें ये करना ठीक नहीं । यदि पिताजी तुम्हें सब कुछ सौंप गये हैं तो हम भी तो सब कुछ में आगये । हमारी तुम परवरिश करो और जिस तरह से हम कहें करो ।

गणेशलाल---ओ छोकरे ! कालेज में पढ़कर तेरा दिमाग बिगड़ गया है । ये होशियारी और कहीं चलाना ।

श्यामलाल---तो क्या तुम हिस्सा नहीं बांटोगे ?

गणेशलाल---बिल्कुल नहीं ?

रामलाल---भाई श्यामलाल सारी आफत तो यही होगई कि बाप मर गया वरना उससे तो हम हिस्सा बंटवा ही लेते ।

गणेशलाल---याद रखना तुम दोनों को घर से बाहर

निकालूंगा, अगर रहना है तो सीधी तरह से रहो, जैसा मैं खाने को दूं खाओ पैरने को दूं पैरो।

श्यामलाल—(रामलाल के कान में) इस वखत ये इस तरह से बाज नहीं आयेगा, अब इससे मिलकर इसे किसी बहाने से जहर देकर मार दें। फिर सब धन हम दोनों आपस में बांटलेंगे।

रामलाल—तुमने बहुत अच्छा सोचा।

श्यामलाल—(प्रकट) अच्छा भाई साहब! आप हमारे बड़े भाई सहाब हैं। जैसे आप कहेंगे हम दोनों वैसे ही करेंगे।

गणेशलाल—अच्छी बात है। श्यामलाल! तुम माधवप्रशाद के पास तकाजे के लिये चले जाओ।

श्यामलाल—अच्छी बात है। (जाते जाते स्वगत कहता है) मेरा भी नाम श्यामलाल है तो श्याम नाग बनकर इन दोनों को बारी बारी से मारूंगा, और मजा उड़ाऊंगा। (चला जाता है)

गणेशलाल—रामलाल! तुम हीरालालजी के पास जाकर कहना कि आपने हमारा सामान अभी तक नहीं भेजा। अब मेरे साथ भेज दो।

रामलाल—अच्छी बात है। (जाते जाते स्वगत कहताहै) पहले तो श्यामलाल की सहायता से बड़े भाई गणेशलालको मारूंगा बाद में श्यामलाल को मार कर चैन की बंशी बजाऊंगा।

(चला जाता है।)

गणेशलाल—ओरी लल्लू की मां ! लल्लू की मां !! लल्लू की मां !!!

लल्लू की मा—आई, क्या है ? (आती है)

गणेशलाल—देख ये दोनों छोकरे माल पर नियत बिगाड़ रहे हैं, न मालूम किस वखत कौनसा झगड़ा खड़ा करदें इससे यही अच्छा है कि दोनों को जहर देकर मार दो।

लल्लू की मां—अजी लल्लू के लाला ऐसा क्यों करो। अपने भाइयों को आप ही मारो ?

गणेश—चुप गधी की बच्ची। जैसा मैं कहूं वैसा कर नहीं तो तुझे मार डालूंगा।

लल्लू की मां—अच्छी बात है। (चली जती है)

गणेश—आज मुझे दोनों का खातमा करना है।

(चला जाता है)

(श्यामलाल और रामलाल आते हैं)

श्यामलाल—कहो भाई अपना काम कर आये ?

रामलाल—हां पूरा कर आया। थोड़ा बाकी रहा सो मुझे भूख लग रही थी इस लिये छोड़ आया। भाभी ! ओ भाभी !

लल्लू की मां—आई, क्यों लाला क्या बात है ?

रामलाल—जाओ मेरे लिये और भाई साहब के लिये खाना ले आओ।

लल्लू की मां—अच्छी बात है लाती हूं।
(जाती है और खाना लेकर आती है उन दोनों के सामने रखती है रख कर चली जाती है रामलाल का दोस्त आता है)

दोस्त—(रामलाल ! मिस्टर रामलाल !!)

रामलाल—आया ! भाई सहाब मैं आकर खालूंगा अगर भाई साहब आवें तो उन्हें ये खुला देना। मैं बाजार में खालूंगा।
(चला जाता है)

गणेशलाल—(आकर) कहो रुपये ले आये।

श्यामलाल—कल को कह दिया है।

गणेशलाल—लिये खाना किसके ये रखा है।

श्यामलाल—आप ही के लिये भाभी रख गई है। खाइये।
(दोनों खाते हैं। खाते ही बेहोश होकर मर जाते हैं लोग आकर उन्हे उठाले जाते हैं)

अंक प्रथम—दृश्य तृतीय

(राज सभा में राम लक्ष्मण सिंहासन पर विराजमान हैं। और सब लोग यथास्थान बैठे हैं। सखियां आती हैं। नाच गाना होता है।)

नाच-गाना

गाओ गाओ सखी, राम राज में हां।
दिप रहे दोनों ही बैठे हैं सिंहासन ऊपर॥

हर्ष सब को है विराजे हैं सिंहासन ऊपर ।
नाचो नाचो सखी राम राज में हां ॥ गाओ०

सब लोग—बोल सम्राट राम लक्ष्मण की जै ।

राम— मित्रों ! आप लोगों ने मुझे जिस प्रकार सहायता दी है मेरे लिये अपना तन, मन, धन, न्योछावर किया है उसे मैं आजन्म नहीं भूल सकता । आप लोगों का मेरे ऊपर अत्यन्त भार है ।

हनूमान—श्रीमान हम किस योग्य थे । हमने तो न्याय का पक्ष लेकर अपना कर्तव्य पूर्ण किया हैं । हम लोग आपके आधीन हैं । आप हमारे सम्राट हैं । जो आज्ञा करें वो हमें स्वीकार है ।

राम—आप लोगों ने मुझे इतना सम्मान दिया है तो मैं जिस प्रकार कहूं आप लोग उस प्रकार कीजिये । मैं विभीषण को लंका का, सुग्रीव को किष्किन्धा का, हनूमान को श्रीनगर और हनूसद का, भामण्डल को रथनूपुर का, विराधित को नाग लोक समान अवंकारपुर का । नल नील को किःकंधूपुर का राज्य देता हूं । सो स्वीकार करो ।

सब—हम सबको स्वीकार है ।

राम—भाई शत्रुघन । तुम यदि चाहो तो आधी अयोध्या

लेलो । जो नगर तुम्हें पसन्द है वो मांगलो । मैं उसी का राज्य तुम्हें दूंगा ।

शत्रुघन—मुझे अयोध्या का या और किसी नगर का राज्य नहीं चाहिये मुझे आप मथुरा का राज्य दीजिये ।

लक्ष्मण—भाई तुम दूसरा कोई नगर मांगलो, उसमें राजा मधु राज्य करता है । वो बहुत बलवान है । उसका हमें भी भय है ।

शत्रुघन—बलवान है तो क्या हुआ । मैं उसे वहांसे हटा कर राज्य करूंगा, उसके मदको चूर करूंगा ।

राम—नहीं, मैं तुम्हें आज्ञा देने में हिचकता हूं क्योंकि तुम उसके सामने बच्चे हो, उससे नहीं जीत सकोगे ।

शत्रुघन—आप मुझे निःसंकोच होकर आज्ञा दीजिये । मैं यदि उसे युद्ध में न हराऊं तो राजा दशरथ और सुप्रभा का बेटा नहीं, आपके चरणों का सेवक नहीं । आप मेरे ऊपर विश्वास कीजिये । मैं अवश्य उसे हराकर मथुरा को अपने वश करूंगा ।

राम—अच्छा जाओ, किन्तु एक बात मेरी याद रखना जिस समय उसके पास उसका देवी त्रिशूल हो उस समय युद्ध नहीं करना ।

शत्रुघन—मैं आपकी आज्ञाको अन्त समय तक निभाऊंगा ।

लक्ष्मण—लो मेरा यह सागरावर्त धनुष लो, और युद्ध

करने के लिये जाओ, तुम कभी नहीं हार सकोगे।

शत्रुघन—(धनुष लेकर) आपके प्रशाद से ये आपका दास युद्ध में विजय प्राप्त करेगा। (चला जाता है।)

पर्दा गिरता है

अँक प्रथम—दृश्य चतुर्थ

(राम और सीता दोनों आते हैं)

सीता—प्राणनाथ ! आज अन्तिम रात्री में मुझे दो स्वप्न दीखे हैं। आप कृपाकर उनका फल बताइये।

राम—कहो प्रिय वो क्या स्वप्न हैं ?

सीता—पहले स्वप्न में मैंने दो अष्टापद जो अति सुन्दर बलवान और उत्कृष्ट तेज के धारक थे अपने मुंह में आते देखे।

राम—प्रिये ! इस स्वप्न का फल अति उत्तम है। तुम्हारे गर्भ में दो पुत्रों का आगमन हुआ है जो उत्कृष्ट बल तेज और रूप के धारक होंगे। दूसरा स्वप्न और कहो।

सीता—दूसरे स्वप्न में मैंने देखा कि मैं आपके साथ पुष्पक विमान में बैठी थी सो अचानक पवन के झोके से उसमें से गिर पड़ी। इतने ही में मेरी आंख खुली और प्रातः काल होगया।

राम—सुन्दरी ! ये स्वप्न अशुभ फल देने वाला है किंतु कोई चिन्ता न करो। दान धर्म के प्रभाव से अशुभ भी शुभ होजायगा।

सीता—देव ! मेरी इच्छा सिद्ध क्षेत्र आदि तीर्थों की वन्दना करने की है।

राम--देवी ! यह तुम्हारी अत्यन्त उत्तम इच्छा है। मालुम होता है तुम्हारे गर्भ में आये हुवे पुत्र मोक्षगामी होंगे। जिसके प्रभाव से तुम्हारे ऐसे भाव हो रहे हैं। मैं अवश्य ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा। तुम्हें सारे तीर्थों की वन्दना कराऊंगा।

सीता—आपका मेरे ऊपर अपार प्रेम है। आपने मेरे लिये कितने कष्ट सहे। मेरे जैसी भाग्य वाली दूसरी न होगी जिसका पति ऐसा पुरुषोत्तम हो।

राम—प्राणेश्वरी ! प्रेम प्रेम से ही उत्पन्न होता है। ये कोई बाजारू चीज नहीं है जो पैसा देकर मोल ली जा सके। जितना प्रेम तुम्हारा मुझ से है उतना ही मेरा भी तुम से है। तुमने मेरे बिना किस प्रकार कष्ट सहा सो मैं जानता हूं। पतिव्रता से जग को प्रेम होता है। पतिव्रता में एक आकर्षण होता है जो मनुष्य को अपनी ओर खींचता है।

सीता—नाथ ! ये सब तो आप ही की कृपा है। आप ही ने मुझे ये पाठ पढ़ाया है। मैं आपकी अर्धांगिनी हूं।

राम—प्रिये, जगत जिसे प्रेम कहता है वो प्रेम नहीं। किन्तु प्रेमाभास है। प्रेम उसे कहते हैं जिसका बंधन दृढ़ हो।

चाहे दूर रहे या पास रहें जिनका आपस में मन खिचता रहे० वो ही दो सच्चे प्रेमी हैं और वही पवित्र प्रेम है ।

गाना

सीता—प्रेम ही है जीवन आधार ।
बिना प्रेमके कठिन ग्रहस्थी, पले न ग्रहस्थाचार ॥
राम—बिना ग्रहस्थी धर्म नहींहै, ना हो मुनि अहार ॥प्रे०
सीता—प्रेम पती से नेहा लगाऊं ।
राम—प्रेम नगर में तुम्हें बसाऊं ॥
सीता—प्रेम से हो श्रृंगार ।
दोनों—प्रेम तन्तु में बंधकर दोनों, सेवें धर्माचार ॥
हां हां सेवें धर्माचार ॥
प्रेम ही है जीवन आधार ॥

(दो सखी आती है)

दोनों सखी—श्री महाराज पुरुषोत्तम और महारानी की जय हो ।

१ सखी—महाराजको राज दर्बारमें प्रजा स्मरणकर रही है।

राम—अच्छा तुम लोग सीता का मन बहलाओ मैं राज दर्बार में जाता हूं । (चले जाते हैं)

सीता—हैं, अचानक ही मेरी दाहिनी आंख क्यों फड़कने लगी।

२ सखी—महारानी जी कहिये हम आपकी क्या सेवा करें। हमारे आते ही आप व्याकुल क्यों हो गई?

सीता—सखी रात मैंने एक दुःस्वप्न देखा है। इस समय प्राणनाथके जाते ही मेरी दाहिनी आंख फड़कने लगी अवश्य इसमें कुछ रहस्य है। न मालूम अब फिर क्या दुख मिलने वाला है।

१ सखी—महारानीजी! आप शोक न कीजिये। चलिये उद्यान में चलिये। (सब चली जाती हैं)

अंक प्रथम—दृश्य पंचम

(दर्बार में प्रजा के लोग खड़े हुवे हैं। रामचन्द्रजी आते हैं। प्रजाजन उन्होंको शीश झुकाते हैं।)

राम—कहो भाइयों! क्या प्रार्थना लेकर आये हो? (सब चुप रहते हैं) कहो, कहो, तुम लोग निःसंकोच होकर जो कहना हो सो कहो; (फिर चुप रहते हैं) क्यों तुम लोग चुप क्यों हो। जिसकी शिकायत तुम्हें करनी हो। निर्भय होकर कहो। यहां पर इस समय तुमलोगोंके और मेरे सिवाय कोई नहीं है।

१ मनुष्य—महाराजाधिराज! आप हमें अभयदान दें तो हम कहें।

राम—मैं तुम्हें अभयदान देता हूं। तुम निःसंकोच होकर जो कहना है सो कहो।

१ मनुष्य—आज कल बड़ा अनर्थ मचा हुआ है। जो चाहे जिसकी स्त्री को हर ले जाता है। उस स्त्री का पति फिर उसे घर में रख लेता है। बड़े बड़े सामंत दीनों की स्त्रियां चुरा कर ले जाते हैं उनके साथमें कुचेष्टायें करते हैं। किंतु ये रवाज चल गया है कि पर पुरुष के घर में रही हुई स्त्री को भी लोग रख लेते हैं। वो कहते हैं कि जब पुरुषों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी ने ही रावण के घर में रही हुई सीता रखली तो हमें कौन रोक सकता है। यथा राजा तथा प्रजा। आप पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, धर्मात्मा हैं, न्यायवान हैं ऐसा उपाय कीजिये जिससे आपका ये अपयश दूर हो। और प्रजा में फैला हुआ अनर्थ मिट जाय।

राम—अच्छा तुम लोग जाओ। मैं इस बात पर विचार करूंगा।

सब—जो आज्ञा। (चले जाते हैं)

राम—(स्वगत) सीता रावण के यहां रह आई है। माना कि वह परम सती है किन्तु लोक में उसके रखने से मेरा अपयश फैल रहा है जब तक सीता को घर से नहीं निकाला जायगा तब तक यह अपयश मिट नहीं सकता।

किन्तु मैं सीता को कैसे निकालूंगा। जिसने मेरा समाचार

सुनने के लिये ग्यारह दिन तक उपवास किया था वो सीता मुझसे कैसे अलग होगी।

इधर सीता का प्रेम, उधर लोकापवाद। दोनों में कौनको छोडूं? इधर कुआ है उधर खाई है। किधर चलूं? दोनों ही मुझे संताप के देने वाले हैं। मैं जानता हूं कि सीता शुद्ध है किन्तु लोकापवाद से डरता हूं। यद्यपि शुद्ध है किन्तु लोक के विरुद्ध है तो न उसे करना चाहिये न उस पर चलना चाहिये। (आवाज देते हैं) कोई है?

द्वारपाल—(आकर) आज्ञा महाराज।

राम—जावो लक्ष्मण को शीघ्र बुला लाओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा (चला जाता है)

राम—लक्ष्मण से इसके लिये मैं सलाह लेता हूं। देखूं वह क्या कहता है।

लक्ष्मण—(आकर) भाई साहब के चरणों में सेवक का प्रणाम।

राम—लक्ष्मण! मैंने तुम्हें इस लिये बुलाया है कि अभी मेरे पास प्रजा के लोग आये थे। वो कहते थे कि मैंने जो रावण के यहां रही हुई सीता को घर में रख लिया सो भला नहीं किया इससे अनाचार की प्रवर्ती हो रही है। घर २ में हमारा अपवाद हो रहा है।

लक्ष्मण—जो सीता को दोष लगाते हैं और हमारा अपवाद करते हैं वो मूर्ख हैं। मैं अभी जाकर उन सबको दण्डदूंगा।

राम—नहीं लक्ष्मण! मारते हुवे के हाथ पकड़े जा सकते हैं किन्तु किसी की जिव्हा नहीं पकड़ी जा सकती। यदि हमारे भय से कोई हमारे मुंह पर नहीं कहेगा तो पीछे जरूर कहेगा। सीता को मैं अपने घर में नहीं रखुंगा।

लक्ष्मण—भाई साहब! सीता परम सती है। केवल लोकापवाद के भय से आप न तजियेगा।
वह सती आपके बिना किस प्रकार रहेगी?

राम—लक्ष्मण। यदि एक वस्तु शुद्ध है किन्तु लोग उसे बुरा कहते हैं तो उसे त्यागना ही उचित है। इस भगवान ऋषभदेव के कुल को दूषित न करूंगा। नारी नरक में ले जाने वाली है। इसके मोह में पड़ कर मैं अपयश नहीं कमाऊंगा।

लक्ष्मण—जो लोग धर्म सेवन करते हैं लोग उनकी निन्दा करते हैं उन्हें ढोंगी बताते हैं। लोग दिगम्बर साधुओं को बुरा बताते हैं। तो ये नहीं कि वह बुरे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि धर्म सेवन करना या साधुओं की वन्दना करना छोड़ दें।

राम—बस चुप रहो। मैं अधिक सुनना नहीं चाहता। मैं नारी के प्रेम से बढ़कर लोकापवाद को समझता हूं।

(द्वारपाल से) द्वारपाल ! जाओ सेनापति को बुलालाओ !

द्वारपाल—जो आज्ञा !

(चला जाता है। सेनापति आता है।)

सेनापति—श्री महाराजा रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी के चरणों में सेवक का प्रणाम। सेवक आज्ञा पालन करने को उपस्थित है।

राम—सेनापती ! जाओ सीता को रथ में बिठाकर ले जाओ उसें पहले सारे तीर्थों की बन्दना कराओ, पश्चात सिंहनादबन में अकेली छोड़ आना। जैसा मैंने कहा उसी प्रकार मेरी आज्ञा का पालन करना। नहीं तो दण्ड पाओगे।

सेनापति—जो आज्ञा। (चला जाता है)

पर्दा गिरता है

अँक प्रथम—दृश्य छठा

(राजा वज्रजंघ अपने सैनिकों सहित आता है।)

वज्रजंघ—मेरे बहादुर सैनिकों ! हमें यहां आये हुवे आज १ माह बीत गया। ओह, यह सिंहनाद बन कैसा भयानक है यहां पर मनुष्य नहीं आ सकता। हम लोगों ने कितने कष्ट सहते हुवे हाथियों को पकड़ा। अब कुछ ठहरकर फिर नगरको वापिस लौटना चाहिये।

१ सेनिक—महाराजाधिराज! मुझे तो यह बन बहुत पसंद आया है। यहां पर बहुत बड़ी ठंडक रहती है। खूब फल फूल खाने को मिलते हैं।

२ सेनिक—वाह वा, कैसा पसन्द आया। सबके साथमें हो, इसी लिये पसन्द आया है। जरा इकले रहकर देखो, कैसा आनन्द मिलता है। महाराजाधिराज इसे यहीं छोड़ चलो।

३ सेनिक—भाई अगर मुझे कोई रहने को कहें तो मैं तो चाहे मेरी जान चली जाय तो भी न रहूं। बाप रे बाप उस दिन वो कैसा भयानक सिंह था, मेरी तो देखते ही मय्या मर गई थी।

वज्रजंघ—और यदि तुमको यहांका राज्य दे दिया जायतो?

३ सेनिक—मुझे राज्य नहीं चाहिये। राज्य पुरुषों पर किया जाता है। यहां तो मनुष्य का नाम भी नहीं। शेर बघेरे मुझे एक ही दिन में मार खायेंगे। ना रे बाबा ना।

वज्रजंघ—अच्छा अब चलने की तैय्यारी करो।

(सब चले जाते हैं, पर्दा खुलता है। सीता और सेनापती दोनों खड़े हुवे हैं।)

सीता—अहा, आज मेरे धन्य भाग हैं। मैंने सारी यात्रायें समाप्त करली; क्यों सेनापती! ये कौनसा बन है? बड़ा भयानक है। यहां से हमारा नगर कितनी दूर है?

सेनापती—माता ये सिंहनाद नामा बन है। यहांसे नगर को जाने के लिये १ माह का रास्ता है। किन्तु.................

(रोने लगता है।)

सीता—सेनापती, सेनापती, तुम बात करते करते क्यों रोने लगे?

सेनापती—माता बात बताते हुवे मेरा कलेजा फटता है। मेरा मुंह रुकता है। आपको अब यहीं पर रहेना पड़ेगा।

सीता—क्यों सेनापती। मैंने ऐसा क्या अपराध किया। तुम शीघ्र रथको हांककर मुझे मेरे पतिसे मिलाओ।

सेनापती—माता सुनिये, रामचन्द्रजी के पास कुछ लोग इकट्ठे होकर आये थे कि आपने रावण के घर में रही हुई सीता को घर में रखली इससे लोक में अपवाद फैल रहा है। लक्ष्मणजी ने उन्हें बहुत समझाया कि आप गर्भ के भार से पीड़ित सीता को बनमें न भेजिये, किंतु उन्होंने लोकापवाद मिटाने के लिये आपको वनमें छोड़ने की आज्ञा दी है।

सीता—हैं! मैं ये क्या सुन रही हूं आह.................

(मूर्छित होती है।)

सेनापती—आह, चाकरी भी क्या बुरी चीज है। इसके आधीन मनुष्य को कैसे कैसे अकार्य करने पड़ते हैं। सीता जैसी सती को मैं नौकरी के वश होकर बनमें छोड़ रहा हूं। चाकर से

कूकर जो कुत्ता वो कहीं अच्छा है। वो स्वाधीनता पूर्वक गमन करता और आनन्द से रहता है। किंतु चाकर हमेशा पराधीन रहता है। माता! माता! उठो सावधान होओ। जब इस जीव के सुख के दिन आते हैं। तब सब इसके साथी बन जाते हैं किन्तु दुख में कोई भी साथ नहीं देता। आप ज्ञान वान हैं। पतिव्रताओं में श्रेष्ठ हैं। सम्यकदर्शन से सुशोभित हैं आप इतना शोक न किजिये। यहां पर रह कर धर्म सेवन कीजिये जिससे यह जीवन संसार बंधन से छूटता हैं।

सीता—(रोती हुई उठती हैं) हाय मेरा कैसा बुरा भाग्य है! प्राणनाथ! आप तो कहते थे कि मैं कभी तुम्हें अलग नहीं करूंगा। मेरा वह स्वप्न सच्चा हुआ। लोकपवाद रूपी झकोरे ने पुष्पक बिमान रूपी अयोध्या से मेरे पती के पास से मुझे मेरे भाग्य ने अलग कर दिया। मैं किसे दोष दूँ ये सब मेरे भाग्य का दोष है सेनापती! तुम जाओ मेरे पती से कहना कि जिस प्रकार लोकापवाद के भय से आपने मुझे तजी उसी प्रकार कहीं सम्यकदर्शन और अपनें धार्मिक श्रद्धा को न तजना मेरे तजने से आपको कुछ दिनों के लिये दुख होगा किंतु धर्म विश्वास तजने से भव भव में दुख उठाने पड़ेंगे।

गाना (मल्हार)

अरे हो बीरा रामजी सूं कहियो यूं बात ॥टेक॥

लोक निंद तै हमको छांडी, धरम न छांड़ो गात ॥१॥
पाप कमाये सो हम पाये, तुम खुशी रहो दिन रात ।
'द्यानत' सीता थिर मन कीनो, मंत्र जपै अवधात ॥२॥

सेनापती—आह, कर्मों की भी कैसी विचित्र गती है। जो ऐसी ऐसी श्रेष्ठ पतिव्रताओं को भी फल दिये बिना नहीं रहते। इन्हीं कर्मों को लोग भाग्य आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। किन्तु मैं माता को यहां इस निर्जन वन में किस प्रकार अकेली छोड़ दूं? नहीं कभी नहीं मैं इनकी रक्षा करुंगा। मैं यहीं रहूँगा।

सीता—सेनापती! तुम्हारी भक्ती से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। क्या करुं मेरा भाग्य ही मुझे धोखा दे रहा है। तुम जाओ अपनी ग्रहस्थी को संभालो। तुम मेरी सेवा कर सकते किन्तु मेरे भाग्य में लिखे हुवे दुख को नहीं मेट सकते हो। जाओ तुम मेरे लिये अधीर न होओ।

गाना।

करम ने जिसको सता रखा हो,
करम की ऐसी शिकार हूं मैं ॥
न जिसने पाया है सुख कभी भी,

हा ऐसी भूमि का भार हूं मैं ॥
नहीं सहारा है जिसका कोई,
जिसे पती ने अलग किया है।
हैं तार टूटे सभी ही जिसके,
अभागिनी वो सितार हूं मैं ॥
क्यों रुक रहे हो फिरो नगर को,
सुनाओ सब कुछ ये हाल मेरा।
क्यों मेरे कारण तुम रो रहे हो,
सभी दुखों की अधार हूं मैं ॥

सेनापती—माता ! दुखी न होओ। मैं जाता हूं। मेरा आखिरी प्रणाम स्वीकार हो। (चला जाता है)

सीता—चला गया, अब मैं इस बन में अकेली रहगई।

(रोती हुई गिर जाती है।)

वज्रजंघ—(आकर) हैं इस भयानक बन में ये कौन स्त्री व्याकुल चित्त पड़ी हुई है ? ये कोई महारानी मालूम होती है। या कोई देवांगना तो नहीं है ? यहां इस निर्जन बनमें ये कैसे आई। वो कौन निर्दई पुरुष है, जो इसे यहां छोड़कर चला गया (पास जाकर उसका उपचार करता है।) बहन, बहन, तुम यहां

किस लिये व्याकुल पड़ी हो।

सीता—कौन ? भाई भामण्डल, नहीं तुम कोई और हो, बताओ तुम कौन हो ?

वज्रजंघ—बहन ! मैं पुंडरीक नगर का राजा वज्रजंघ हूं। आप यहां पर किस प्रकार आई ? आप कौन हैं ?

सीता—मैं राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम की स्त्री सीता हूं, मैं महाराजा जनक की पुत्री और भामण्डल की बहन हूं। मुझे मेरे पती ने यहां छोड़ दिया है।

वज्रजंघ—तब तो तुम्हारे पती बड़े मूर्ख हैं जो उन्होंने तुम सरीखी जगत प्रसिद्ध सती को बन में छोड़ा। ये उन्होंने दुष्टता की।

सीता—बस, मुंह बन्द करो। मेरे सामने मेरे पती की बुराई न करो। उन्होंने जो कुछ किया सो भला किया। उन्होंने लोकापवाद के भय से मुझे यहां छुड़वाई है। इसमें उनका कोई दोष नहीं ये सब मेरे भाग्य का दोष है।

वज्रजंघ—बहन क्षमा करो तुम जैसी सती को धन्य है जो पती की इच्छा में ही अपना सौभाग्य समझती हो। तुम मेरी धर्म बहिन हो चलो मेरे नगर चलो। मैं तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने दूँगा।

सीता—भाई तुम बड़े कृपालू हो। तुम्हरी दया प्रशंस-

नीय है । चलो मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ । हे जिनेन्द्र देव ! ये तुम्हरी बन्दना का फल है जो मुझे एक दम दूसरा सहरा मिल गया वरना मैं इस बन में किस प्रकार जीवन व्यतीत करती । धर्म के प्रभाव से जो कष्ट आने होते हैं मन्द पड़ जाते हैं । भाई वज्रजंघ तुम्हें धन्य है जो तुमने मुझे इस प्रकार सहारा दिया ।

वज्रजंघ—बहन मैं किस योग्य हूं । सती की सेवा करना हमारा परम धर्म है ।

ड्राप गिरता है

अंक द्वितीय—दृश्य प्रथम

(अयोध्या में रामचन्द्र लक्ष्मण सहित सभा में बैठे हैं)

राम—आज अयोध्या में सब कुछ है किन्तु सीता नहीं । सीता के बिना स्वर्गसमान अयोध्या नीरस होरही है । मैंने सेनापती की आज्ञा की थी कि सिंहनाद बन में छोड़ आना वो उसे वहां छोड़ आया होगा । आह मेरे बिना वो किस प्रकार अपना जीवन बितायेगी ? वो गर्भ के भार से पीड़ित है न मालूम क्या क्या कष्ट सहने पड़ेंगे ।

सेनापती—(आकर) महाराजाधिराज की जय हो । मैं आज्ञा प्रमाण महारानीजी को सिंहनाद बन में छोड़ आया ।

राम—आह सेनापती ! तुम उसे छोड़ आये वह बन कैसा है?

सेनापती—न पूछिये महाराज ! वहां पर दिन रात अन्धकार है । स्थान स्थान पर सिंह गज सर्प आदि के भयानक शब्द सुनाई पड़ते हैं । सर्पों की फूंकार से वृक्ष काले पड़ गये हैं । आह, माता को वहां पर अत्यन्त कष्ट हो रहा होगा । वो गर्भ के भार से पीड़ित थीं ।

राम—आह, प्रिये तुमने कभी भी ऐसा कष्ट नहीं सहा । बनमें भी भय के मारे मुझसे अलग न होती थी । रावण के यहां भी तुम दासियों से घिरी रहती थीं । सेनापती ! क्या तुम सचमुच ही उसे ऐसे भयानक वन में छोड़ आये ?

सेनापती—महाराजाधिराज ! मैं आपकी आज्ञा का उलंघन नहीं कर सकता था मैं आज्ञाकारी सेवक हूं ।

राम—तब तो वो अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त हुई होगी । तुम्हारे आते समय उसने तुमसे क्या कहा था ।

सेनापती—उसने कहा था कि जिस प्रकार लोकापवाद के भय से आपने मुझे तजी कहीं इसी प्रकार धर्म के श्रद्धान को न तज देना । जिन धर्मियों की दूसरे लोग निन्दा करते हैं उससे डर कर कहीं जिन धर्म को न तज देना । मेरे तजने से तो क्षण मात्र ही दुख होगा । किन्तु धर्म तजने से भव भव में कष्ट उठाने पड़ेंगे ।

राम—हाय ! उस परम विवेकनी को लोकापवाद के भय से तज दी । आह सीते (मूर्छा सी आजाती है)

लक्ष्मण—भाई साहब ! आप शोक न कीजिये । माता परम शीलवती है । जो अपने धर्म में दृढ़ रहती हैं उन्हें कहीं भी कष्ट नहीं मिलता । अवश्य ही उस के पुण्य के प्रभाव से सुख मिला होगा ।

पर्दा गिरता है

अँक द्वितीय—दृश्य द्वितीय

(सीता और दोनों पुत्र आते हैं ।)

सीता—पुत्रों ! तुम ही मेरे जीवनका सहारा हो, तुम्हारे देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता , पुत्र अनंग लवण और मदनांकुश ! तुम दोनों मेरे दोनों नेत्र हो । अहा, तुम्हारी कैसी सुखद जोड़ी है । तुम चिरायु होवो, देखो बेटा तुम कभी शत्रु को पीठ न दिखाना । धर्म से चित्त को न हटाना ।

अनंगलवण—माता हम कभी आपके दूधको न लजायेंगे जिस युद्ध में जायेंगे जीतकर आयेंगे । हम क्षत्री हैं । हममें क्षत्रियों का खून है । भाई मदनांकुश ! आज हमारी इच्छा है कि किसी न किसी से युद्ध करें ।

मदनांकुश—भाई ! मैंने भी आज कुछ कुछ युद्धकी चर्चा

सुनी है। आशा है हमें भी शीघ्र ही युद्ध करने का अवसर प्राप्त होगा।

(बाहर से हल्ला होता है। एक दासी भागी आती है।)

सीता—क्या है? क्यों घबराई हुई आ रही हो?

दासी—महारानीजी! महाराजा ने आपके बड़े कुमार अनंगलवणजी को अपनी पुत्री लक्ष्मी बत्तीस अन्य कन्याओं सहित देनी विचारी है। उन्होंने मदनांकुशजी के लिये राजा प्रथुमती से उसकी कन्या मांगी थी सो उसने मनाकर दिया है कि जिनका कुल नहीं मालूम उन्हें मैं कन्या नहीं दे सकता इससे महाराजा अप्रसन्न होकर उसकी ओर सेना ले जा रहे हैं।

अनंगलवण—ओह! प्रथुमती का ये अभिमान, माता, माता, आज्ञा दो मैं अभी जाकर उसे बताता हूं कि हमारा क्या कुल है।

सीता—नहीं पुत्र तुम न जाओ। महाराजा वज्रजंघ अपने आप निबट लेंगे।

मदनांकुश—नहीं माता हम अवश्य जायेंगे। जब तक हम स्वयं जाकर उसे परास्त नहीं करेंगे। तब तक उसे हमारा कुल मालूम नहीं पड़ेगा।

सीता—पुत्र तुम इन कोमल हाथों से कैसे युद्ध करोगे। मेरे जीवन के तुम सहारे हो। तुम्हारे अन्य था होनेसे मेरे लिये

इस जगत में अन्धकार है ।

मदनांकुश—माता ! आप क्षत्राणी होकर ये कैसी बातें कर रही हैं आज्ञा दीजिये । छोटा सा सिंह का बच्चा बड़े बड़े गज राजों को नीचा दिखाता है ।

सीता—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो दोनों भाई जाओ युद्ध से विजय पाकर लौटो ।

(दोनों चले जाते हैं । सीता भी चली जाती है । पर्दा खुलता है । राजा वज्रजंघ का दर्बार)

वज्रजंघ—शीघ्र उसही दुष्ट पर सेना ले चलने की तैय्यारी करो । मैं उसे क्षण मात्र में हराकर उसकी पुत्री का विवाह मदनांकुश से करूंगा । अह ! वो कैसी योग्य जोड़ी है । जिसे देखकर इन्द्र भी लजाता है । ये बड़े भाग्यशाली बालक हैं । इनसे संबंध जोड़कर मैं अपने को धन्य समझूंगा ।

सैनिक—राजा पृथुमती बड़ा मूर्ख है जो इतने अच्छे वर को अपनी कन्या देने से मना करता है । वो अभिमानी है उसका मान हम लोग अवश्य भंग करेंगे ।

दोनों पुत्र—(आकर) मामा जी के चरणों में प्रणाम ।

वज्रजंघ—चिरंजीव हो पुत्र । इस समय मेरे पास आने का क्या कारण है ।

लवण—मामा जी ! मैंने सुना है कि राजा पृथुमती ने आपकी आज्ञा भंग की है। मैं उसका मान भंग करूंगा।

वज्रजंघ—पुत्र ! तुम युद्ध में न चलो। उसके लिये मैं काफी हूं। मेरे लड़के मेरे साथ चल रहे हैं तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। तुम दोनों माता के पास रह कर उसके नेत्रों को शान्ती दो।

अंकुश—मामाजी ? आप हमें युद्ध से न रोकिये। हम क्षत्री हैं हमें युद्ध में आनन्द प्राप्त होता है।

वज्रजंघ—यदि तुम्हारी उत्सुकता इतनी बढ़ी हुई है तो चलो। युद्ध में अपनी परिक्षा दो। (सब चले जाते हैं)

पर्दा गिरता है।

अंक द्वितीय—दृश्य तृतीय

(वज्रजंघ और पृथुमती आते हैं)

वज्रजंघ—बोल ओ अभिमानी राजा बोल, तू अपनी कन्या मदनांकुश को ब्याहता है या युद्ध में प्राण गंवाता है। सोच ले समझ ले वरना पीछे पछतायेगा मेरी आज्ञा भंग करने का फल पायगा।

पृथुमती—सब समझ लिया। तेरे जैसे कन्या को मांगने वाले मैंने बहुत देखे हैं। जा भाग जा वरना मेरे धनुष बाण के

आगे तू न टिक सकेगा । जिसके कुल का कुछ पता नहीं उसे पृथुमती अपनी कन्या नहीं दे सकता ।

अंकुश—(आ कर) क्या कहा ? ओ अभिमानी ठहर मैं आज मुंह से नहीं बाणों के द्वारा तुझे अपना कुल बताऊंगा ।

मेरे बाणों से तुझको, याद आजायेगा कुल मेरा ।
सम्हल कर युद्ध कर ले, देख क्या कहता धनुष मेरा ॥

पृथुमती—ओ नीच बालक ! इतना बढ़ कर न बोल । क्षत्रियों के सामने मुंह न खोल ये जबान तेरी खेल में चल सकती है युद्ध में नहीं ।

बच्चों की है खिलवाड़ नहीं, ये युद्ध क्षेत्र कहलाता है ।
प्राणों की भेंट चढ़े इसमें, जो ज्यादा बात बनाता है ॥
बच्चे जाकर के माता की, गोदी में दूध पियो थोड़ा ।
डरता हूं बालक हत्या से, जा भाग तुझे मैंने छोड़ा ॥

लवण—हम बाल नहीं हैं काल तेरे, हम रणमें तुझे हरायेंगे ।
है नीच कौन इसका परिचय, नीचा करके बतलायेंगे ॥
मामा की आज्ञा टाली है, इसका फल तुझे चखाऊंगा ।
किस कुल के बालक हैं, तुझको बाणों द्वारा बतलाऊंगा ॥

प्रथुमती—जा भागजा । क्या कभी मेंढकने भी पहाड़ को उठाया है । क्या बच्चों से युद्ध जीता जाता है ! जाओ मैं फिर

कहता हूं मेरे सामने न आओ, अपने प्राणोंकी कहीं रक्षा जाकर करो।

अंकुश—क्या युद्ध से डरते हो? युद्ध में बालक और बड़ का प्रश्न नहीं होता। आओ मुझसे युद्ध करो या अपनी कन्या को मेरे हाथ सौंपो।

प्रथुमती—फिर वही दिलको क्रोध उपजाने वाली बात। सम्हल जा, सम्हल जा।

अब तक मैं चुप खड़ा था, अब जोश आया मुझमें।
मुझको भी देखना है, कितना है तेज तुझमें॥

(पर्दा खुलता है। दोनोंमें युद्ध होता है अंकुश उसे गिरा देता है। गिराकर उससे पूंछता हैं।)

अंकुश—बता, बता, अब हमारा क्या कुछ है?

प्रथुमती—आह, छोड़दो, छोड़दो, क्षमा करो। तुम क्षत्री हो। मैं भूला हुआ था, मेरा अपराध क्षमा करो, मैं आपको शीश नवाता हूं। अपनी कन्या आपको अवश्य दूंगा।

अंकुश—(उसे छोड़कर ऊपर उठाकर) उठो मैं इतने से ही प्रसन्न हूं।

प्रथुमती—मैं बड़ा अपराधी हूं। आप शूरवीर क्षत्री धर्मात्मा और क्षमावान हैं। चलिये, मैं आपके साथ अपनी कन्याका विवाह करता हूं।

पर्दा गिरता है।

अंक द्वितीय—दृश्य चतुर्थ

(नारदजी अपनी वीणा बजाते हुवे आते हैं)

गाना

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जयजिनेन्द्र, जयजिनेन्द्र,

(थोड़ी देर गाकर इधर उधर देखकर आश्चर्य से) हैं, यह तो पुंडरीक नगर मालूम पड़ता है, यहां तो मैं वज्रजंघ के राज्य में आगया। अहा, ये भी नगर क्या ही सुन्दर है। (सामने देखकर) हैं, सामने से ये दो बालक कौन आ रहे हैं? इन्हें देख कर मुझे राम लक्ष्मण का धोखा होता है। अहा कैसी मनोग्य जोड़ी है। बिल्कुल इन्द्र सरीखे मालूम पड़ रहे हैं।

दोनों—(आकर) नारदजी के चरणों में प्रणाम।

नारद—चिरायु होवो पुत्रों! राम लक्ष्मण जैसी मान्यता श्रेष्ठता और वैभव को प्राप्त करो।

लवण—क्यों नारदजी! राम लक्ष्मण कौन हैं? कहां रहते हैं उन्होंने क्या श्रेष्ठता प्राप्त की है?

नारद—हा, हा, हा! पुत्रों तुम नादान हो। तुम्हें अभी मालूम नहीं सुनो मैं उनका तुम्हें प्रारम्भ से वृतांत सुनाता हूं।

अंकुश—सुनाइये महाराज बड़ी कृपा होगी।

नारद—इसी भरत क्षेत्र में एक अयोध्यापुरी है वहां पर राजा

दशरथ राज्य करते थे। उनकी चार रानियों से राम, लक्ष्मण भरत, शत्रुघन ये चार पुत्र उत्पन्न हुवे। राम ने धनुष चढ़ा कर सीता को ब्याहा। इस के पश्चात राजा दशरथ के वैराग्य के समय कैकई ने भरथ को राज्य दिलाया। राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये। वहां पर रावण सीता को हर कर ले गया। लक्ष्मण ने अनेक विद्याधरों और भूमि गोचरियों की सहायता से रावण को मारा और सीताको वापिस अयोध्या लाये और सिंहासन पर बैठे। भरथजी ने सन्यास धारण किया और मुक्ती प्राप्त की। लोकापवाद के भय से राम, जिन्हें बलभद्र पद्म पुरुषोत्तम आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। उन्होंने सीता को बन में छुड़वा दिया। लक्ष्मण ने जिन्हें नारायण वासुदेव आदि नामों से पुकारते हैं बहुत मना किया किन्तु न माने। हाय बेचारी सीता न मालुम अब कहां फिरती होगी।

लवण—नारदजी! तब तो राम ने बहुत बुरा किया। बेचारी निर्दोष अबला को लोकापवाद के भय से घर से बाहर निकाल दिया। मैं अवश्य अयोध्या को अपनी सेना लेकर जाऊंगा। और उन्होंने जो ये न्याय विरुद्ध काम किया है। इस का उन्हें दण्ड दूंगा।

नारद—नहीं पुत्र! ऐसा न करना। वो बलभद्र नारायण हैं। उनके आगे कोई नहीं जीत सकता।

लवण—अंकुश ! तुम जाओ । जाकर वज्रजंघजी से ! कहो कि सारी सेना तय्यार होजाय । हम लोग अयोध्या पर चढ़ाई करेंगे ।

अंकुश—जो आज्ञा । (चला जाता है ।)

लवण—नारदजी ! आप कृपा करके मेरी माता के पास चलिये ।

नारद—जरूर, कहां हैं तुम्हारी माताजी ?

लवण—चलिये इसी सामने वाले राज महल में हैं ।

नारद—अच्छा तुम चलो मैं सामायिक से निवटकर अभी आता हूं तुम्हारी माता से मैं अवश्य भेंट करूंगा ।

लवण—जैसी इच्छा । (दोनों चले जाते हैं ।)

(पर्दा खुलता है । सीता बैठी हुई है ।)

गाना

प्राणों के नाथ ने मुझे, आहे युंही भुला दिया ।
रंजमें अपने रात दिन, मुझको युं ही घुला दिया ॥
भूलथी मुझसे क्या हुई, मैंने तो कष्ट थे सहे ।
राक्षशाने हर के हायरे, दुखिया मुझे बना दिया ॥

लवण—(आकर) माताजी ! आप क्यों रो रही हैं ? मैं आपको एक हर्ष समाचार सुनाने आया हूं ।

सीता—कहो पुत्र वह क्या समाचार है ?

लवण—माताजी ! अयोध्यामें कोई राम और लक्ष्मण नाम के दो राजा रहते हैं। राम ने लोकापवाद के भय से अपनी स्त्री सती सीता को निकाल दिया। देखिये मानाजी उसने कितना मूर्खता का काम किया। मैं उसे इसकी सजा देनेके लिये अयोध्या को सेना लेकर जाउंगा।

सीता—पुत्र ! तुम्हें ये कैसे मालुम पड़ा ?

लवण—माता ! ये मुझे नारदजी ने कहा।

सीता—पुत्र ! जिनके ऊपर तुम सेना ले जा रहे हो वो तुम्हारे पिता हैं। वो मैं ही हूं जिसको उन्होंने वन में निकाला है।

लवण—क्या सचमुच माता जी आप ही का नाम सीता है ? तब तो हम बड़े भाग्य शाली हैं। जो हमारे ऐसे जगत प्रसिद्ध पुरुषों में श्रेष्ठ पिता हैं।

सीता—पुत्र ! तुम अयोध्या जाकर अपने पिता के चरणों में शीश नवाओ। उनसे युद्ध न करना। यदि उनकी हार हुई तो भी मुझे दुःख होगा और तुम्हारी हार हुई तो भी मुझे दुःख होगा।

लवण—माता जी ! मैं अयोध्या जाकर उनसे युद्ध अवश्य करूंगा। किन्तु उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचने दूंगा।

मैं बचा बचाकर वार करुंगा। वो मेरे ऊपर वार करेंगे उनको मैं रोकूँगा। उनकी शक्तियां मेरे ऊपर निष्फल होंगी क्यों कि मैं उनका पुत्र हूँ। पिता के शस्त्र से पुत्र की मृत्यु नहीं होगी।

(चला जाता है)

नारद—(आकर) हैं ये कौन ? सीता, मेरी आंखों को धोखा तो नहीं हो रहा है।

सीता—मुनिश्वर प्रणाम। मैं आपकी चरण सेविका सीता ही हूं। मुझे वज्रजंघ सिंहनाद बन में से ले आया है।

नारद—क्या ये दोनों पुत्र तुम्हारें ही हैं ? मेरा अनुमान ठीक निकला।

सीता—नारदजी ! आपने इन्हें कथा सुना कर वृथा कोप उपजा दिया। अब ये अयोध्या में पिता और चाचा से लड़ने जा रहे हैं।

नारद—सती जो कुछ भी होता है वो अच्छे के लिये ही होता है। तुम कोई चिंता न करो। इन्हें जाने दो, तुम्हारा भाई भामण्डल तुम्हें देखने को तड़फ रहा है। मैं जाता हूं और उसे तुमसे मिलाता हूं। (चले जाते हैं)

सीता—हाय ! मैं कैसी अभागिनी हूं। मेरे ही कारण पिता पुत्र में युद्ध होगा। हे आकाश मण्डल के देवताओं तुम मेरे पति देवर और पुत्रों की रक्षा करना।

पर्दा गिरता है।

अँक द्वितीय—दृश्य पंचम

(नारद और भामण्डल आते हैं।)

भामण्डल—कहिये नारदजी, इस समय आपका कैसे आना हुआ ?

नारद—भामण्डल ! मैं तुम्हें एक हर्ष समाचार सुनाने आया हूं।

भामण्डल—कृपा कीजिये मुनिवर।

नारद—तुम्हारी बहन सीता की खोज..... ....

भामण्डल—सीता की खोज मिलगई ?

नारद—हां मिलगई।

भामण्डल—कहां है ? मेरी प्यारी बहन कहां है? जीवित है या नहीं।

नारद—तुम्हारी बहन पुण्डरीक नगर में राजा वज्रजंघ के यहां सुख पूर्वक रह रही है। वहीं पर उसने दो पुत्रोंका प्रसव किया है। वो दोनों पुत्र अनन्त बलके धारक कांतिवान और धर्मात्मा हैं। वो वहां से राम लक्ष्मण से युद्ध करने के लिये आ रहे हैं।

भामण्डल—मुझे ये सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ। चलिये मुझे पहले पुण्डरीक नगर ले चलिये। मैं अपनी बहनसे मिलने के लिये अत्यन्त व्याकुल होरहाहूं। पुत्रोंका जन्म कौनसे दिन हुआ था।

नारद—पुत्रों के युगल ने श्रावण सुदी पूर्णमासी को जन्म लिया था, वो दोनों सूर्य चन्द्र सरीखे देदीप्यमान हैं।

भामंडल—तो चलिये, मुझे मेरी बहन और भानजों से मिलाइये ?

नारद—भामण्डल! पहले इसका प्रबन्ध करना चाहिये कि युद्ध में किसी के चोट न आवे।

भामण्डल—नारद जी! आप ही बताइये मैं क्या करूं?

नारद—तुम रामचन्द्र के सारे सहायकों को ये सूचित करदो कि ये सीता के पुत्र हैं। वो कोई इन पर वार न करें। लवण और अंकुश ने ये वचन दे दिया है कि हम बचाकर वार करेंगे। राम लक्ष्मण के बाणों का उन पर असर नहीं होगा उनके चक्रों का भी असर इन पर नहीं होगा क्यों कि ये उनके अंग हैं।

भामंडल—जैसी आज्ञा, चलिये मैं अभी सबके पास समाचार भेजे देता हूं। किन्तु पिता पुत्र में युद्ध होगा ये ठीक नहीं।

नारद—इसमें कोई हर्ज नहीं है। राम लक्ष्मण को इनके बल का पता चल जायगा। बाद में मैं अपने आप सबको मिला दूँगा।

भामंडल—तो चलिये। (दोनों चले जाते हैं)

(पर्दा खुलता है। सीता बैठी हैं)

सीता—आज मेरा बांया नेत्र फड़क रहा है। चित्त में अन्दर ही अंदर खुशी की लहर उठ रही है। आज अवश्य किसी प्रिय बंधु का मिलन होगा। याद आया, नारदजी भाई भामण्डल को लाने के लिये कह गये थे। आज मेरा भाई का मिलन होगा।

(आवाज देती है) अचला ! अचला !!

अचला—क्या सेवा है महारानीजी ?

सीता—जा, भोजनालय में कह कि नाना प्रकार के पकवान बनाये जांय और नारदजीके लिये अलग शुद्ध आहार बनाया जाय।

अचला—जाती हूँ देवी जी (चलने लगती है)

सीता—अरी और सुन।

अचला—कहिये;

सीता—जा चार पांच हार ले आ और तांबूल लेआ आज मेरा भाई मुझ से मिलने आ रहा है।

अचला—जो आज्ञा। (चलने लगती है)

सीता—अरी और सुन तू तो भागी जाती है।

अचला—आज्ञा कीजिये।

सीता—तुझे जरा भी खयाल नहीं; मेरा भाई आ रहा है। उसके लिये तू सुंदर आसन बिछा। एक आसन नारद जी के लिये बिछा ;

(दासी चली जाती है दो आसन लाकर बिछाती है एक खाली लकड़ी का और एक मखमलका। फिर मालायें और तांबूल लाती है इतनेमें ही भामण्डल और नारदजी आ जाते हैं। दोनों भाई बहन गले मिल कर रोते हैं।)

नारद—भामण्डल, सीता, रोओ नहीं, हर्ष मनाओ !

सीता—नारदजी ये हर्ष के आंसू हैं, भाई भामण्डल मुझे तुम्हें देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। जिसे मैं मुंहसे नहीं कह सकती।

भामण्डल—बहन! मुझे बड़ा दुख है कि मैं तुम्हारे दुःख में कुछ भी हाथ न बटा सका। तुम्हें कुछ भी सहारा न लगा सका। मुझको इस बात का हर्ष है कि तुम जीवित रहीं और मैं तुमसे मिला।

सीता—भाई भामण्डल! यदि मनुष्य जीवित रहते हैं तो कभी न कभी मिल ही जाते हैं। यदि मैं सिंहनाद बनमें ही मर जाती तो तुम मुझे कहां खोजते। आओ बैठो। नारदजी आप भी बिराजिये।

(नारदजी और भामण्डल यथा स्थान पर बैठ जाते हैं। सीता दोनों के गले में फूल माल डालती है, भाई को पान खुलाती है।)

भामंडल—सीता, तुम कितनी दुर्बल होगई। वज्रजंघ के हम लोग बड़े आभारी हैं जिसने तुम्हें आश्रय दिया। चलो अब तुम अयोध्या लौट चलो। रामचन्द्रजी तुम्हारे बिना रात दिन व्याकुल रहते हैं।

सीता—नहीं भाई, उन्होंने मुझे निकाल दी है। जब तक वो स्वयं मुझे न बुलायेंगे, मैं न जाऊंगी।

नारद—तुम दोनों बहन और भाई यहां पर रहो मैं अयोध्या जाता हूं जाकर युद्ध रोकता हूं। (चले जाते हैं।)

सीता—भाई! दोनों पुत्र हठ करके अयोध्याको पिता और चाचा से लड़ने चले गये हैं।

भामण्डल—बहन मुझे दोनों पुत्रों की सुनकर बहुत हर्ष हुआ। मैं उन्हें देखना चाहता हूं। चलो विमान में बैठ चलो तुम भी अपने पुत्रोंका पराक्रम देखना। और मैं भी देखूंगा। विमान को ऐसे स्थान पर रोकलेंगे जिससे तुम सबको देख सको, तुम्हें कोई न देख सके।

सीता—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो चलो और शीघ्र ही उन्हें देखकर लौट आयेंगे।

पर्दा गिरता है।

अंक द्वितीय—दृश्य छठा

स्थान युद्ध क्षेत्र

(युद्ध के बाजे बज रहे हैं। दोनों ओर की सेनायें लड रही हैं, राम लक्ष्मण और लवण अंकुश चारों ही आमने सामने लड़ रहे हैं। नारदजी आते हैं।)

नारद—बस बन्द करो, ये युद्ध का बाजा। युद्ध रोकदो। रामचन्द्र ! पहचानो, ये तुम्हारे पुत्र हैं। इन पर तुम्हारी शक्तियां नहीं चल सकतीं।

(दोनों रामचन्द्र के चरणों में जाकर प्रणाम करते हैं।)

रामचन्द्र—धन्य भाग मेरे जो ऐसे पुत्र पाये।

(सब लोग जय जयकार करते हैं। आकाश से पुष्प वर्षा होती है। सुन्दर बाजे बजते हैं। एक ओर राम खड़े हैं एक ओर लक्ष्मण, बीच में दोनों पुत्र हैं। सब राजा लोग इधर उधर खड़े हुवे हैं। सबके बीच में नारदजी खड़े हैं।)

ड्राप गिरता है

द्वितीय अंक समाप्त।

अँक तृतीय—दृश्य प्रथम

(राज दर्बार में राम, लक्ष्मण, लव, कुश और सब राजा लोग उपस्थित हैं)

सखियों का नाच गाना

आओ री सखी नाचें गावें आज सभी।
राम औ लखन लवकुश मिले हैं सभी॥
पुत्रोंका है संगम हुआ, इनको मुबारिक बाद है।

खुश हुवे सबके हृदय, इनको मुबारिकबाद है ॥
आओ री सखी नाचें गावें आज सभी।

लक्ष्मण—भाई साहब ! अब तक आप कहते थे कि कोई सीता का पता बताये तो मैं उसे बुलाऊं, अब आपको पता मिल गया। शीघ्र ही अपने समीप बुलाइये।

राम—जिसे मैं एक बार अलग कर चुका उसे नहीं बुला सकता चाहे उसके विरह में मेरे प्राण ही क्यों न चले जायं।

सुग्रीव—महाराजाधिराज, आपको यह करना उचित नहीं सीता निर्दोष है ये आपके पुत्रों के बल और तेज को देखकर सिद्ध होगया। वह आपके विरह में सूखकर कांटा हो रही है। उसे बराबर आप से मिलने की आशा बनी रहती है।

राम—यह सत्य है किन्तु मैं लोकापवाद से डरता हूं लोग कहेंगे कि राम से सीता बिना न रहा गया। सीता को एक बार निकालकर फिर घर में रखली।

सुग्रीव—महाराज, आप इस बातसे निश्चिन्त रहिये। इस समय सारी प्रजा सीता की बाट देख रही है। आप शीघ्र ही हमें आज्ञा दीजिये। हम पुष्पक विमान में सीता को बिठाकर अयोध्या ले आवें।

राम—यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो जाओ उसे मेरे समीप ले लाओ।

सुग्रीव—जो आज्ञा । (चला जाता है)

राम—मित्र हनुमान ! विभीषण ! विराधित ! आप लोग भी सुग्रीव के साथ जाकर सीता को ले आओ ।

हनूमान—जो आज्ञा । (तीनों चले जाते हैं)

अँक तृतीय—दृश्य द्वितीय

(साधु और ब्रह्मचारी आते हैं)

ब्रह्मचारी—कहिये साधू महाराज कुछ देखा ? अब तो बहुत दिनो बाद दर्शन हुवे ।

साधु—मैंने सब कुछ देख लिया । और समझ लिया अभी तक मैं जैनियों को नास्तिक समझता था । किन्तु अब मेरे ध्यान में आगया । जितनी बातें तुम्हारे शास्त्रों में भरी पड़ी हैं उतनी हमारे शास्त्रों में कहीं भी नहीं हैं । तुम्हारे यहां जो कुछ है वो पूर्वापर विरोध रहित है । उसमें कहीं विरोध नहीं आ सकता ।

ब्र०—फिर भी बड़े दुःख की बात है कि हठी पुरुष अपनी हठ को नहीं छोड़ते । जैसा उन्होंने सुन लिया वैसा ही कहने लग जाते हैं । ये नहीं समझते कि इसमें कहां तक झूठ और कहां तक सत्य हो सकता है ।

सा०—सत्य है इसीसे आज हम लोगों का पतन हो रहा

है। हमारी आत्माओं से पर्वतों को हिला देने वाली शक्तियां निकल चुकी हैं। आप एक बात तो बताइये ?

ब्र०—पूछिये ।

सा०—ज्ञान प्राप्त करने का और ये जानने का कि आज कल जो प्रचलित है वो कहां तक झूँठ है और कहां तक सत्य है, इसका क्या उपाय है। पुराने वाक्य कहां तक कपोल कल्पित हैं कहां तक ठीक हैं ये कैसे जाना जा सकता है ।

ब्र०—ये सब बातें जैन शास्त्रों को पढ़ने से मिल सकती हैं जितनी प्रचलित कथायें हैं उनमें सबमें थोड़ा २ सत्य है। पूर्ण सत्यता जैन शास्त्रों और जैन पुराणों के पढ़ने से ही मालूम पड़ सकती है।

सा०—किंतु आपके यहां तो बहुत पुराण हैं। खास खास पुराण कौनसी हैं सो बताइये।

ब्र०—वैसे तो सभी खास खास हैं। किंतु उनमें भी आदिपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, पांडवपुराण, प्रद्युम्नचरित्र, पार्श्वपुराण और महावीर पुराण ये विशेष पढ़ने योग्य हैं।

सा०—इनमें क्या क्या विषय हैं ?

ब्र०—आदि पुराण से यह ज्ञात होता है कि सृष्टी की रचना किस प्रकार हुई है। वर्ण व्यवस्था कब प्रारंभ हुई। ये ढोंगी साधू कैसे बने, इत्यादि। पद्मपुराण का वृतान्त नाटक

द्वारा बतला ही दिया है। हरिवंशपुराण में श्रीकृष्ण का जरासिंधु आदि का पूर्ण वृतांत है। पांडवपुराण से पांडवों का सच्चा हाल मालूम पड़ता है। प्रद्युम्न चरित्र में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार का बड़ा मनोज्ञ चरित्र है, पार्श्वपुराण और महावीर पुराण में चतुर्थकाल के अन्त का सारा वृत्तांत है, इन पुराणों को पढ़कर मनुष्य खोटे मार्ग पर नहीं जा सकता।

सा०—अब अगाड़ी आप क्या दिखायेंगे ?

ब्र०—आज हमें नाटक खेलते हुवे पांच दिन होगये हैं आज सीता की अग्नि परीक्षा दिखाकर हम अपना खेल समाप्त करेंगे।

सा०—तो चलिये। (दोनों चले जाते हैं)

अंक तृतिय—दृश्य तृतिय

(रामचन्द्रजी का दर्बार। पास में ही दोनों पुत्र और लक्ष्मण शत्रुघ्न खड़े हैं। सुग्रीव आदि सीता को लेकर आते हैं, सीता प्राणनाथ कहकर झपटती है, किन्तु राम दूर से ही रोक देते हैं।)

राम—बस खबरदार, मेरे समीप न आना मुझे स्पर्श न करना। जिसे मैं एक बार त्याग चुका उसे बिना किसी परिक्षा लिये हुवे नहीं अपना सकता।

सीता—देव मैं आपकी हूं। आपको अधिकार है। ग्रहण करें

या न करें। मैं सती हूँ मैंने आपके सिवाय परपुरुष को आंख उठा कर भी बुरी निगाह से नहीं देखा। आप चाहे जैसी परिक्षा लें मैं तैय्यार हूँ।

मैं स्वामी आपकी हूं, आपको अधिकार मुझ पर है।
कोई कुछ भी करे अधिकार मुझको अपने मन पर है॥
यदि चाहो तो पर्वत से गिरा कर चूर कर डालो।
यदि चाहो तो अग्नी में जला कर भस्म कर डालो॥
वचन मन काय से मैंने, धरम अपना रखा होगा।
पटकदो मुझको अग्नी में, मेरे छूने से जल होगा॥

राम—यदि यही बात है तो कल तुम्हारी अग्नी परिक्षा होगी। सेनापती! जाओ एक लम्बा चौड़ा और गहरा अग्नी कुन्ड तैय्यार कराओ। उसमें चन्दन की आग जलाओ। सारे नगर में इस बातका ढिंढोरा पीटो कि कल सीता की अग्नी परिक्षा होगी।

नारद—रामचन्द्र! ऐसा न करो। अग्नी प्रचन्ड रूप होती है वो सीता को अवश्य जला देगी। तुम उसमें सीता का प्रवेश न कराओ। यदि सीता को स्वीकार नहीं करना चाहते तो न करो। किन्तु ये हिंसा का कार्य न करो।

रामचन्द्र—नारदजी! मैं आपके वाक्यों का सन्मान करता हूं किन्तु जो एक बार मेरी आज्ञा हो गई वो नहीं टल सकती। जिस प्रकार अग्नी में सोना तपाने से सोने और सुनार दोनों का

विश्वास हो जाता है उसी प्रकार सीता की अग्नी परिक्षा से सीता का और मेरा विश्वास हो जायगा।

प्रजा का मनुष्य—महाराजाधिराज ! हम लोगों को क्षमा करें। हम विश्वास करते हैं कि सीताजी निर्दोष हैं। अब हम में से कोई भी अपवाद न करेगा।

राम—अब विश्वास करने से कुछ नहीं बनता। जब इतने दिन तक सीता ने कष्ट उठा लिये तब विश्वास करने से कुछ न बनेगा। जो मेरी आज्ञा है वो अटल रहेगी। सीता की कल अग्नी परिक्षा अवश्य होगी।

लवण—पिताजी ! माता जी अग्नी में भस्म हो जायगीं तो कैसे होगा हम माता किसे कहेंगे ? आप हमारे ऊपर कृपा करके माता जी की ऐसी कठिन परिक्षा न लो।

सीता—पुत्र ! तुम इस बात की चिंता न करो। तुम्हारी अनेक मातायें हैं। इस समय मोह करना वृथा है। अपने पिताको देखो मुझ को कितना मोह करते थे और करते हैं। ये मैं ही जानती हूं। किन्तु न्याय के लिये वो इस समय मोह को त्यागे हुवे हैं।

सब—बोलो सती सीता महारानी की जै।

पर्दा गिरता है।

अंक तृतीय—दृश्य चतुर्थ

(एक इन्द्र और एक देव दोनों आते हैं)

देव—महाराज ! आज पृथ्वी पर बड़ा हा हा कार मचा हुवा है चारों ओर लोग रो रहे हैं। कल सीता की अग्नी परिक्षा होगी।

इन्द्र—मुझे इस बात की बड़ी चिंता है। सीता के सती पन से सारा देव मंडल प्रसन्न है। उसकी भगवानमें अत्यन्त भक्ती है। ऐसी सतियों की रक्षा करना हमारा परम धर्म है।

देव—तो फिर क्या उपाय रचा जाय ?

इन्द्र—अभी ही एक बात और उत्पन्न हुई है।

देव—वह क्या ?

इन्द्र—एक मुनी महाराज को ज्ञान की उत्पत्ती हुई है। मुझे वहां पर जाना अत्यन्त आवश्यक है। मैं जाकर उनकी पूजा करूंगा।

देव—तो इन्द्र महाराज! सीता के लिये क्या उपाय सोचा।

इन्द्र—तुम सब देव लोग उस स्थान पर जाना। जिस समय सीता अग्नी में प्रवेश करे उसी समय अग्नि को जल में बदल देना। और उसमें इस प्रकार कमल खिला देना कि सीता कमल पर आसानी से बैठ सके। और इधर उधर दो कमल खिलाना जिन पर उसके पुत्र लव और कुश बैठें।

देव—आपने यह बहुत अच्छा उपाय बताया । मैं अभी जाता हूं । वहां पर पुष्प वर्षा कराऊंगा, और जय ध्वनी कराऊंगा।

इन्द्र—तो जाओ देर न करो ।

(दोनों दोनों ओर को चले जाते हैं । ब्रह्मचारीजी आते हैं)

ब्र०—सज्जनो ! आपने देख लिया कि सत पुरुषोंके ऊपर जब कष्ट आता है तब देव लोग किस प्रकार रक्षा करते हैं। देवों की पूजा करना, पीपल आदि को पूजना, देवियों के नाम से हिंसा करना ये सब वृथा है देव मनुष्योंसे वैभव में बढ़कर हैं किन्तु आत्म बल में नहीं, जो अपने धर्म पर दृढ़ हैं, जो अपनी आत्मा को उन्नत बनाते हैं. जो न्याय और नीति को नहीं छोड़ते उनकी देव लोग स्वयं पूजा करते हैं।

लोग कहते हैं, भगवान रक्षा करने के लिये आते हैं सो बात नहीं है। भगवान तो कृत्य कृत्य होगये हैं उन्हें संसारिक झगड़ों से कोई प्रयोजन ही नहीं। मनुष्य भगवान की भक्ति करता है उसी भगवान की भक्ती देव लोग करते हैं जब अपने साथी के ऊपर देव लोग कष्ट देखते हैं तो वो आकर किसी न किसी भेष में भगवान के भक्तों की रक्षा करते हैं। यदि आप इस बात को असत्य समझें तो सुनिये। आप लोग रामचन्द्रजी को भगवान का अवतार मानते हैं। रामचन्द्रजी स्वयं सीता को कष्ट दे रहे हैं। तो बताइये उस समय सीता की रक्षा

करने के लिये और कौन से भगवान आयेंगे रामचन्द्रजी केवल एक मनुष्य थे। किंतु पहले जन्म में वो देव थे। उनके पुण्यका उदय होने से उन्हें इतनी ख्याति प्राप्त हुई। भगवान की भक्तिको हम लोग सबसे प्रथम धारते हैं भगवान से इस बात की प्रार्थना नहीं करते कि वह हमें कुछ दें। हम उनके गुणों का गान करते हैं। उनकी मूर्ति को आदर्श मानकर पूजते हैं जिससे वह गुण हम धारण करें और जिस प्रकार पूर्व पुरुषों ने जो कि अन्त में भगवान कहलाये, अपना मार्ग रखा था, जिस मार्ग पर चले थे उसी मार्ग पर चलना सीखें, इस लिये हर मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि प्रथम वो देखलें कि मैं जिसे पूज रहा हूं वो पूजने योग्य है या नहीं बाद में उसमें श्रद्धा लावें। और उसके गुणों को गावें, जो पूजनीय भगवान हैं उनके तीन लक्षण हैं। प्रथम वीत-रागता। अर्थात न किसी वस्तु से प्रेम न द्वेष। जिनके साथ स्त्री शस्त्र चक्र आदि पदार्थ हैं वो वीतराग नहीं, हैं। दूसरा लक्षण सर्वज्ञता है। जो तीनों लोकों की बात पूर्णतया जानता हो वही सर्वज्ञ है। उसी का उपदेश सच्चा माना जायगा जो सब बातों को जानता हो। जिसका ज्ञान अधूरा है। उसके वाक्य झूठ हो सकते हैं। तीसरा लक्षण हितोप-देशी पना है। जो हमें संसारिक जीवों को सच्चे हित मोक्ष का उपदेश दें। जो युद्ध आदि का या मारने काटने का उपदेश दे

वो हितोपदेशी नहीं है। इस प्रकार जिसमें ये तीनों बातें हों वही माननीय पूजनीय हो सकता है। दूसरा नहीं हो सकता। जिसमें एक बात की भी कमी है वो भगवान नहीं कहला सकता। इस प्रकार आप लोगों को सोच समझ कर बुद्धि से विचार कर किसी को पूजना चाहिये। अगाड़ी आप देखिये। सीता की अग्नी परिक्षा किस भांति होती है।

(चला जाता है)

अंक तृतिय—दृश्य पांचवां

(एक चौकोर करीब दो गज लम्बा डेढ़ गज चौड़ा एक गज ऊंचा हौज है। उसमें अग्नी जल रही है। सीता उस हौज के पीछे की तरफ कुछ पृथ्वी से ऊंची खड़ी है। रामचन्द्र आदि सब अगाड़ी की तरफ खड़े हैं। अग्नी बड़ी तेजी से जल रही है।)

सीता—नाम तेरे से प्रभो, भवसिंधु से तर जात हैं।
याद करने से तुझे रक्षा को, सुर-गण आत हैं॥
मैं यदि दूषित हूँ तो, ये तन मेरा जल जायगा।
वरना मेरे सत-धरम से, अग्नी जल बन जायगा॥

(प्रवेश करना चाहती है)

लव—नहीं, नहीं, माता जी आप अग्नी में न कूदो, माता जी! कुछ तो हम पुत्रों पर दया करो। इतनी कठोर न बनो

सीता— पुत्र आदि ये सब झूठा झगड़ा है। न कोई मेरा है न मैं किसी की हूँ। तुम दोनों भाई अपने पिता के पास में रहना। तुम्हें मैं आशीर्वाद देती हूं चिरंजीव होवो।

ओं नमः सिद्धेभ्य।

(अग्नी में प्रवेश करती है। आगी के स्थानमें जल होजाता है। उसमें कमल खिल जाते हैं। सीता कमल पर बैठ जाती है। उसके दोनों ओर दो कमल पर उनके दोनों पुत्र दौड़कर बैठ जाते हैं। वो उसके सर पर हाथ रखती है। आकाश से पुष्प वर्षा और जयकार होती है।)

रामचन्द्र—सीता! तुम धन्य हो। आओ, आओ, मैं तुम्हें स्वीकार करता हूं। मेरे अपराधों को क्षमा करो।

सीता—प्राणनाथ! आप मुझे क्षमा करें अब मैं आपकी अर्धांगिनी न कहला कर अर्यिका बनूंगी। ये स्त्री पर्याय अत्यन्त दुखदाई है मैं तप करके इस पर्याय को छेदूँगी। जिससे फिर स्त्री न बनना पड़े। आपके, आपके भाइयोंके, आपके मित्रोंके

पुत्रोंके, माताओंके, और नारियोंके लिये तथा प्रजाके लिये मैं भगवान से प्रार्थना करती हूं कि सदा शान्ति रहे ।

(चारों ओर जय जय कार होती है ।)

ड्राप गिरता है ।

पंचम भाग समाप्त

श्री जैन नाटकीय रामायण

सम्पूर्ण ।

उद्देश्य

इस पुस्तक के लिखने का मेरा अन्य कोई उद्देश्य न होकर केवल इतना ही है कि इसके द्वारा जैन और अजैन समाज में जैन साहित्य की प्राचीनता और गूढ़ता का प्रचार हो। प्रत्येक स्थान की जैन समाज को उचित है कि धार्मिक अवसरों पर या प्रतिवर्ष इसको स्टेज पर खेलकर करोड़ों मनुष्यों के हृदय में सत्यता की धाक बैठावें।

किसी भी प्रकार की कुछ पूछताछ या सलाह के लिये मैं सदैव तय्यार हूं।

यह पुस्तक

श्रीमान् जाति भूषण डाक्टर गुलाबचन्दजी पाटनी

आनरेरी मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में

श्री पाटनी प्रिंटिंग प्रेस अजमेर में मांगीलाल जोशी ने

मुद्रित की ।

भूमिका।

(पंडित राजमल्लजीने पहला अध्याय १४८ श्लोकका लिखा है उसका भावार्थ)।

मैं श्री वीर भगवानकी स्तुति करता हूं जो अनंत दर्शन अनंतज्ञान, अनंतवीर्य व अनंतसुख इन चार चतुष्टयके धारी हैं व जिनके गर्भादि पांचकल्याणक हुए, ऐसा आचार्य कहते हैं। परम शुद्ध सिद्धसमूह जो मोक्षलक्ष्मी प्रदान करें, जो बहिरंग अंतरंग स्वभाव पर्यायोंसे निरंतर परिणमन करते रहते हैं। श्री आचार्य, उपाध्याय व साधु ये तीन पदधारी मुनिराज जयवंत हों जो शय्या, आसन, शयनादिसे विरक्त होकर चारित्रमोहशत्रुको जीतनेके लिये तप व चारित्रके गुणोंको धारते हैं। स्याद्वाद वाणी सरस्वती मेरे मनरूपी कमलमें अपना चरण धारण करें, जो सूर्यकी किरणावलीके समान अंतरङ्गके अज्ञान अंधकारको दूर करनेवाली है व जिसने सर्व पदार्थोंके स्वरूपको यथार्थ दिखलाया है।

पातशाह अकबरका वंश।

दिल्लीके पादशाह अद्भुत ऐश्वर्यवान व दयावान अकबर थे, जो पादशाह बाबरके पौत्र थे व जैसा नाम था वैसे गुणोंके धारी थे। वह पृथ्वीमें प्रसिद्ध चगत्ता वंशमें थे। जिसमें माननीय बहुतसे बादशाह पहले होगये थे। चंद्रकीर्तिके समान महान कवि भी अकबर पातशाहका महात्म्य प्रकाश नहीं कर सक्के। बाबर वंशकी

कुछ कीर्ति कही जाती है। बाबरने शत्रुओंको विजयकर दिल्ली सिंहासनका स्वामीपना प्राप्त किया। अपना राज्य समुद्र तक बढ़ाया व चारों तरफ यश फैलाया। उनके पीछे उनके पुत्र हुमायुने राज्य किया, जो सूर्यसम तेजस्वी था, जिसने आधीन राजाओंसे कर एकत्रकरके भी जनताको इच्छानुकूल धन दिया, प्रजाका न्यायसे पालन किया।

अकबरका महात्म्य।

उनके पुत्र साह अकबर हुए, जो भुजबलसे भारतमें एकछत्र राज्य करते थे, बड़े बुद्धिमान थे, तेजस्वी थे, सर्व शत्रुओंको जीतनेमें प्रवीण थे। वह बालकपनमें भी चंद्रमाके समान शोभते थे। उस समय भी राजालोग उनको नमन करते थे। क्रमसे यौवनवान हुए तब अपने प्रतापसे शत्रुओंको युद्धक्षेत्रसे भगा देते थे। उनके पास हाथी, घोड़े, रथ, पयादोंकी बड़ी सेना थी। करोड़ोंका द्रव्य था। दुर्जनोंको ऐसा वश किया था कि अकबरका नाम सुनके कांपते थे। गुजरातदेशमें चढ़ाई करके सिंहके समान वैरीरूपी गजोंको भगा दिया। गुजरातदेशको वश करते हुए सूरतका किला ले लिया, जिसका लेना बहुत कठिन था। शत्रुओंको जीतनेमें बड़ा प्रतापशाली था। जैसा वह युद्धमें वीर है, वैसी ही उसके भीतर स्वभावसे दया है। वह अपने अखण्ड पुरुषार्थसे प्रजाका योग्य रीतिसे पालन करता था। कठिन कर नहीं लेता है व मदवान भी नहीं है। जजिया नामका कर पादशाह अकबरने माफ कर दिया। इससे इनकी कीर्ति दूर२ तक फैल गई। सब लोग पादशाहको धर्मराजके भावसे देखते हैं। जो प्रमादी जन अन्यायसे प्रवर्तते हैं उनके

मदको दूर करनेमें चतुर हैं। बादशाह अकबरके दानादि गुणोंकी महिमा हम वर्णन नहीं कर सक्ते। दिग्मात्र कुछ कहा है।

चिरकाल यह जीवित रहें ऐसी आशीस प्रजा दिया करती है। वे चंद्रमाके समान पृथ्वीतलपर अमृतकी वर्षा मानो करते हैं। सर्व प्रजा बड़ी प्रसन्न थी। बादशाहकी राज्यधानी आगरा नगर थी।

आगराका वर्णन।

यह सब नगरोंमें प्रधान है, सर्व पदार्थोंकी खान ही है। आगरा नगरका कोट बहुत ऊँचा है, मानो स्वर्गके देखनेको ऊपर जारहा है। पाषाणका बना है। जिस नगरमें ऊंचे ऊंचे महल हैं। पंक्ति शोभित है, उनमें पवन जानेके द्वार शोभायमान हैं। यमुना नदीका पानी तरंगोंकी उछालसे गंभीर ध्वनि कर रहा है। नगरमें बड़े भाग्यवान रत्नोंके व्यापारी हैं। मार्गमें हाथी, घोड़े, रथ, पयादोंके चलनेका शब्द होरहा है। कमल समान गुणधारी व नूपुरोंकी ध्वनि करती हुई महिलाओंके संचारसे यह नगर कमलाकर दीखता है। स्त्रियोंके हावभाव विलाससे पूर्ण होनेके कारण यह नगर मानो हंस रहा है। कहीं भट्ठी जल रही है मानो नगरमें दावानल है। व्यापारी लोग माल सहित चल रहे हैं। बहुत मूल्यवान वस्तु लिये हुए हैं। नाना प्रकारके नामोंके रखनेवाले बाजार हैं। किनारे २ नाना वस्तुओंके भंडारसे भरी दूकाने हैं। ऊंचे महलोंपर झंडिये फहरा रही हैं, मानो पक्षियोंकी पंक्तियां उड़ती हुई दिख रही हैं। राजनीतिको उल्लंघन करनेवाले नगरमें घूमने नहीं पाते हैं। साधुवर्ग व सज्जनोंका संग्रह होरहा है। चारों

दिशाओंमें बड़े २ मार्ग हैं। हरएक मार्गमें छोटी २ गलियां हैं। यह राजधानी बादशाहके यशके समान दिन प्रतिदिन उज्वल व ऐश्वर्यसे वृद्धिरूप है, मानो रत्नादि सहित एक महा समुद्र है। परन्तु समुद्रमें पानी नीचेको जाता है, परन्तु यह नगर सुमेरुपर्वतके समान बहुत उन्नत है। बड़े २ महलोंमें सुवर्णके कलश चढ़े हैं, वहां नानाप्रकारके धनी रहते हैं, जहां गान वादित्र होरहे हैं। नगरके बाहर नंदनवनके समान वन है जिनमें पृथ्वीको छाये हुए फलसे लदे हुए छायादार वृक्ष हैं। उस नगरके भीतर बड़े उज्वल जिनमंदिर हैं, उनमें रत्नमई प्रतिमाएं विराजित हैं, उन मंदिरोंमें पूजाके महान् उत्सव हुआ करते हैं। जन्मकल्याणादिके उत्सव होते हैं।

जैसे सुमेरु पर्वत देवोंके द्वारा लाए हुए क्षीर समुद्रके गंधोदकसे शोभता है वैसे ही यहां कभी शांतिकर्ममें अभिषेक करनेके लिये जैन लोग यमुना नदी तक पंक्तिबद्ध खड़े होकर देवोंके समान जल लाते हैं। मंदिरोंमें जय जय शब्द होरहे हैं। यतिगण व श्रावकजन स्तुति पढ़ रहे हैं, उनकी ध्वनि सुन पड़ती है। कितने ही श्रावक अपनेको कृतार्थ मानके मंदिरोंमें जारहे हैं। वहां जाकर सर्व आरम्भको छोड़कर धर्मध्यानमें लवलीन होरहे हैं। इस तरह नाना गुणोंसे पूर्ण यह आगरा राजयपत्तन है। इस नगरमें टकुर नामके अरजानी पुत्र क्षत्रिय वंशज जिनको कृष्णामंगल चौधरी भी कहते हैं, साही जलालद्दीन अकबरके निकट बैठनेवाले सर्वाधिकार प्राप्त मंत्री हैं। यह सर्वके हितैषी, प्रतापशाली, श्रीमान् हैं। इन्होंने बड़ेर शत्रुओंका मान दमन किया है। बहुत धन

उत्पन्न किया है। उसने यमुना नदीतट पर विश्रांतिके लिये घाट व स्थान बना दिया है, लोग स्नान करके वहां विश्राम करते हैं। वह घाट स्वर्गकी शोभाको विस्तार रहा है। उनके साथ मुख्य कार्यकर्ता गढ़मल्ल साहु हैं, यह वैष्णवधर्म रत हैं। गंगादि तीर्थ जाते हैं, धनवान हैं व परोपकारी हैं, जिससे यशस्वी हो रहे हैं। इन दोनोंमें बड़ी प्रीति है। खजानेकी शोभा इनसे है।

अकबरके समय जैन भट्टारक।

काष्ठासंघ माथुरगच्छ पुष्करगणमें लोहाचार्य आदि अनेक आचार्य हुए हैं। उनहीके आम्नायमें भट्टारक मलयकीर्ति देव हुए। उनके पीछे गुणभद्रसूरि भट्टारक हुए। उनके पद पर सूर्यके समान तेजस्वी भानुकीर्ति भट्टारक हुए। यह अनेक शास्त्रोंके पारगामी थे। भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेको सूर्य ही थे। उनके पद पर **श्री कुमारसेन** भट्टारक हैं, जो बड़े शांत व पतापी चंद्रमाके समान पट्टरूपी समुद्रको बढ़ानेवाले है और ब्रह्मचर्य व्रतसे कामकी सेनाको जीतनेवाले हैं।

अलीगढ़के धनिक टोडरमल श्रावक।

इनके समयमें काष्ठासंघको माननेवाले प्रतापशाली अग्रवाल वंशज गर्ग गोत्रधारी कोल (अलीगढ़) नगरनिवासी साधु (साहु) मदन हैं, उनके छोटे भाई **साधु आसू** हैं, उनके पुत्र जिनधर्ममें गाढ़ रुचिवान श्री रूपचंद हैं। उनके पुत्र अद्भुत गुणोंके धारक **साधु पासा** हैं, जिनका यश सर्व साधुगण गाते हैं। दानी, यशस्वी, सुखी हैं व जैन धर्ममें बड़े प्रेमालु हैं। उनके विख्यात पुत्र साधु

टोडर हैं । यह महान उदार, महा भाग्यवान, कुलके दीपक हैं, चारित्रवान हैं, सभामें मान्य हैं, देवशास्त्र गुरुके परम भक्त हैं, परोपकारमें कुशल, दानमें अग्रगामी, वात्सल्यांगधारी हैं । इनका धन धर्मकार्योंमें ही लगता है व इनका मन सदा अर्हतके गुणोंमें मगन रहता है, धर्म व धर्मके फलमें अनुरागी हैं, कुधर्मसे विरागी हैं, परस्त्रीके त्यागी हैं, परदोष कहनेमें मूक हैं, गुणवान होनेपर भी अपनेको बालकवत् समझते हैं, अपनी बड़ाई कभी नहीं करते हैं. स्वप्नमें भी किसीका बुरा नहीं विचारते हैं, अधिक क्या कहें, साधु टोडर सर्व कार्य करनेमें समर्थ हैं, धन व पुत्रादिसे शोभित हैं, सर्व जीवोंपर दयालु हैं, सर्व शास्त्रोंमें कुशल हैं, सर्व कार्योंमें निपुण हैं, श्रावकोंमें महान हैं, इनकी स्त्री सुन्दरमुखी कौसुभी है जो पतिव्रता है व पतिकी आणमें चलनेवाली है । इन दोनोंके तीन पुत्र हैं जो अपराधीपर कठोर हैं, निर्दोषके उपकारी हैं । बड़ेका नाम गुणवान ऋषभदास है, दूसरेका नाम मोहन है । यह शत्रुओंको भस्म करनेमें अग्निकणके समान हैं । तीसरा माताकी गोदमें खेलनेवाला रूपमांगद नामका है जो रत्नसम प्रकाशमान हैं ।

साधु टोडरमलके समयकी उपयोगी बातें ।

इन सब परिवारके साथमें साधु टोडर रहते हैं जो एक दिन मथुरानगरीमें सिद्ध क्षेत्र स्थित प्रतिमाओंके दर्शनके लिये यात्रार्थ आए । मथुरानगरकी हदके पास एक मनोहर स्थान देखा जो सिद्ध क्षेत्रके समान महारिषियोंके वाससे पवित्र था । वहीं धर्मात्मा साहुने 'निःसही' नामके स्थानको देखा, जहां अंतिम केवली श्री जंबूस्वामीका

विहार हुआ है व जंबूस्वामीके पदसेवी विद्युच्चर मुनिका आगमन हुआ है। इनके साथ बहुतसे और मुनि थे। यहीं पर महामोहको जीतनेवाले, अखंड व्रतके पालनेवाले विद्युच्चरादि साधुओंने संन्यास किया था, वे भिन्न२ स्वर्गादिमें गए हैं। शास्त्रज्ञाता विद्वानोंने जंबू-स्वामीके व विद्युच्चरके स्थानोंके पास आये साधुओंके स्थान स्थापित किये थे। कहीं पांच कहीं आठ कहीं दश कहीं वीस स्तूप बने हुए थे। काल बहुत होजानेसे व द्रव्यके जीर्ण स्वभावसे ये सब स्तूप जीर्ण होगये थे। इनको जीर्ण देखकर साधु टोडरने जीर्णोद्धार करानेका उत्साह किया। इस बुद्धिमानने धर्मकार्य करनेका मनमें दृढ़ विचार किया। साधु टोडरकी धर्म व धर्मके फलमें आस्तिक्य बुद्धि थी। उसको श्रद्धान था कि आत्मा है, वह अनादिसे कर्मोंसे बंधा है, कर्मोंके क्षयसे मोक्ष पाता है तब सर्व क्लेश मिट जाते हैं व अनंत सुखकी प्राप्ति होती है। जब तक इस अभूतपूर्व व कठिन मोक्षका लाभ नहीं तबतक बुद्धिमानोंको अवश्य धर्मकार्य करते रहना चाहिये।

मोक्ष तो महात्माओंको तब ही सुखसे साध्य होता है जब काललब्धि आदि मोक्षकी सामग्री प्राप्त होती है। यह मोक्ष भी भव्योंको होगा जिनको सम्यक्तकी प्राप्ति हो जायगी। परन्तु अभव्योंको मोक्ष कभी नहीं होता है, न हुआ है न होगा। वे अभव्य नित्य आत्मसुखको न पाकर दुःखी रहेंगे तथापि जो अभव्य क्रिया मात्रमें रागी होकर धर्मसाधन करेंगे वे पुण्यके फलसे महान् भोगोंको पाएंगे। वे ग्रैवेयिक तकके सुख पा सक्ते हैं परन्तु स्वर्गादिसे आकर वे बिचारे तिर्यंच मनुष्यादि गतियोंमें तीव्र दुःख उठाते हुए भव भ्रमण किया करते हैं। उस सम्यग्दर्शन धर्मको सदा नमस्कार हो

जिससे निरंतर सुख होता है और उस मिथ्यात्व कर्मरूपी पापको धिक्कार हो जो आनन्दका घातक है। जिस मिथ्यात्वके उदयसे प्राणीके भीतर कभी भी जीवदया नहीं होसक्ती है उसकी दया भी अदयाके समान है, क्योंकि आत्माकी सच्ची रक्षा कैसे होती है इसे वह नहीं जानता है। मिथ्यात्वका अभाव होनेपर व सम्यक्तके होनेपर यदि सम्यक्तीसे जीव घात भी हो तौभी उसके परिणामोंमें दया वर्तती है। मिथ्यात्वकी बुराई व सम्यक्तकी महिमा वचन अगोचर है। संसारमें सर्व अनर्थपरम्पराका मूल मिथ्यात्व है। धर्मकी इच्छा करनेवालोंको उचित है कि प्रथम ही मिथ्यात्वको त्याग करके धर्मवृक्षके मूलभूत सम्यग्दर्शनको ग्रहण करे। तीर्थंकरोंने धर्म दो प्रकारका कहा है-एक निश्चय धर्म, दूसरा व्यवहार धर्म।

निश्चय धर्म।

निश्चयधर्म अपने आत्माहीके आश्रय है, व्यवहारधर्म परके आश्रय है। आत्मा चैतन्यमई एक अखंड पदार्थ है, वचन अगोचर है। अपने आत्माका स्वानुभूति द्वारा लाभ करना निश्चयधर्म है। यह स्वानुभवरूपी धर्म अंतरङ्गकी रिद्धि है। वही शुद्धात्मा है, वही परम तप है, वही सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र है, वही अविनाशी सुख है, वही संवर है, वही आठों कर्मकी निर्जराका हेतु है। अधिक क्या कहें। इसीके द्वारा आत्माको मुक्ति प्राप्त होती है। कहा है:—

आत्मा चैतन्यमेकार्थस्तच्च वाचामगोचरः।
स्वानुभूत्यैकगम्यत्वात् स धर्मः पारमार्थिकः॥ १०२॥
स एवांतर्द्धि शुद्धात्मा स एव परमं तपः।
स एव दर्शनं ज्ञानं चारित्रं सुखमच्युतम्॥ १०३॥

स एव संवरः प्रोक्ताः निर्जरा चाष्टकर्मणाम् ।
किमत्र विस्तरेणापि तत्फलं मुक्तिरात्मनः ॥ १०४ ॥

व्यवहार धर्म ।

जब कभी चारित्रमोहके उदयसे सम्यग्दृष्टी इस निश्चयधर्ममें चल नहीं सक्ता तब व्यवहारधर्मकी इच्छा न रहते हुए भी व्यवहार धर्मोंमें वर्तता है । जिससे फिर निश्चयमें पहुंच जावे । इस बातमें कोई संशय नहीं करना चाहिये । जो जलका प्यासा होता है वह जल दूर होने पर भी उसकी इच्छासे जलके पास जाता है, वैसे ही अतीन्द्रिय सुखका प्रेमी सम्यग्दृष्टी अपने आत्मीक स्वभावसे प्राप्त सुखका लाभ न होने पर उस सुखकी प्राप्ति करानेमें निमित्त ऐसे परतत्वोंमें प्रीति करता है तब रागभावका विकल्प रखता हुआ वह आत्माके गुणोंका चिन्तवन करता है, व्रत आदि व्यवहार धर्ममें आरूढ़ होता है । कषायोंके आधीन होकर अशुभ ध्यानमें न फंस जावे इसलिये आह्वानन आदि विधिसे श्री अर्हंतकी पूजादि करता है । एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवोंको अपने समान देखता है, उनको दुःख देनेसे भयभीत रहता है, इसीलिये हिंसादि पापोंसे विरक्त रहकर अहिंसादि व्रतोंको पालता है । इनका पालन सर्वदेश साधुओंसे महाव्रतरूप व एकदेश श्रावकोंसे अणुव्रतरूप होता है । इन सबका लक्षण आगममें विस्तारसे कहा है, यहां कहनेका सम्बन्ध नहीं है । इस व्यवहार धर्मका फल इन्द्रादि पदका लाभ है । जो धान्यके अर्थी कुटुम्बीको परालके समान है । अर्थात् जैसे धान्यका अर्थी कृषक धान्यको चाहता है परालको नहीं,

जैसे ही सम्यग्दृष्टी महात्मा मोक्ष-सुखको ही चाहते हैं। सांसारिक सर्व सुख पलालके समान तुच्छ व त्यागयोग्य है, उसे नहीं चाहते हैं।

५१४ स्तूप बनवाए।

इस तरह धर्म व धर्मके फलके ज्ञाता साधु टोडरने पुण्यके हेतु नए स्तूप बनवाए। उसका यश तो स्वयं फैल गया। कोई धनको यशके लिये खरचते हैं, कोई धर्मके लिये खरचते हैं। टोडर साधुका धन धर्म व यश दोनोंका कारण हुआ, जैसे स्वादिष्ट व हितकारी औषधि। इस पुण्यवानूने शुभ मुहूर्तमें मङ्गल पूजाके साथ कार्य प्रारंभ कराया। फिर उत्साहपूर्वक एकाग्र चित्तसे सावधान होकर महान उदार भावसे कार्यको पूर्ण कराया। पांचसौ एक स्तूपोंका एक समूह व तेरह स्तूपोंका दूसरा समूह स्थापित कराया व बारह द्वारपाल आदिकी स्थापना की। इन सबकी प्रतिष्ठा सोलहसौ तीस जेठ सुदी द्वादशी बुधवारको नौघड़ी दिन चढ़े पूर्ण कराई। यह स्थान तीर्थके समान पवित्र है। विजयार्द्ध पर्वतके कूटके समान ऊंचे २ स्तूप स्थापित कराये। सुरिमंत्रके साथ पूजा प्रतिष्ठा कराई व चार प्रकार संघको निमंत्रित किया तब आशीर्वाद रूपसे स्वयं गुरुमहाराजके दिए हुए पुष्पोंको मस्तक पर रखा। प्रतिष्ठा कराके साधु टोडरका उत्साह बहुत बढ़ गया, जैसे चंद्रमाके दर्शनसे समुद्र बढ़ जाता है।

जम्बूस्वामीचरित्र बनानेकी प्रार्थना।

एक दफे साहुजीने सभाके मध्य हाथ जोडकर विनती की कि कृपा करके जम्बूस्वामी पुराणकी रचना करिये। उसने भवांतरमें क्या किया था, कैसे आत्मकल्याण किया व केवली होकर अविनाशी

सुखका लाभ किया। किस निमित्तसे विद्युच्चर मुनिका किस तरह उन्होंने पांचसौ मुनियोंके साथ उपसर्ग सहन किया व समाधिसे च्युत नहीं हुए, ऐसी कथा रची जाय जो बालवृद्ध भी समझ सकें। सभामें गुरुकृपासे पालित पण्डित राजमल्लने मिष्ट वचनोंसे कहा— राजमल्ल वयमें लघु थे, वे ज्ञानादि गुणोंमें भी लघु थे। मैं आपकी इच्छाको गुरु कृपासे पूर्ण करूंगा। मेरे हृदयमें रातदिन सज्जनोंकी कृपा वास करे जो अपने तपसे जगतको पवित्र करते हैं, दुर्जनोंका विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनकी बुद्धि ही दुष्ट होती है। उनका आदर करो तौभी वे वक्रभावको नहीं छोड़ते हैं। कोई सज्जन हो या दुर्जन हो हमें अपना कार्य करना चाहिये। यदि वाणीमें गुण होगा साधुजन अच्छा मानेहींगे। दुष्टोंका भय निरर्थक है। मैं राजमल्ल सज्जन व दुर्जन सबको सूचित करता हूं। यदि भ्रमसे या प्रमादसे कहीं भूल गया हूं तो वे क्षमा करें। जो कुछ मैंने अल्पबुद्धिसे कहा है उसको स्वानुभूतिसे परीक्षा करके मान्य करना चाहिये। इसप्रकार हृदयमें सज्जनोंके वचनोंको धारण करके मैं जम्बूस्वामीकी कथाके वहाने अपने आत्माको पवित्र करता हूं। निश्चयसे मैं तो एक विशुद्ध आत्मा हूं, चैतन्यरूप हूं, अमूर्तीक हूं, इसके सिवाय जो कुछ है मेरा नहीं है। जो जाननेवाला है उसके नाम नहीं है, जो नाम है वह जड है, उसमें ज्ञान नहीं है ऐसा भेद होनेपर नाम रखना कैसे ठीक होसकता है। मैं द्रव्यार्थिक-नयसे एक आत्मा असंख्यात प्रदेशी हूं। पर्यायार्थिक नयसे अनन्तनाम होचुके हैं, क्या कहा जाय। वे धन्य हैं जो अपने शुद्ध

परमात्मतत्वको साक्षात् स्वानुभवके द्वारा अनुभव करते हैं। वे अपने अन्तरङ्ग सर्व मलोंको धोकर अनंत सुखसे भरे अमृतमई सरोवरके हंस होजाते हैं, उनको नमस्कार हो।

हमारा कथन।

पंडित राजमल्लजीके वंशादि व जन्मस्थानका कोई परिचय नहीं मिलता है। इस ग्रन्थसे प्रगट है कि वे काष्ठसंघ गद्दीके बड़े विद्वान पण्डित थे। संस्कृतज्ञ, नैयायिक, सिद्धांतके ज्ञाता, अध्यात्मरसमें भीगे हुए थे। इस जम्बूस्वामी चरित्रको दो वर्षके भीतर रचा था। पं० राजमल्ल कृत ग्रन्थ—पंचाध्यायी, लाटीसंहिता, अध्यात्मकमलमार्तंड संस्कृतमें हैं व जैपुरीभाषामें समयसार कलशकी टीका है, जो अनुभवपूर्ण है, जिसे देखकर प्रसिद्ध बनारसीदासने समयसार नाटक कवित्तबद्ध बनाया था। हमने अध्यात्मका सार लेकर तुच्छ बुद्धिके अनुसार भाषा की है। कठिन भाषा कहीं समझमें नहीं आई है, वहां भाव मात्र ले लिया है। अलंकारोंको भी यथासंभव दिया गया है। कथाका भाव जैसा ग्रन्थकारके वाक्योंमें रखा है, वह पाठकोंको ज्ञात होजावे ऐसा प्रयत्न किया गया है।

यह चरित्र वैश्योंके लिये मननयोग्य है। जम्बूस्वामी वैश्यपुत्र होकर भी वीर थे। युद्धमें विजय पाई। फिर धर्मात्मा व वैरागी ऐसे थे कि युवा वयमें नवीन विवाहित स्त्रियोंको एकदम छोड़कर साधु होगए थे। उनका वैराग्य एक अपूर्व आदर्श है।

दाहोद।
ता० २८-१२-१९३७. } ब्र० सीतल।

स्व० सेठ कालीदास अमथाभाई-डबकाका
संक्षिप्त परिचय।

बड़ौदा राज्यके बड़ौदा प्रांतके पादरा तालुकामें मही नदीके तटपर डबका नामका गांव है। वहांपर दि० जैन नृसिंहपुरा जातिमें संवत् १९१२ वैशाख वदी १२ रविवारके दिन रात्रिको १२॥ बजे आपका जन्म हुआ था। आपके पिताका नाम शाह अमथाभाई बहेचरदास था और माताका नाम मोतीबाई था। बड़े भाईका नाम त्रिभोवनदास अमथाभाई था, जिनको बाल्यावस्थामें पिताका स्वर्गवास होनेसे घरकी व्यवस्थाका काम करनेकी फरज पड़नेसे और गांवमें दूसरी भाषा (अंग्रेजी) का प्रबंध नहीं होनेसे सिर्फ गुजरातीका आपने अभ्यास किया था। लेकिन वाचनकार्य अधिक होनेसे हिंदी भाषा और सरल संस्कृत भी आप समझ सकते थे। आपका प्रथम विवाह भड़ौच जिलेके वागरा गांवमें मोतीलाल हरजी-वनकी बहिन पार्वतीके साथ हुआ था और द्वितीय विवाह भड़ौच जिलेके 'अणोर' गांवके शाह शिवलाल रायचंदजीकी बहिन उमियाबाई (जमनाबाई) के साथ हुआ था।

किसी भी व्यक्तिकी महत्ता धनाढ्य होनेमें या विविध भाषाके विद्वान होनेमें नहीं है, किन्तु मोक्षमार्गका यथार्थ बोध प्राप्त करनेमें है। उस समय गुजरातमें देव, गुरु, धर्म और सप्ततत्वका यथार्थ ज्ञानी श्रद्धानी शायद कोई भी नहीं था। सिर्फ गतानुगतिकता पूजा, व्रत, उपवास, विना हेतु समझे बाह्य क्रियाकांडमें मचा हुआ

था। यथार्थ श्रद्धान, ज्ञानादि प्राप्त करनेका कोई निमित्त नहीं था, ऐसे समयमें इनके समागममें आनेवालोंपर छाप पड़े ऐसा ज्ञान-अध्यात्मज्ञान आपने संपादन किया था। इनके अध्यात्म प्रेमसे आकर्षित होकर श्वेताम्बर मुनि श्री० हुकमचंद्रजीने अपने बनाये हुए अध्यात्म प्रकरण और ज्ञान प्रकरण ये दो ग्रन्थ आपको भेट किये थे! स्वाध्याय करनेकी रुचि होनेसे दिगम्बर जैन धर्मके महत्वपूर्ण छपे हुए सभी ग्रन्थ आप मंगाया करते थे, वैसे ही श्वेताम्बरोंके, वेदांतके और बौद्ध धर्मके भी ग्रन्थ मंगाया करते थे। इससे आपके घरमें छोटासा पुस्तकालय बन गया था। मासिक पत्रोंमें उनको 'जैन हितैषी' खास प्रिय था। उसमें भी प्रेमीजीके लेख आप बहुत रुचिपूर्वक पढ़ते थे।

जब जब संसारी कामोंसे निवृत्ति मिलती थी तब२ आप अपने मंगाये हुए तात्विक ग्रंथ पढ़ते थे, या बनारसीदासजीकृत समयसारके काव्य; बनारसीदासजी, भूधरदासजी, भगवतीदासजी, आनन्दघन, हीराचंदजी आदिके बनाये हुए खास करके अध्यात्मिक पद गाते थे। सम्मेदशिखर, गिरनार, पावागढ़, आदि तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा आपने की थी। इस तरह जीवन व्यतीत करते हुए आपने संवत १९८८ के आश्विन शुक्ल चतुर्दशीकी रात्रिके १० बजे णमोकार मंत्रका उच्चारण करते२ देह छोड़ दिया था व देह त्यागके पहले कई दिन पूर्व अपनी पूर्ण सावधानीमें आपने जैनोंकी भिन्न२ संस्थाओंको २०००) का दान दिया था। आपके सुपुत्र सेठ सौभाग्यचंद भी अपने पितातुल्य बड़े अध्यात्मप्रेमी व दानी हैं। —प्रकाशक।

विषयसूची ।

शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१६	१८	चतुर्दशी	पंचमी
१०	१०	भवि	भव्य
३१	१२	पुण्यकी	पुण्यकी
३५	२	कालगुणके	कालाणुके
५५	१६	अमादा	अनादर
६१	१६	मुनिजता	मुनिजेता
६२	२	निदान	निन्दा व
८८	३	मारा	भाग
९१	१२	वैश्वराज	वैश्यराज
९९	२१	करारियों	क्यारियों
१०४	८	घोडा	योद्धा
११४	४	गदा	गन्ना
१२९	१२	राज्य	रज
१३४	६	रघुराव	श्रेणिक
१३५	१६	भोग	मार्ग
१५४	१	वही	मै नहीं
१५९	१८	नियश्री	रूपश्री
१९७	११	उन्नत	उत्पन्न
२००	१७	स्थल	स्थान
२०१	१४	वार	वाठ
२०४	६	रहित	सहित
,,	१८	भव	भय
२११	४	तेईस	तेवीस

श्री वीतरागाय नमः ।

श्रीजम्बूस्वामीचरित्र ।

मंगलाचरण ।

वंदहु श्री ऋषभेषको, अंतिम श्री अति वीर ।
सिद्ध गुरू पाठक यती, पंच परम गुरु धीर ॥ १ ॥
जिनवाणी भव तारणी, शान्त भाव दातार ।
सुमरूं हर्ष उपायके, बुद्धि लहूं विस्तार ॥ २ ॥
राजमल्ल पंडित बड़े, परमागम सु प्रवीण ।
जम्बूस्वामि चरित्रको, संस्कृतमें लिख दीन ॥ ३ ॥
बालबोध भाषा लिखूं, भवि जीव हितहेतु ।
पढ़ो पढ़ावो संत जन, मोक्ष-मार्गके हेतु ॥ ४ ॥

प्रथम अध्याय ।

महाराज श्रेणिक वीरके समवसरणमें ।

(इस अध्यायमें २४३ श्लोक हैं उनका भावार्थ नीचे दिया जाता है।)

मैं पण्डित राजमल्ल धर्मतीर्थके प्रवर्तन करनेवाले श्री आदिनाथ भगवानको और सर्व कर्मोंको जीतनेवाले व जगत्‌के गुरु श्री अजितनाथको नमस्कार करता हूं ।

मध्यलोकमें असंख्यात द्वीप और समुद्र एक दूसरेको वेढ़े हुए

हैं। उन सबके मध्यमें जंबूद्वीप है जो एक सम्राट्‌के समान शोभायमान है। इसके मध्यमें सुवर्णमई सुदर्शन मेरु है। यह मानो जंबूद्वीप राजाके ऊपर छत्र ही कर रहा है। इसमें महागंगा व महासिंधु नदी बहती हुई मानो जंबूद्वीप राजाके चमर ही कर रही हैं।

इस जंबूद्वीपके दक्षिणभागमें अर्द्ध चन्द्राकार भरतक्षेत्र है। इसके मध्यमें विजयार्द्ध पर्वत है। उत्तर हिमवान् पर्वतसे महागंगा व महासिंधु नदी निकल कर विजयार्द्धकी दोनों गुफाओंके भीतरसे होकर कुछ दूर बह कर क्रमसे पूर्व व पश्चिम लवण समुद्रमें गिरी हैं। इस कारणसे भरत क्षेत्रके छः खंड होगए हैं। दक्षिण मध्यके खण्डको आर्यखण्ड व शेष पांच खण्डोंको म्लेच्छ खण्ड कहते हैं।

छः काल परिवर्तन।

भरत क्षेत्रमें (भरतके आर्यखण्डमें) घटीयंत्रके समान उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल क्रमसे फिरा करता है। हरएकके छः छः काल होते हैं। अवसर्पिणीके छः काल इस प्रकार हैं। (१) प्रथम—सुखमा सुखमा (२) दूसरा—सुखमा (३) तीसरा—सुखमा—दुःखमा (४) चौथा दुखमा सुखमा (५) पांचमा दुखमा (६) छठा दुखमा दुखमा। उत्सर्पिणीके इसीका उलटा क्रम जानना चाहिये। पहला दुखमा दुखमा, दूसरा दुखमा, तीसरा दुखमा सुखमा, चौथा सुखमा दुखमा पांचमा—सुखमा. छट्ठा सुखमा सुखमा—अवसर्पिणीमें आयु, कायकी ऊंचाई व सुख आदि प्राणियोंमें घटते जाते हैं तब उत्सर्पिणीमें क्रमसे बढ़ते जाते हैं।

जैसे एक मासमें शुक्ल पक्षके पीछे कृष्ण पक्ष व कृष्ण पक्षके पीछे शुक्ल पक्ष आता है, इसी तरह ये दोनों काल क्रमसे वर्तते हैं। अब यहां भरतमें अवसर्पिणीकाल चल रहा है। यहां जब पहला काल आर्य खण्डमें था तब उसकी स्थिति चार कोड़ाकोड़ी सागरकी थी।

भोगभूमिकी शोभा।

इस पहले सुखमा सुखमाकालमें देवकुरु व उत्तरकुरु उत्तम भोगभूमिके समान अवस्था थी तब जो युगलिये मनुष्य उत्पन्न होते थे उनकी आयु तीन पल्यकी होती थी व शरीरकी ऊंचाई ६००० छः हजार धनुषकी होती थी। शरीरका संहनन वज्रवृषभ नाराच होता था। अर्थात् वज्रके समान दृढ़ नसें, हड्डियोंके बंधन, व हड्डियां होती थीं। सबका स्वरूप सुन्दर व शांत होता था। उनका शरीर तपाए सुवर्णके समान चमकता था। मुकुट, कुंडल, हार, भुजबन्द, कड़े, करधनी तथा ब्रह्मसूत्र, ये उनके नित्य पहरावके आभूषण थे। इस उत्तम भोगभूमिके पुरुष पूर्व पुण्यके उदयसे रूप, लावण्य व सम्पदासे विभूषित होकर अपनी स्त्रियोंके साथ उसी तरह क्रीडा करते थे जिस तरह स्वर्गमें देव देवियोंके साथ रमण करते हैं। भोगभूमिवासी बड़े बलवान, बड़े धैर्यवान, बड़े तेजस्वी, बड़े प्रभावशाली महान पुण्यवान होते हैं। उनके कंधे बड़े ऊंचे होते हैं। उनको भोजनकी इच्छा तीन दिन पीछे होती है। तब वे बेरफलके समान अमृतमई अन्न खाकर ही तृप्त होजाते

हैं। सर्व ही भोगभूमिवासी रोग रहित, मलमूत्र नीहार रहित, बाधा रहित व खेद रहित होते हैं। उनके शरीरमें पसीना नहीं होता है व उनको कोई आजीविका नहीं करनी पड़ती है तथा वे पूर्ण आयुके भोगनेवाले होते हैं।

वहांकी स्त्रियोंकी ऊंचाई व आयु पुरुषोंके समान होती है। जैसे कल्पवृक्षमें कल्पवेलें आसक्त होती हैं इसी तरह वे अपने नियत पुरुषोंमें अनुराग रखनवाली होती हैं। जन्म पर्यंत दोनों प्रेमसे भोग संपदाको भोगते हैं सर्व भोगभूमिवासी स्वर्गके देवोंके समान स्वभावसे सुन्दर होते हैं। उनकी वाणी स्वभावसे मधुर होती है, उनकी चेष्टा स्वभावसे ही सुन्दर होती है। वहां पृथ्वीकायिक दश जातिके कल्पवृक्ष होते हैं। उनसे वे भोगभूमिवासी इच्छानुकूल आहार, घर, वादित्र, माला, आभूषण, वस्त्र आदि भोगकी सामग्री प्राप्त कर लेते हैं। कल्पवृक्षोंके पत्ते सदा ही मंद मंद सुगंधित हवासे हिलते रहते है। कालके प्रभावसे व क्षेत्रकी सामर्थ्यसे ये कल्पवृक्ष प्रगट होते हैं। क्योंकि इनसे पुण्यवान मानवोंको मनके अनुसार रुचिकर भोग प्राप्त होते हैं। इसलिये इनको विद्वानोंने कल्पवृक्ष कहा है। इनकी जातियां दश प्रकारकी होती हैं। (१) मद्यांग (२) वादित्रांग (३) भूषणांग (४) पुष्पमालांग (५) ज्योतिरांग (६) दीपांग (७) गृहांग (८) भोजनांग (९) पात्रांग (१०) वस्त्रांग। जैसे इनके नाम हैं वैसी ही वस्तुएं प्रगट करनेमें ये परिणमन करते हैं। भोगभूमिवासी इन कल्पवृक्षोंसे प्राप्त भोगोंको अपने पुण्यके उदयसे आयु

पर्यंत भोगते रहते हैं। आयुके अंतमें जम्हाई व छींक आनेसे प्राण त्यागते हैं। वे मंद कषायी होनेसे पापरहित होते हैं। इसलिये सर्व ही स्त्री पुरुष प्राण छोड़के देव गतिको जाते हैं। उनके शरीर मेघोंके समान उड़ कर विला जाते हैं। इसतरह अवसर्पिणीके पहलेकालकी विधि थोड़ीसी वर्णन की है। शेष सर्व अवस्था देवकुरु उत्तरकुरुके समान जाननी चाहिये।

नोट–यहां कुछ श्लोक उपयोगी जानके दिये जाते हैं, जिससे पाठकोंको भोगभूमिकी अवस्थाका ज्ञान हो—

वज्रास्थिबंधनाः सौम्याः सुन्दराकारचारवः।
निष्टप्तकनकच्छाया दीव्यन्ते ते नरोत्तमाः॥ १३॥
मुकुटं कुंडलं हारो मेखला कटकांगदौ।
केयूरं ब्रह्मसूत्रं च तेषां शश्वद्विभूषणम्॥ १४॥
महासत्त्वा महाधैर्या महोरस्का महौजसः।
महानुभावास्ते सर्वे महीयंते महोदयाः॥ १६॥
निर्व्यायामा निरातंका निर्विहारा निरामयाः।
निःस्वेदास्ते निराबाधं जीवंति पुरुषायुषं॥ १८॥

इसतरह पहला काल क्रमसे ज्यों ज्यों बीतता जाता था, कल्पवृक्षोंकी शक्ति मनुष्योंकी आयु व ऊंचाई धीरे धीरे कम होती जाती थी। चार कोड़ाकोड़ी सागर बीतनेपर दूसरा सुखमा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागरका प्रारम्भ हुआ। तब भोगभूमिके मानवोंकी आयु दो पल्यकी रह गई। शरीरकी ऊँचाई चार हजार धनुषकी

होगई। चंद्रमाकी चांदनीके समान शरीरका उज्वल वर्ण होगया। दो दिनके पीछे बहेडा (बिभीतक) प्रमाण अमृतमई अल्पाहारसे तृप्ति पा लेते थे। उनकी सर्व अवस्था हरिवर्ष क्षेत्रमें स्थित मध्यम भोगभूमि वासियोंके समान होगई। तब फिर क्रमसे जैसे जैसे काल बीतता गया शरीरकी ऊँचाई, आयु, वीर्य आदि कम होते चले गये। तीन कोड़ाकोड़ी सागर काल बीतनेपर, तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागरका प्रारम्भ होगया। तब हैमवत् क्षेत्रके समान जघन्य भोगभूमिकी अवस्था प्रगट होगई। तब भोगभूमिके मानवोंकी आयु एक पल्यकी रह गई। शरीरकी ऊँचाई २००० धनुष या एक कोसकी रह गई। शरीरका रंग प्रियंगुके समान श्याम रंगका होगया। एकदिन पीछे आमलेके समान अमृतमई भोजन करके वे तृप्ति पालेते थे।

इस तरह तीसरा काल बीतते हुए जब एक पल्यका आठवां भाग समय शेष रहा तब कर्मभूमिकी रचनाके प्रवर्तानेवाले प्रतिश्रुति आदि चौदह कुलकर क्रमसे हुए। चौदहवें कुलकर श्री ऋषभदेवके पिता श्री नाभिराज हुए। नाभिराजाके समयतक मेघवृष्टि होने लगी। काले नीले जलसे भरे बादल घूमने लगे, बिजली कड़कने लगी, पवन चलने लगी, मेघोंकी गरज सुनकर मयूर नृत्य करने लगे। जलवृष्टि ऐसी हुई मानों कल्पवृक्षोंके क्षय होनेपर मेघोंने अश्रुपातकी धारा वर्षा दी। सूर्यकी किरणोंके व जलबिंदुओंके स्पर्शसे पृथ्वी अंकुरित होगई। द्रव्य, क्षेत्र, कालके निमित्तसे परिणमन होजाया करता है। धीरे२ खेतोंमें अन्न पकने लगा। वृक्षोंमें फल पक गए।

अतिवृष्टि व अनावृष्टि न होनेसे मध्यम वृष्टि होनेसे सर्व प्रकारके धान्य व फल पक गए। ईख, धान्य, जौ, गेहूं, अलसी, धनिया, कोदों, तिल, सरसों, जीरा, मूंग, उड़द, चने, कुलथी, कपास आदि सर्व ही पदार्थ जिनसे प्रजाका जीवन होसके फल गए। धान्य व फलादिके फलनेपर भी प्रजाको यह न जान पड़ा कि किस तरह उनका उपयोग करना चाहिये।

कर्मभूमिका आगमन।

चौथा काल आनेवाला है। कल्पवृक्षोंका क्षय होगया। प्रजाजन अपने प्राण रक्षणके लिये आकुलित होगए। क्षुधाकी वेदनासे आकुल होकर सर्व मानव श्री नाभिराजाको महापुरुष जानकर उनके सामने प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ! हम अब कैसे जीवें। कल्पवृक्ष नष्ट होगए। कितने ही वृक्ष फल व धान्यसे नम्रीभूत खड़े हुए मानो हमको बुला रहे हैं। हम नहीं जानते हैं कि उनमेंसे किनको ग्रहण करना चाहिये व किनको छोड़ना चाहिये। इनका हम कैसे उपयोग करें सो सब विधि हमको बताइये।

आप महापुरुष हैं, ज्ञाता हैं, हम अज्ञानी हैं, कर्तव्यमूढ़ हैं। हमको कृपा कर सब भेद समझाइये। तब नाभिराजाने संतोषित करके कहा कि कल्पवृक्षोंके जानेपर ये वृक्ष उत्पन्न हुए हैं, उनमेंसे अमुक२ विषवृक्ष हैं, हानिकारक हैं, उनके फल न ग्रहण करना चाहिये। इक्षुका रस निकालकर पीना चाहिये। धान्यको पकाकर खाना चाहिये। दयालु नाभिराजाने बर्तनोंके बनानेकी व पकानेकी

व भोजनकी सब विधि बताई। जो औषधियां थीं उनको भी समझा दिया। प्रजाके कल्याणके लिये नाभिराजा कल्पवृक्षके समान होगए। प्रजा सब विधि जानकर बड़ी सन्तोषित हुई और सुखसे प्राणयापन करने लगी। श्री नाभिराजा अकेले ही जन्मे थे, उनके समय जुगलियोंकी उत्पत्ति बन्द होगई थी। तब इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने नाभिराजाका विवाह मरुदेवीके साथ कर दिया। कहा है:-

तस्योद्वाहकल्याणं मरुदेव्या समं तदा।
यथाविधि सुराश्चक्रुः पाकशासनशासनात्॥ ८१॥

देवोंने ही इन्द्रकी आज्ञासे देशोंकी सीमा बांधी; पत्तन, ग्राम, नगर नियत किये। अयोध्यापुरीकी बड़ी ही सुन्दर रचना करी। तबसे कर्मभूमिका कार्य प्रारम्भ होगया। कर्मभूमिके तीन काल हैं-चौथा, पांचमा, छट्ठा।

चौथे कालका वर्णन।

चौथा काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका है। चौथे कालकी आदिमें ही (नोट-हुंडावसर्पिणी कालके कारण जब तीन वर्ष ८॥ मास तीसरे कालके शेष रह गये थे तब ही श्री वृषभदेव मोक्ष पधारे थे) श्री वृषभदेव प्रथम तीर्थंकरने मोक्षमार्गको प्रगट किया। इस कालमें मानवोंकी उत्कृष्ट ऊंचाई ५२५ सवा पांचसौ धनुषकी थी। उत्कृष्ट आयु एक करोड पूर्वकी होती थी। ८४००००० चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग व ८४ लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है। मध्यम व जघन्य आयु अनेक प्रका-

रकी होती थी जिसका वर्णन परमागमसे विदित होगा। जघन्य आयु एक अंतर्मुहूर्तकी होती थी। चौथे कालमें गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष पांचों कल्याणकोंमें पूजाको प्राप्त ऐसे चौवीस तीर्थंकर होते हैं। इनकेसिवाय कितने ही महात्मा अपनी काललब्धिके बलसे अतीन्द्रिय सुखको भोगते हुए निर्वाणको प्राप्त होते हैं। उन सर्वही निर्वाण प्राप्त सिद्धोंको हम नमन करते हैं। कितने ही महात्मा सम्यक्तपूर्वक महाव्रतोंको या देशव्रतोंको पालकर पहले स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत जाते हैं। कितने ही द्रव्यलिंगी मुनि चारित्रको पालकर सम्यक्तके विना मिथ्यादृष्टी होते हुए भी पुण्य बांधकर नौग्रैवेयिक पर्यन्त जाते हैं।

कितने ही सम्यक्त व व्रत दोनोंसे रहित होनेपर भी भद्रपरिणामी पात्र दान करके भोगभूमिमें जाकर जन्म लेते हैं। कितने ही पहले तीर्यंच व मनुष्य आयु बांधकर पीछे सम्यग्दर्शनको पाते हैं और पात्रदानसे भोगभूमिमें जन्म लेते हैं। कितने ही भोगोंमें आसक्त रहते हैं, प्राणियोंपर दयासे वर्ताव नहीं करते हैं, धर्मसे विमुख रहते हैं, दुष्टभाव रखते हैं, वे नर्कमें जाकर दुःख भोगते हैं। मानवोंको दुष्टकर्म-पापकर्मका त्याग अवश्य करना चाहिये। क्योंकि पापका बन्ध होनेसे उसका कटुक फल भोगना पड़ेगा। जो नर जन्म व धर्म साधनेयोग्य सर्व उचित सामग्री पाकर भी धर्मसेवन नहीं करते हैं उनका यह सर्व योग्य समागम वृथा चला जाता है। फिर ऐसा नरजन्मका उत्तम धर्म साधन योग्य समागम मिलना बहुत कठिन है।

क्योंकि चौथे कालमें बंध व मोक्षका मार्ग चलता है, इसीलिये साधुओंने इसे कर्मभूमिका नाम दिया है। जैसा कहा है:—

इतीत्थं तुर्यकालोऽसौ पंथाः स्याद्बंधमोक्षयोः।
तस्मान्निगद्यते सद्भिः कर्मभूरितिनामतः॥ ९७॥

इस चौथे कालमें बारह चक्रवर्ति, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण नौ बलभद्र भी होते हैं। जिस कालमें विना किसी बाधाके चौबीस तीर्थंकरोंको लेकर त्रेशठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं वही चौथा काल है। इस कालमें सर्व स्थानों पर महाव्रतधारी मुनि व देशव्रतधारी गृही श्रावक सदा दिखलाई पड़ते हैं। इस कालमें पूजा दानादि नित्यकर्ममें तत्पर व सदाचारी गृहस्थ दर्शन प्रतिमासे लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा तक यथाशक्ति ग्यारह प्रतिमाओंको पालते हुए सदा मिलते हैं। जो ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी व्रती श्रावक होते हैं वे गृहको त्यागकर मुनिके समान परम वैराग्य भावमें स्थिर रहते हैं। चौथे कालमें बालगोपाल सर्व प्रजाजन जैनधर्मको पालते हैं।

हुंडावसर्पिणी काल।

कभी भी अन्य किसी अजैन धर्मका प्रकाश नहीं होता है। किन्तु जब कभी हुंडावसर्पिणी काल आजाता है तब उस कालमें अनेक पाखंड मत चल पड़ते हैं व सत्य धर्मकी हानि होती है।

असंख्यात कोटिवार उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके बीतने पर एक दफे हुंडावसर्पिणी काल आता है। ऐसी बात अनन्तवार पहले हो चुकी है व अनन्तवार आगे होगी। जैसे किसी वर्षमें एक

एक मास अधिकका मल मास होता है, वैसे ही इस हुंडाव-सर्पिणीकालको जानना चाहिये। इस हुंडावसर्पिणी कालमें बहुतसे अनर्थ होते हैं। कालचक्रकी मर्यादाको कोई रोक नहीं सक्ता। जैसे कालके स्वभावसे ही वर्षा ऋतुके पीछे शरद ऋतु आती है, वैसे कालके परिभ्रमणमें यह हुंडाकाल आता है। द्रव्योंका होना ही स्वभाव है। इस हुंडावसर्पिणी कालमें परमागमके अनुसार तीर्थंकर ऐसे महान आत्माओंको भी उपसर्ग होता है। चक्रवर्तीका मानभंग अपने ही कुटुम्बसे होता है। इत्यादि वचनसे अगोचर बहुत अनर्थ होते हैं। तब प्राणीवध रूप हिंसाका प्रचार होता है। जिससे तीव्र पापकर्मका बंध होता है। ब्राह्मण वर्ग इसी कालमें प्रगट होते हैं। अनिष्ट बुद्धिधारी ब्राह्मण यज्ञोंके लिये पशुओंकी की हुई हिंसासे पुण्यका लाभ व कल्याण होना बताते हैं।

इस प्रकरणके श्लोक हैं—

किंतु हुंडावसर्पिण्यां कालदोषादिह क्वचित्।
प्रादुर्भवंति पाखण्डास्तथापि च नृपक्षतिः॥ १०४॥
गतायामवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां तथैव च।
असंख्यकोटिवारं स्यादेका हुंडावसर्पिणी॥ १०५॥
तद्यथा तत्र हुंडावसर्पिण्यां वा यथागमम्।
तीर्थेशाम्रुपसर्गो हि महानर्थो महात्मनाम्॥ १०९॥
मानभङ्गश्च चक्रेशं जायते जातिपूर्वकः।
इत्यादि बहवोऽनर्थाः सन्ति वाचामगोचराः॥ ११०॥

हिंसा प्राणिवधश्चेयं दुष्कर्मार्जनकारणम्।
यागाथ श्रेयसे हिंसा मन्यंते दुर्धियो द्विजाः॥ १११॥

इस कालमें प्रगटरूपसे ब्रह्म अद्वैतवादी मत प्रगट होता है जो एक अद्वैत ब्रह्मको ही मानते हैं और अनेक द्रव्योंको नहीं मानते हैं। कितने ही एकांतमतवादी तत्वको सर्वथा नित्य ही कहते हैं, वे आकाशको व आत्मा आदिको सर्वथा नित्य मानते हैं। कितने ही क्षणिक एकांतवादी तत्वको सर्वथा क्षणिक ही मानते हैं जैसे शब्द व मेघादि। कितने ही कापालिक मतवाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पांच तत्वोंको ही मानते हैं। वे जीवको नहीं मानते हैं। उनके मतमें बन्ध व मोक्षकी अवस्था नहीं होसक्ती है। कितने ही अज्ञानी मोक्षका ऐसा स्वरूप मानते हैं कि वहां ज्ञानादि धर्मोंकी संतानका सर्वथा नाश होजाता है। इन मतोंके भीतर बहुतसे भेदरूप मत इस हुंडावसर्पिणी कालमें ही प्रचलित होते हैं, और किसी अवसर्पिणी कालमें नहीं होते हैं।

स्याद्वाद गर्भित श्री जिनेन्द्रकी वाणी द्वारा जैन सिद्धांत एकान्त मतोंका उसी तरह खंडन करता है जिसतरह वज्रपातसे पर्वत चूर्ण होजाते हैं। इन एकांत मतोंका खंडन आगे कहीं करेंगे। यहां उनका कुछ स्वरूप मात्र कहा गया है।

इस हुंडावसर्पिणी कालमें नाना भेष धारी साधु प्रगट होते हैं। कोई त्रिशूलादि शस्त्र लिये रहते हैं, कोई जटाओंको बढ़ाते हैं, कोई शरीरमें भस्मको लपेटते हैं, कोई एक दंडी, कोई दो दंडी, कोई

त्रिदंडी होते हैं। कोई हंस व कोई परमहंस होते हैं जो वनमें निवास करते हैं। इस कालमें इतने साधुओंके भेष प्रचलित हो-जाते हैं कि उनका नाम मात्र भी कहा नहीं जासक्ता। इस कालमें राजालोग भी पापमें रत दिखलाई पडते हैं। रोग पीडित साधु पाए जाते हैं। ऐसा होनेपर भी परमार्थको पहचाननेवाले महात्मा-ओंका कर्तव्य है कि वे क्षण मात्र भी इस जैन धर्मको न भूलें। जैसे सुवर्ण अग्निसे तपाए जानेपर भी अपने स्वभावको नहीं छोडता है किंतु और भी निर्मल होजाता है वैसे ही सज्जन पुरुषोंका कर्तव्य है कि क्षुद्र पुरुषोंसे पीडित होनेपर भी वे कभी धर्मको न त्यागें। कहा है कि इस लोकमें अनेक जीव अपने २ बांधे हुए कर्मोंके वश नाना भावोंको रखने वाले हैं, उनके कुत्सित भावोंको देखते हुए भी योगियोंका मन क्षोभित नहीं होता है। वे समभावसे सत्य वस्तु स्वरूपको विचारकर अपना हित करते हैं। इसतरह चौथे कालकी कुछ विधि कही है। अधिक वर्णन परमागमसे जानना योग्य है।

जब चौथे कालमें तीन वर्ष साढ़ेआठ मास शेष रहे थे तब श्री वीर भगवानने निर्वाण प्राप्त कर लिया। उसके पीछे बासठवर्षमें तीन केवलज्ञानी मोक्ष पधारे—श्री गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी।

पञ्चमकाल वर्णन।

तीन केवलीके पीछे सौ वर्षमें चौदह पूर्वोंके पारगामी पांच श्रुतकेवली क्रमसे हुए—विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु। उनके पीछे एकसौ अस्सी वर्षमें क्रमसे दश पूर्वके ज्ञाता

ग्यारह मुनिराज हुए–विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयसा, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिमान्, अंगदेव, धर्मसेन। यहांतक आत्मा आदि तत्वोंका पूर्ण उपदेश होता रहा। उनके पीछे क्रमसे दोसौ बीस वर्षोंमें ग्यारह अंगके पाठी पांच मुनीश्वर हुए–नक्षत्र, जयमाल, पांडु, ध्रुवसेन व कंसाचार्य। इस समय तत्वोपदेशकी कुछ हानि होगई। जैसे हाथकी हथेलीमें रखा हुआ पानी बूँद बूँद करके गिर जाता है, फिर एकसौ अठारह वर्षोंमें क्रमसे प्रथम अंगके पाठी पांच मुनि हुए–सुभद्र यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश, लोहाचार्य। इनके समयमें तत्वोपदेश एक भाग ही रह गया। आगे आगे चलकर और भी तत्वोपदेश कम होगया। क्योंकि पंचम-कालके दोषसे मानवोंकी बुद्धि हीन हीन होती चली गई।

इस दुषमा पंचमकालमें मानवोंकी आयु साधारणरूपसे एकसौ बीस पर्यंतकी होजाती है। इस कालमें अप्रमत्त विरत सातवां गुण-स्थान तक ही होती है। कोई साधु उपशम या क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सक्ता है न इस कालमें दोनों मनःपर्ययज्ञान होते हैं। देशावधि तो होती है, परन्तु परमावधि व सर्वावधि नहीं होती है। तपकी हानि होनेसे सब ऋद्धियां सिद्ध नहीं होती हैं। पंचकल्याणकोंके न होनेसे देवोंका आगमन नहीं होता है। कहीं किसी समय कोई २ क्षुद्र देव किसी कारणसे आते हैं, ऐसा जिनागममें कहा है। उत्कृष्ट आयु १२० वर्षकी होती है। शरीरकी ऊंचाई एक धनुषकी या चार हाथकी होती है। जैसे २ काल बीतता है, मानवोंकी आयु

घटती जाती है, धर्मका भी कहीं२ अभाव होजाता है। इस कालमें उपशम तथा क्षयोपशम दो ही सम्यक्त बाधा रहित होसकते हैं। केवलियोंके न होनेसे क्षायिक सम्यक्त नहीं होसकता है। एक अन्य ग्रंथकी गाथामें कहा है कि पहले कालमें उपशम सम्यक्त ही होती है और सर्व कालोंमें पहला उपशम व दूसरा क्षयोपशम सम्यक्त दो होते हैं। क्षायिक सम्यक्त तब ही होता है जब श्री जिनेन्द्र केवली होते हैं। यहां कुछ श्लोक उपयोगी हैं:—

ततः श्रेण्योरभावः स्यात्तमनःपर्ययबोधयोः।
देशावधिं विना परमसर्वावधबोधयोः॥ १४२॥
ऋद्धीणां चापि सर्वासामभावस्तपसः क्षतेः।
नापि देवागमस्तत्र कल्याणामंनाभावतः॥ १४३॥
कदाचित् कुत्रचित् केचित् क्षुद्रदेवाः कथंचन।
आगच्छंति पुनस्तत्र सद्भिः प्रोक्तं जिनागमे॥ १४४॥

गाथा–पढम पढमे णियदं पढमं विदियं च सव्वकालेसु।
खाइयसम्मत्तो पुण जत्थ जिणो केवली तम्हि॥ १॥

इस दुखमा पंचमकालमें महाव्रत और अणुव्रत दोनोंका पालन होसकता है, परन्तु अप्रमत्तविरत सातवें गुणस्थानके ऊपर गमन नहीं होसकता है। जो कोई भद्र परिणामी हैं व दया धर्म व दानमें तत्पर रहते हैं, शील तथा उपवास पालते हैं, वे निरंतर स्वर्ग भी जाते हैं। इत्यादि कार्य जिस कालमें होते हैं वह दुखमा काल है ऐसा आप्तका उपदेश है।

छठे कालका आगमन।

इस पंचमकालके अन्तमें जो व्यवस्था होती है, वह भी कुछ वर्णन की जाती है। इस पंचमकालके वीतनेपर दुखमा दुखमा नामका छठा काल आता है, उसका भी कुछ कथन किया जाता है। पंचमकालके अन्तमें किसी देशका कलंकी राजा हालाहल विषके समान धर्मका घातक प्रगट होता है। उसका भी सर्व व्यवहार प्रजाको पीड़ाकारी होता है। उस समय तक सर्व सुवर्णादि धातुएं विला जाती हैं। चमड़ेका सिक्का चल जाता है उसीसे ही माल खरीदा व वेचा जाता है। वह दुष्ट राजा प्राणियोंके बांधने व मारनेके ही वचन बोलता है। जैनधर्म तबतक बराबर चलता रहता है। क्योंकि उस समय भी एक भावलिंगी मुनि, एक आर्यिका, एक जैन श्रावक, एक श्राविका मिलते हैं। कहा है—

अथ तत्रापि वृषः साक्षादव्युच्छिन्नप्रवाहतः।
यस्मादेको मुनिर्जना विद्यते भावलिंगवान् ॥१५७॥
एका चाप्यर्जिका तत्र यथोक्तव्रतधारिका।
सजानिः श्रावकश्चैको जैनधर्मपरायणः ॥१५८॥

भावार्थ—वह कलंकी पापी राजा किसी दिन विचारता है व कहता है—क्या कोई मेरी आज्ञासे विरुद्ध है? मुझे कर नहीं देता है? ऐसा सुनकर कितने अधम पुरुष कहते हैं कि—महाराज! एक जैनका मुनि है जो आपको कर नहीं देता है। कहा है—

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
लोकास्तदनुवर्तंते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ १६१ ॥

भावार्थ—यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा धर्मात्मा होती है, यदि राजा पापी होता है तो प्रजा पापी होती है, यदि राजा समान होता है तो प्रजा समान होती है। लोग राजाका अनुकरण करते हैं। जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है।

ऐसा सुनकर वह राजा निर्दयी वचन कहता है कि जिसतरह जैन मुनिसे दण्ड लिया जाय वैसा उपाय करना योग्य है। राजाकी आज्ञा पाकर राजाके कुछ नौकर उन जैन मुनिके पीछे जाते हैं। जब वह भिक्षाके लिये भूमि निरख कर चलते हैं। जब वे पवित्रात्मा किसी श्रावकके घरमें निकट पहुंचते हैं और वह श्रावक नमोऽस्तु कहकर मुनिका पड़गाहन करके विधिके साथ भीतर लेजाकर व भक्ति पूजा करके दान देनेको खड़ा होता है और मुनि शुद्ध भावसे अपने करमें जैसे भोजनका ग्रास लेते हैं वैसे राजाके नौकर वज्रमई कठोर वचन कहते हैं कि तुम इस तरह भोजन नहीं कर सक्ते। राजाकी आज्ञा है कि पहला ग्रास राजाको करके रूपमें प्रतिदिन देना होगा। इतना सुनते ही आगमके ज्ञाता मुनि पंचमकालकी अंतिम अवस्थाका विचार करते हैं और निश्चय करते हैं कि यह पंचमकालका अंत समय है। इसीलिये ऐसा अनर्थ होरहा है। शास्त्रके ज्ञाता मुनि उस आहारके ग्रासको छोड़ देते हैं और मुनि धर्मका चलना अशक्य जानकर सावधानीसे जीवन पर्यंत चार प्रकारके आहारका त्याग करके समाधिमरण धारण करते हैं। तब आर्यिका भी सर्व आहार त्याग कर सावधान हो

समाधिमरण धारण करती है। अपनी धर्मपत्नी सहित श्रावक भी मुनिके समान संसार शरीर भोगोंसे विरक्त हो समाधिमरण स्वीकार कर लेते हैं। चारों ही सम्यक्ती महात्मा शरीरको त्यागकर स्वर्गमें देव उत्पन्न होते हैं। पश्चात् उस कलंकी राजाके ऊपर भी बिजली गिरती है। उसकी शय्या व गृह आदि सर्व नाश होजाता है। उसी क्षणसे ही दही, दूध, घी आदि विला जाता है। जैसे पापके उदयसे सम्पदा विला जाती है।

छठे कालका वर्णन।

उस समयसे दुखमा दुखमा नामका छठा काल प्रारम्भ होजाता है। उस समय भोग सामग्री नाश होजाती है। तब उत्कृष्ट आयु सोलह वर्षकी रह जाती है। मानवोंके शरीरकी उत्कृष्ट ऊँचाई एक हाथ ही होजाती है। मध्यम व जघन्य आयु व ऊँचाई आगमसे जानना योग्य है। पशुओंकी भी आयु व शरीरकी ऊँचाई आगमसे जानना चाहिये। इस कालमें मनुष्य तथा पशु सब दुखोंसे पीड़ित होते हैं। फल आदिका आहार करते हैं। भूमिके बिलोंमें रहते हैं। मनुष्य वृक्षकी छालके कपड़े पहनते हैं। परस्पर विरोध रखते हैं। पशु भी महान दुष्ट होते हैं। रात दिन लड़ते रहते हैं। पापी व निर्दयी प्राणी धर्मबुद्धिके अभावसे व दुष्ट कालके प्रभावसे एक दूसरेको मार करके फल खाते हैं। वर्षभरमें वर्षा कभी कहीं होती है। प्राणियोंमें तृष्णा इतनी बढ़ जाती है कि कभी वह शांत नहीं होती है। पापकर्मके उदयसे इसतरह छठे कालके प्राणी बड़े कष्टसे इक्कीश-हजार वर्ष पूर्ण करते हैं।

४९ दिन प्रलय होना।

छठे कालके अंतमें कालके प्रभावसे इस आर्यखण्डमें प्रलय होती है। सात सात दिनतक क्रमसे अग्नि, रज आदिकी वर्षा होती है। इसतरह लगातार उनचास दिन तक महान कष्टदायक भयंकर उपद्रव होता है। उस क्षेत्रके रक्षक देव वहचर जोडोंको स्त्री पुरुष सहित लेजाकर गुफा आदिमें रख देते हैं।

इस आर्यखण्डमें शेष सब कृत्रिम रचना भस्म होजाती है। अकृत्रिम रचना बनी रहती है। उसे कोई नाश नहीं कर सक्ता है। चित्रा पृथ्वी नित्य बनी रहती है। इस तरह अनंतबार कालके परिवर्तनमें छठे कालके अंतमें प्रलय होचुकी है। कहा है—

द्वासप्ततिजीवानां दंपतीमिथुनं तदा।
तत्राधिकारिभिर्देवैर्नीयंते गह्वरादिषु ॥ १८७ ॥
शेषमत्रार्यखण्डेऽस्मिन् कृत्रिमं भस्मसाद्भवेत्।
अकृत्रिमं तु केनापि कर्तुं शक्यं न चान्यथा ॥१८८॥

इसप्रकार भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणीके छः काल, फिर विरोध क्रमसे उत्सर्पिणीके छःकाल वर्तते रहते हैं।

मगधदेश वर्णन।

ऐसे भरतक्षेत्रमें मगधदेश पृथ्वीमें प्रसिद्ध बसता है। जिस देशकी प्रजा भोग सम्पदासे नित्य प्रसन्न है व जहां सदा उत्सव होते रहते हैं। जिस देशमें मेघोंकी वर्षा सदा हुआ करती है। वहां कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईतियां नहीं होती हैं, न वहां

नीतिका प्रचार है। राजाओंके द्वारा प्रजाको करकी बाधा नहीं पहुंचाई जाती है। यहां सदा सुकाल रहता है। वहांके खेत धान्यसे व वृक्षफलोंसे सदा फूलते रहते हैं। फलोंसे लदे हुए वृक्षोंसे मंद मंद सुगंध आती है। पथिकगण इसके रसको इच्छानुसार पीते हैं। जहांके कूप व सरोवर जलसे भरे हुए हैं व मनुष्योंके आतापको हरते हैं। वापिकाएं निर्मल जलसे भरी हुई मानवोंकी तृषाको बुझाती हैं। जिनके तटोंपर वृक्षोंकी छाया होरही है। वृक्षोंने सूर्यके आतापको रोक रखा है।

जिस देशमें बड़ी नदियां स्वच्छ जलसे पूर्ण कुटिलतासे दूरतक बहती थीं, जिससे सर्व मानव व पशुपक्षी लाभ उठाते थे।

झीलोंके तटोंपर हंस कमलकी दंडीके साथ कल्लोल कर रहे थे। वनोंमें बड़े २ मस्त हाथी विचर रहे थे। जहां बड़े २ दृढ़ वृषभ जिनके सींगोंमें कर्दम लगा है, थल कमलोंको देखकर पृथ्वीको खोद रहे थे। इस देशमें स्वर्गपुरीके समान नगर थे। कुरुक्षेत्रकी सड़कोंके समान चौड़ी सड़कें थीं। स्वर्गके विमानोंके समान सुन्दर घर थे व देवोंके समान प्रजा सुखसे वास करती थी। उस देशमें कहीं भंग उपद्रव न था। यदि भंग था तो जलकी तरंगोंमें था। प्रजामें मद न था, मद था तो हाथियोंमें था। दंड देना नहीं पड़ता था, दंड कमलोंमें था। सरोवरोंमें ही जलका समूह था, कोई नगर जलमग्न नहीं होता था। गाएं ठीक समयपर गाभिन होती थीं। जैसे मेघोंसे जल मिलता है वैसे गायोंसे मनुष्योंको दूध

मिलता था। उसको पीकर लोग हृष्टपुष्ट रहते थे। मगध देशकी स्त्रियां स्वभावसे ही सुन्दर थीं। पुरुष स्वभावसे ही चतुर थे। जहां हर घरमें कन्याएं स्वभावहीसे मिष्टवादिनी थीं।

मगध देशके लोग श्री अरहंतोंकी पूजामें व पात्रदानमें बड़ी प्रीति रखते थे। ब्रह्मचर्य पालनेमें बड़े शक्तिशाली थे। अष्टमी, चौदशको प्रोषधोपवास करनेमें रुचिवान थे। कहा है—

यत्र सत्पात्रदानेषु प्रीतिः पूजासु चार्हताम्।
शक्तिरात्यंतिकी शीले प्रोषधे च रतिर्नृणाम् ॥ १०८ ॥

नोट—इससे कविने यह दिखलाया है कि मगधदेशमें जैन धर्मका दीर्घकालसे प्रचार था। गृहस्थ लोग श्रावकोंके नित्यकर्ममें सावधान थे तथा सारा देश बड़ा सुखी था। प्रजा आनन्दमें समय विताती थी।

राजगृही नगर वर्णन।

इस मगध देशके एक भागमें राजगृही नगरी शोभायमान थी। जहांके राजसुभट इन्द्रके समान सदा शोभते थे। इस नगरके बड़े बड़े प्रासादोंके ऊपर लगाए हुए सुवर्णके कलश शोभते थे। जिससे नगरनिवासियोंको आकाशमें सैकड़ों चंद्रमाओंके चमकनेकी भ्रांति होती थी। वहां शिखरबंद श्री जिनमंदिर थे, जिनपर दण्ड सहित पताकाएं हिल रही थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था कि आकाशमें गंगा नदीके सैकड़ों प्रवाह बह रहे हैं।

महलोंकी खिडकियोंमें या झरोखोंमें सुन्दर स्त्रियां अपना

मुख बाहर निकाले हुए बैठी थीं। ऐसा विदित होता था कि झरोखोंमें कमल खिल रहे हैं। वहांकी नारियोंकी सुंदरता देखते देखते देवियां चकित होती थीं। इसीलिये मानो उनके नेत्रोंको कभी पलक नहीं लगती थी।

(नोट–देवदेवियोंके कभी पलक नहीं लगती। नेत्र सदा खुले रहते हैं। निद्रा नहीं आती) उस नगरमें नित्य नृत्य व गीत वादित्रकी ध्वनि होती थी। सुगंधित धूपका धूआं फैला रहता था। जिससे मयूरोंको मेघोंकी गर्जनाका भ्रम होता था और वे मोर ध्वनि करने लगते थे।

श्रेणिक महाराजका वर्णन।

इस राजगृहनगरमें राजाओंके राजा महाराज श्रेणिक राज्य करते थे जो बड़े बुद्धिमान् थे। अनेक भूपाल उनके चरणोंको मस्त नमाते थे। राजा श्रेणिकके शरीरमें सर्वही लक्षण शुभ थे, जिनका वर्णन करना कठिन है, तौ भी सामुद्रिकशास्त्र ज्ञानके लिये कुछ लक्षण कहे जाते हैं। राजाके शिरपर नीले व घूघरवाले बाल ऐसे शोभते थे मानों कामदेव रूपी काले सर्पके बच्चे ही प्रगट हुए हैं। भ्रमरके समान नेत्र थे, मुख कमलके समान था। जब राजा युद्ध करते थे उनके मुखके भीतरसे किरणें चारों तरफ फैल जाती थीं। वाणी बड़ी ही मधुर थी, फूलके रससे भी मीठी थी। राजाके दोनों नेत्र कर्ण तक लम्बे शोभते थे। उन नेत्रोंने सत्य शास्त्रोंका ही आश्रय लिया है। वे सिखारहे हैं कि बुद्धिमानोंको सच्च श्रुतको ही सीखना

चाहिये। राजाके कंठमें हार ऐसा शोभता था मानों ओसकी बूंद ही हों या मानों तारागणोंको लेकर चंद्रमा ही राजाकी सेवाके लिये आगया है। राजाके चौड़े वक्षस्थलमें चंदन चर्चा हुआ था। मानों सुमेरु पर्वतके तटपर चंद्रमाकी चांदनी छाई हुई है।

राजाके सिरके ऊपर मुकुट मेरुके समान शोभता था, मानों मेरुके दोनों तरफ नील व निषध पर्वत ही हों। यहां नील पर्वतके समान केशोंका भाग व निषिधके समान मुखका अग्रभाग तपाए सुवर्णके समान था। राजाके शरीरके मध्यमें नाभि नदीके आवर्तके समान गंभीर थी। मानो कामदेवने स्त्रीकी दृष्टि रोकनेको एक जलकी खाई ही खोद दी हो। राजाकी कमरका मंडल सुवर्णकी करधनीसे व कमरबंधसे वेष्ठित था, मानो जम्बूवृक्षके चारों तरफ सुवर्णकी वेदी खड़ी की गई है। दोनो जंघाएं स्थिर, गोल व संगठित थीं, मानों स्त्रियोंके मनरूपी हाथीके बांधनेके लिये स्थंभके समान थीं। दोनो चरण लाल थे व बड़े कोमल थे, वे जलकमलके समान शोभित थे, जिनमें लक्ष्मीने निवास किया था। राजा श्रेणिकके पास शास्त्ररूपी संपदा भी रूपसंपदाके समान ऐसी शोभायमान थी जिससे देखनेवालोंको शरदकालके चंद्रमाकी मूर्तिके देखनेके समान आनंद होता था। जैसा राजाका रूप सुखप्रद था वैसे ही उसका शास्त्रज्ञान आनन्ददाता था। राजाकी बुद्धि सर्व शास्त्रोंमें दीपकके समान प्रवीणतासे प्रकाश करती थी। वह शास्त्रोंके पद व वाक्योंके समझनेमें बहुत चतुर थी। राजा श्रेणिक मधुरभाषी था, सुन्दर तनधारी था,

विनयवान था, जितेन्द्रिय था, सन्तोषी था तथा राज्यलक्ष्मीको वश रखनेवाला था। श्रेणिक राजाको विद्याका प्रेम था, कीर्तिका भी अनुराग था वादित्र बजानेका राग था। उसके पास लक्ष्मीका विस्तार था, विद्वान लोग उसकी आज्ञाको माथे चढ़ाते थे।

राजा श्रेणिक ऐसा प्रतापी था कि इसके प्रतापकी अग्निकी ज्वालासे अभिमानी शत्रु क्षणमात्रमें इसतरह ठंडे होजाते थे जैसे आगके लगनेसे तिनके भस्म होजाते हैं। जैसे कमलकी सुगंधसे खिंचे हुए भौंरे कमलकी सेवा करते हैं वैसे बड़े बड़े राजा महाराजा श्रेणिकके चरणोंको सदा प्रणाम करते थे।

इसी राजाने पहले मिथ्यात्व अवस्थामें अज्ञानसे एक जैन मुनिराजको उपसर्ग किया था, तब तीव्र संक्लेशमई भावोंसे सातवें नर्ककी आयु बांधली थी। वही बुद्धिमान् श्रेणिक पीछे काललब्धिके प्रसादसे विशुद्ध भावधारी होकर क्षायिक सम्यग्दर्शनका धारी होगया। वह शीघ्र ही कर्मोंको नाश करनेवाला भावी उत्सर्पिणीकालमें प्रथम तीर्थंकर होगा। श्रेणिक राजाका सब वृत्तान्त अन्य कथा-ग्रन्थोंसे जानना चाहिये, यहां विस्तारभयसे संक्षेपमात्र ही कहा है।

धर्मात्मा रानी चेलना।

राजा श्रेणिककी धर्मपत्नी चेलना रानी पतिव्रता, व्रत, शील व धर्मसे पूर्ण सम्यग्दर्शनको धारनेवाली थी। यद्यपि अन्य अनेक स्त्रियां राजाके अंतःपुरमें थीं, परन्तु श्रेणिक चेलनाके सहवासमें ही अपनेको अर्धांगिनी सहित मानता था। वह चेलना रूप,

यौवन, सुंदरता, व गुणोंकी नदी थी। जैसे नदी समुद्रकी तरफ जाती है वैसे यह अपने भर्तारकी आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। जैसे कल्पवृक्षमें लगी हुई कल्पवेल शोभती है वैसे यह चेलना रति कार्यमें अपने भर्तारसे संलग्न हो शोभती थी।

श्री महावीर विपुलाचल पर।

एक दिन सभाके भीतर नम्रीभूत राजाओंसे सेवित महाराजा श्रेणिक सिंहासनपर विराजमान थे। जैसे सुमेरु पर्वतपर झरनें पड़ते हुए शोभते हैं वैसे राजापर ढुरते हुए चमर चमक रहे थे। चन्द्र-मण्डलके समान सिरपर सफेद छत्र शोभता था। उस समय वनके मालीने आकर महाराजके दर्शन किये। प्रणाम करके विनय सहित निवेदन करने लगा कि हे देव! मैंने अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष कुछ आश्चर्यकारी घटनाएं देखी हैं, उन सबका थोड़ासा भी वर्णन मैं नहीं कर सक्ता हूं। तौभी हे महाराज! कुछ अवश्य कहने योग्य कहता हूं—

इसी विपुलाचल पर्वतके मस्तकपर तीन जगतके गुरु महान् श्री वर्द्धमान तीर्थंकरका समवसरण विराजमान है। मैं उस सम-वसरणकी शोभा क्या कहूं! जहां स्वर्गके देवोंके समूह नौकरोंकी तरह भक्ति व सेवा कर रहे हैं। स्वर्गवासी देवोंके विमानोंमें क्षोभित समुद्रकी ध्वनिके समान घंटोंके शब्द होने लगे। ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें महान् सिंहनाद कासा शब्द होने लगा, जिससे ऐरावत हाथीकी मद दूर होजावे। व्यंतरोंके घरोंमें मेघोंकी गर्जनाको दूर

करता हुआ दुंदुभि बाजोंका शब्द होने लगा तथा धरणेंद्रोंके या भवनवासियोंके भवनोंमें शंखकी महान ध्वनि हुई।

चार प्रकारके देवोंने जब यह ध्वनि सुनी, इन्द्रोंके आसन कांपने लगे। भगवानको केवलज्ञान हुआ है, इस विजयको वे आसन सहन न कर सके। कल्पवृक्ष हिलने लगे, उनसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, सर्व दिशाएं निर्मल झलकने लगीं, आकाश मेघरहित स्वच्छ भासने लगा, पृथ्वी धूलरहित होगई, शीत व सुहावनी हवा चलने लगी। जब केवलज्ञान रूपी चंद्रमा पूर्ण प्रगट हुआ तब जगतरूपी समुद्र आनन्दसे फूल गया। इसी समय सौधर्म इन्द्र कल्पित देवकृत ऐरावत हाथीपर चढ़कर विपुलाचल पर्वतपर आया।

अभियोगजातिके देवने ऐसा मनोहर हाथीका रूप धारण किया कि उसके बत्तीस मुख थे व एक एक मुखमें आठ आठ दांत थे, एक२ दांतपर एक एक कमलिनीके आश्रय बत्तीस बत्तीस कमलके फूल थे, एक एक कमलके बत्तीस बत्तीस पत्ते थे, उन पत्तोंमेंसे हरएक पत्तेपर बत्तीस बत्तीस देवांगना नृत्य कररही थीं। उनका नृत्य अद्भुत था। ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ इन्द्र था। उसके आगे किन्नरी देवियां मनोहर कंठसे श्री जिनेन्द्रका जयगान कर रहीं थीं। बत्तीस व्यंतरेन्द्र चमर ढार रहे थे, सरपर मनोहर छत्र था, अप्सरा देवियें मनोहर शोभाके लिये साथमें चल रही थीं, आकाशमें देवी-देवोंके द्वारा नील, रक्त आदि रङ्ग छारहे थे। ऐसा मालूम होता था कि आकाशमें संध्याकालका समय छाया हुआ है। देवोंकी सेना पूजाकी सामग्री

लिये हुए आकाशमें चलती हुई ऐसी झलकती थी कि देवोंकी सेनारूपी समुद्रमें अनेक तरंगें उठ रही हैं। इन्द्रादि देवोंने दूरसे समवसरणको देखा। इसे देव शिल्पियोंने बड़ी भक्तिसे निर्माण किया था।

इस समवसरणकी चौड़ाई एक योजन (४ कोस) थी। यह इन्द्रनीलमणिकी भूमिसे शोभित था। यह समवसरण इन्द्रनीलमणिसे रचा हुआ गोल था। मानो तीन जगतकी स्त्रियोंके मुख देखनेका दर्पण ही है। जिस समवसरणको इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने रचा हो उसकी शोभाका वर्णन कौन करसक्ता है? प्रथम धूलीशाल कोट है जो पांच वर्णके रत्नचूर्णोंसे बना है। उसके चारों तरफ सुवर्णके ऊंचे स्तंभ हैं, जिसके तोरणोंमें रत्नमालाएं लटक रही हैं। फिर कुछ दूर जाकर गलियोंके मध्यमें सुवर्ण रचित ऊंचे मानस्तंभ हैं। जिनको दूरसे देखनेपर मानियोंका मान गल जाता है। (यहां एक अन्य ग्रंथका श्लोक हैं जिसका भाव हैं कि) मानस्थंभोंके आगे चलकर सरोवर है। निर्मल जलकी भरी वापिका है। फिर पुष्पोंकी वाटिकाएं हैं, फिर दूसरा कोट है, नाट्यशाला है, उपवन है, वेदियोंपर ध्वजाएं शोभायमान हैं, कल्पवृक्षोंका वन है, स्तुप है, महलोंकी पंक्तियें हैं, फिर स्फटिक मणिका कोट है, उससे आगे श्री मंडप है वहां बारह सभाएं हैं, जहां देव, मनुष्य, पशु, मुनि आदि विराजते हैं, मध्यमें पीठ है उसके ऊपर स्वयंभू अरहंत तीर्थंकर विराजते हैं। यह पीठ या चबूतरा तीन कटनीदार है। मणियोंकी शोभासे शोभित है। भगवान्‌के ऊपर चलते हुए चमरोंकी प्रतिबिम्ब पड़ती है

तब ऐसा मालूम होता है कि इन कटनियोंपर हंस ही बैठे हैं।

आठ मंगलद्रव्यकी सम्पदा शोभायमान है। ये मंगलद्रव्य जिनेंद्रके चरणकमलोंके निकट रहनेसे पवित्र हैं व गंगाके फेन समान निर्मल स्फटिक मणिसे निर्मापित हैं। तीन कटनीदार पीठ पर गंध-कुटी है, जिस पर तीन लोकके नाथ विराजमान हैं। यह पीठ ऐसा शोभता है मानों देवलोकके ऊपर सर्वार्थसिद्धिके समान है। इस पीठके नीचे सुगंधित धूपके घट मालाओंसे शोभित विराजित हैं। उस गंधकुटीके मध्यमें रत्नमई सिंहासन मेरुशिखरको तिरस्कार करता हुआ शोभता है। उस सिंहासनपर अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान चार अंगुल ऊंचे अधर अपनी महिमासे विराजमान हैं। कहा है—

विष्टरं तदलंचक्रे भगवानंततीर्थकृत्।
चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्ना पृष्ठतत्तलम्॥ २८९॥

आठ प्रातिहार्य।

इन्द्रादि देव बड़ी भक्तिसे पूजा कर रहे हैं। आकाशसे मेघ-धाराके समान फूलोंकी वर्षा होरही है। भगवान्के पास आठ प्रातिहार्य शोभायमान हैं। अशोक वृक्ष वायुसे अपनी शाखाओंको हिलाता हुआ व सूर्यके आतापको रोकता हुआ भगवानके पास शोभ रहा है। चंद्रमाकी चांदनीके समान धवल तीन छत्र शोभायमान हैं, मानों चंद्रमा तीन रूप बनाकर तीन जगतके गुरुकी सेवा कररहे है। यक्षों द्वारा ढोरे हुए चमरोंकी पंक्तियां क्षीरसमुद्रकी तरङ्गोंके समान शोभ रही हैं। भगवानके शरीरकी चमकमें पड़ती हुई ऐसी

मालूम होती है, मानों शरदकालके चंद्रमाकी चांदनी ही फैली हो। आकाशमें देवदुंदुभी बाजे ऐसी मधुर ध्वनिसे बज रहे हैं कि मोरगण मेघोंके आनेकी शंकासे मदसे पूर्ण हो राह देख रहे हैं।

भगवानकी देहका प्रभामंडल बड़ा ही शोभायमान है, जिसके प्रकाशसे स्थावर जंगम जगत मानो झलक रहा है। भगवानके मुख-कमलसे मेघकी गर्जनाके समान दिव्यध्वनि प्रगट होरही है, जिससे भव्य जीवोंके मनके भीतरका मोह—अंधकार नाश होरहा है, जैसे प्रकाशसे अंधकार दूर होजाता है।

हे महाराज! इसतरह आठ प्रातिहार्योंसे शोभित व अनेक देवोंसे सेवित श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र विपुलाचल पर्वतपर विराजित हैं। उनके विराजनेका ऐसा महात्म्य है कि जिनका जन्मसे वैरभाव है ऐसे विरोधी पशु पक्षियोंने भी परस्पर वैरभाव त्याग दिया है। शांतिसे सिंह मृग आदि पास पास बैठे हैं। जिनका किसी कार-णसे इस शरीरमें रहते हुए परस्पर वैरभाव होगया था वे भी भग-वानके निकट आकर वैरभाव छोड़कर शांतिसे तिष्ठे हुए हैं। महाराज! हस्तिनी सिंहके बालकको दूध पिला रही है। मृगोंके बालक सिंह-नीको माताकी बुद्धिसे देख रहे हैं। महाराज! वहां सर्पोंके फणोंपर मेढक निःशंक बैठे हैं, जिसतरह पथिकजन वृक्षोंकी छायामें आश्रय लेते हैं।

महाराज! सर्व ही वृक्ष सर्व ही ऋतुके पत्तोंसे व फलोंसे फल रहे हैं और आनंदके मारे लम्बी शाखाओंको हिलाते हुए नृत्य कर

रहे हैं। खेतोंमें बडे स्वादिष्ट धान्य पक रहे हैं। सर्व प्रकारकी सर्व रोगनाशक व पौष्टिक औषधियां प्रजाके सुखके लिये प्रगट होरही हैं। भगवानके प्रतापसे दुर्भिक्ष आदि संकट इसीतरह मूलसे नाश हो गए हैं जैसे सूर्यके उदयसे अंधकार विला जाता है। हे महाराज! श्री महावीर जिनेन्द्रके विराजनेसे एकसाथ इतने चमत्कार हो रहे हैं कि मैं इस समय कहनेको असमर्थ हूं।

श्रेणिकका वीर समवसरणमें आना।

इस तरह वनपालके मुखसे सुखप्रद वचन सुनकर महाराज श्रेणिकका शरीर आनन्दरूपी अमृतसे पूर्ण होगया। इसी समय श्री जिनेन्द्रकी भक्तिके भावसे सिंहासनसे उठकर भगवानके सम्मुख मुख करके सात पग चलकर श्रेणिकने तीन दफे नमस्कार किया। तथा अपने सर्व परिवारको लेकर श्री महावीर भगवानकी पूजाके लिये जानेकी तय्यारी करने लगा। भक्तिभावसे पूर्ण होकर धर्मकी प्रभावनाके लिये बड़े ठाठबाटसे वंदनाके लिये चला। सेनाको साथ लिया उसका क्षोभ हुआ, आनंदप्रद बाजोंकी ध्वनि सब दिशाओंमें छागई। हाथी, घोड़े, रथ, पैदलोंकी सेना साथ थी। हजारों ध्वजाएं दूरसे चमकती थीं। महान साज-सामानके साथ महाराज श्रेणिक समवसरणमें पहुंचे। वह समवसरण सूर्य मंडलकी प्रभाको जीतनेवाला शोभायमान होरहा था। प्रथम ही मानस्थंभोंकी प्रदक्षिणा देकर पूजा की। फिर समवसरणकी शोभाको क्रमशः देखते हुए महान आश्चर्यमें भर गया।

श्री मंडपके वहां पहुंचा, धर्मचक्रकी प्रदक्षिणा दी, पीठकी पूजा की, फिर गंधकुटीके मध्यमें सिंहासनपर उदयाचलपर सूर्यके समान विराजित श्री जिनेन्द्रका दर्शन किया। जिनेन्द्र पर चमर ढर रहे थे। भगवान आठ प्रातिहार्य सहित विराजमान थे। तीन लोकके प्रभु जिनेश्वरदेवकी गंधकुटीकी तीन प्रदक्षिणा दी, फिर बड़ी भक्तिसे श्री जिनेन्द्रकी पूजा की। पूजाके पीछे बड़े भावसे स्तुति की। उस स्तुतिका भाव यह है–आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। आप दिव्यवाणीके स्वामी हैं, आप कामदेवको जीतनेवाले हैं, पूजनेयोग्य हैं, धर्मकी ध्वजा हैं, धर्मके पति हैं, कर्मरूपी शत्रुओंके क्षय करनेवाले हैं, आप जगतके पालक हैं, आपका सिंहासन महान शोभायमान है, आपके पास अशोक वृक्ष शाखाओंसे हिलता हुआ, ऊंचा व आश्रय करनेवालोंको छाया देता हुआ विराजमान है। यक्ष भक्तिसे चमर ढारते हुए मानो भक्तजनोंके पापोंको उड़ा रहे हैं। स्वर्गपुरीसे पुष्पकी वृष्टि होरही है, मानो स्वर्गकी लक्ष्मी हर्षके मारे अश्रुबिंदु क्षेपण कर रही है। आकाशमें देवदुंदुभि बाजे बजते हैं। मानो आपकी जयघोषणा कर रहे हैं कि आपने सर्व कर्मशत्रुओंको विजय किया है। आपमें शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चारित्र, क्षायिक सम्यग्दर्शन, अनंतदानादि लब्धियां हैं। मोतियोंसे शोभित आपके ऊपर तीन छत्र बिराजित हैं जो आपके निर्मल चारित्रको प्रगट कर रहे हैं। आपके शरीरका प्रभामण्डल फैला हुवा है, मानो आपका पुण्य आपको अभिषेक

कर रहा है। आपकी दिव्यध्वनि जगतके प्राणियोंके मनको पवित्र करती है। आपका ज्ञान सूर्यका प्रकाश मोहरूपी अंधकारको दूर कर रहा है।

आपका ज्ञान अनंत है, अनुपम है व क्रमरहित है। आपका सम्यग्दर्शन क्षायिक है, सर्व विश्वको जानते हुए भी आपको किंचित् खेद नहीं होता है। यह आपके अनंत वीर्यकी महिमा है। आपके भावोंमें रागादिकी कलुषता नहीं है। आप क्षायिक चारित्रसे शोभित हैं। आपके पास स्वाधीन आत्मासे उत्पन्न अतीन्द्रिय पूर्ण सुख है। जैसे निर्मल जल शीतल व मलसे रहित भासता है वैसे आपका सम्यग्दर्शन मिथ्यादर्शनकी कीचसे रहित शुद्ध भासता है। अनंत दान भोगोपभोग लब्धियां आपके पास हैं, परन्तु उनसे कोई प्रयोजन आपको नहीं है, क्योंकि आप कृतकृत्य हैं, बाहरी सर्व विभूतिका सम्बन्ध आपके लिये निरर्थक है। आप तो अनंत गुणोंके स्वामी हैं। मुझ अल्पबुद्धिने कुछ गुणोंसे आपकी स्तुति की है। इसप्रकार परमैश्वर्य सहित श्री भगवान जिनेन्द्रकी स्तुति करके राजा श्रेणिक अपने मनुष्योंके बैठनेके कोठेमें गया और वहां बैठ गया।

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगधदेश विख्यात है। उसमें श्री राजगृह नगरी राजधानी है। उसका राजा महाराज श्रेणिक श्री विपुलाचल पर्वतपर बिराजित श्री वर्द्धमान भगवानके समवसरणमें जाकर भक्तिपूर्वक तिष्ठा है।

दूसरा अध्याय

श्री जम्बूस्वामी पूर्वभव–भावदेव भवदेव स्वर्गगमन।

(श्लोक २४१ का भाव)

संसार दुःखोंको हरनेवाले तीर्थंकर श्री संभवनाथको व इन्द्रोंसे वन्दनीक श्री अभिनन्दनस्वामीको हम भावसहित नमस्कार करते हैं।

तब समवशरणमें विराजित राजा श्रेणिक प्रफुल्लित कमल समान दोनों हाथोंको जोड़कर व भक्तिसे नतमस्तक होकर श्री जगतके गुरुसे तत्वोंका स्वरूप जाननेकी इच्छासे यह प्रार्थना करने लगा– हे भगवान् सर्वज्ञ ! मैं जानना चाहता हूं कि तत्वोंका विस्तार क्या है, धर्मका मार्ग क्या है, व उसका कैसा फल है। पुण्यवान महाराज श्रेणिकके प्रश्न करनेपर भगवान् श्री महावीरने गंभीर वाणीसे तत्वोंका व्याख्यान किया।

निरक्षरी ध्वनि।

व्याख्यान करते हुए महान् वक्ताके मुखकमलमें कोई विकार नहीं हुआ जैसे–दर्पणमें पदार्थोंके झलकनेपर भी कोई विकार नहीं होता है। तालु व ओष्ठ भी हिले नहीं। सर्व अंगसे उत्पन्न होनेवाली निरक्षरी ध्वनि भगवानके मुखसे प्रगट हुई–स्वयंभूके मुखसे वाणी ऐसी खिरी जैसे पर्वतकी गुफासे ध्वनि प्रगट हो। उस वाणीमें अर्थ भरा हुआ था। कहा है–

ताल्वोष्ठमपरिस्यंदि सर्वांगेषु समुद्भवाः।
अस्पृष्टकरणा वर्णा मुखादस्य विनिर्ययुः॥ ७॥

स्फुरद्गिरिगुहोद्भूतप्रतिध्वनितसंनिभः।
अस्पष्टार्थको निरागाद्ध्वनिः स्वायंभुवात् मुखात् ॥ ८ ॥

भगवानकी इच्छा बिना भी जिनवाणी प्रगट हुई—महान पुरुषोंकी, योगाभ्यासले उत्पन्न शक्तियोंकी संपदा अचिंत्य है। चिंतवनमें नहीं आसक्ती है। कहा है—

विवक्षामंतरेणापि विविक्ताऽसीत् सरस्वती।
महीयसामचिन्त्या हि योगजाः शक्तिसम्पदः ॥ ९ ॥

सात तत्वकथन।

भगवानकी वाणी प्रगट होनेके पीछे गौतमगणधरने कहा—हे श्रेणिक! मैं अनुक्रमसे जीव आदिसे लेकर काल पर्यंत तत्वार्थके स्वरूपको अनुक्रमसे कहता हूं सो सुनो। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्व सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानके विषय हैं। पुण्य व पाप पदार्थ स्वभावसे आस्रव व बन्धमें गर्भित हैं इसलिये तत्वज्ञानी आचार्यने उनको तत्वोंमें नहीं गिना है।

द्रव्य लक्षणको धारण करनेसे लोकमें छः द्रव्य हैं। जिसमें गुण व पर्याय हो उसको द्रव्य कहते हैं। जीव गुणपर्याय धारी है इसलिये द्रव्यका लक्षण रखनेसे द्रव्य है। पुद्गलके भी गुणपर्याय होते हैं इसलिये पुद्गलको भी द्रव्य कहते हैं। इसीतरह गुणपर्यायके धारी अन्य चार द्रव्योंकी भी सत्ता है अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल प्रदेशोंकी बहुलता रखनेवाले द्रव्योंको अस्तिकाय कहते

हैं। ऐसे अस्तिकाय स्वभाववाले पांच द्रव्य हैं। कालके कायपना नहीं है। कालगुणके एक ही प्रदेश है इसलिये कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है। जितने आकाशको एक अविभागी पुद्गलका परमाणु रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं। इस मापसे मापने पर काल सिवाय अन्य पांच द्रव्योंके बहु प्रदेश मापमें आवेंगे। इसलिये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म व आकाश अस्तिकाय हैं। जीव आदि पदार्थोंका जैसा उनका यथार्थ स्वरूप है वैसा ही श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तथा उनको वैसा ही जानना सम्यग्ज्ञान है। कर्मोंके बंधनके कारण भावोंका जिससे निरोध हो वह चारित्र है। इन तीनोंकी एकतासे कर्मोंका नाश होता है इसलिये यह रत्नत्रय मोक्षका मार्ग है। सम्यग्दर्शनको सम्यग्ज्ञानसे पहले इसलिये कहा गया है कि सम्यग्दर्शनके विना ज्ञानको अज्ञान या मिथ्या ज्ञान कहा जाता है।

यहां द्रव्यसंग्रहकी गाथा दी है, जिसका अर्थ है—जीवादि तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। निश्चयसे वह आत्माका स्वभाव है। संशय, विमोह, विभ्रम रहित ज्ञान तब ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है जब सम्यग्दर्शन प्रगट होजावे। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही चारित्र अपना वास्तव कार्य करनेको समर्थ होता है। यदि ये दोनों न हों तो वह चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाता है। इन तत्वोंका लक्षण तत्वज्ञानके लिये कुछ आगमानुसार कहा जाता है। द्रव्योंमें अस्तित्व आदि सामान्य स्वभाव है। तथा ज्ञानादि विशेष स्वभाव हैं।

जीवतत्व ।

यह जीव सदासे सत् है, अनादि अनंत है, नित्य है, स्वतः सिद्ध है, मूलमें पुद्गल सम्बन्धी शरीरोंसे रहित है, असंख्यात प्रदेशोंको रखनेवाला है, अनंत गुणोंका धारी है, पर्यायकी अपेक्षा जीवमें व्यय उत्पाद होता है। जीवका विशेष लक्षण चेतना है, वह ज्ञाताद्रष्टा है, वह कर्ता है, यही भोक्ता है, निश्चयसे अपने ही शुद्ध भावोंका कर्ताभोक्ता है। अशुद्ध निश्चयसे रागद्वेषादि भावोंका कर्ता व भोक्ता है। व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म व नोकर्मका कर्ता व भोक्ता है।

संसारदशामें समुद्घातके सिवाय प्राप्त शरीरके प्रमाण आकारका धरनेवाला है। वेदना, कषाय, विक्रिया, आहारक, तैजस, मारणांतिक व केवल समुद्घातमें कुछ कालके लिये शरीरसे बाहर फैलता है, फिर संकोच कर शरीराकार होजाता है। नाम कर्मके उदयसे दीपकके प्रकाशकी तरह संकोच विस्तारके कारण छोटे व बड़े शरीरमें छोटे व बड़े शरीर प्रमाण होता है। मोक्ष होनेपर अंतिम शरीर प्रमाण रहता है। जब इस जीवके सर्वकर्मोंका नाश होजाता है तब यह जीव शुद्ध ज्ञानादि गुणोंके साथ ऊर्द्धगमन स्वभावसे लोकके ऊपर सिद्धक्षेत्रमें विराजता है।

इस जीवको प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान्, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञ, ज्ञानी आदि नामोंसे कहते हैं। क्योंकि संसारके जन्मोंमें यह जीता है, जीता था व जीवेगा। इसलिये इसको जीव

कहते हैं। संसारसे छूटकर मोक्ष होनेपर भी सदा जीता रहता है, तब इसको सिद्ध कहते हैं। जीवके तीन भेद भी कहे जाते हैं— भव्य, अभव्य और सिद्ध। जिनके सुवर्ण धातु पाषाणके समान सिद्ध होनेकी शक्ति है, उनको भव्य कहते हैं। अन्ध पाषाणके समान जिनमें सिद्ध होनेकी शक्ति नहीं है उनको अभव्य कहते हैं। अभव्योंको कभी भी मोक्षके कारणरूप सामग्रीका लाभ नहीं होगा। जो कर्मबन्धसे मुक्त होकर तीन लोकके शिखर पर विराजमान होते हैं और जो अनंत सुखके भोक्ता हैं वे कर्मोंके अंजनसे रहित निरंजन सिद्ध हैं। इस तरह जीवतत्वका संक्षेपसे कथन किया गया। अब अजीव पदार्थको कहता हूं, सुनो—

अजीव तत्व।

जिसमें जीव तत्व न हो उसको अजीव कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य। जो द्रव्य अमूर्तीक लोकव्यापी है व जो जीव और पुद्गलके गमनमें उदासीन निमित्त कारण है वह धर्म द्रव्य है, यह गमनमें प्रेरणा नहीं करता है। जैसे मछलीके इच्छापूर्वक गमनमें जल सहायक है, जल मछलीको प्रेरणा नहीं करता है, इसी तरहका लोकव्यापी अमूर्तीक अधर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलोंके ठहरनेमें उदासीन निमित्त कारण है। जैसे वृक्षकी छाया पथिकको ठहरानेमें निमित्त कारण है—प्रेरक नहीं है, इसी तरह अधर्म भी प्रेरक नहीं है। आकाश द्रव्य, अनंत व्यापी, अमूर्तीक, हलन चलन क्रिया रहित,

स्पर्शमें न आने योग्य एक द्रव्य है, जो जीवादि पदार्थोंको अवगाह देता है। काल द्रव्य वर्तना लक्षण है, सर्व द्रव्य अपने २ गुणोंकी पर्यायोंमें वर्तन करते हैं उनके लिये कालद्रव्य निमित्त कारण है। जिस तरह कुम्हारके चक्रके स्वयं घूमनेमें नीचेकी शिला कारण है इसी तरह स्वयं परिणमन करनेवाले द्रव्योंकी पर्याय पलटनेमें निमित्त कारण काल है ऐसा पण्डितोंने कहा है। व्यवहार समय घटिका आदि कालसे ही मुख्य या निश्चय कालका निर्णय होता है, क्योंकि निश्चय कालके विना व्यवहार काल नहीं होसकता। व्यवहार काल परम सूक्ष्म एक समय है, जो निश्चय काल–कालाणु द्रव्यकी पर्याय है। जैसे बाहीक या पंजाबीको देखनेसे पंजाबका निश्चय होता है, पंजाब न हो तो पंजाबका निवासी नहीं कहा जासक्ता। काल द्रव्य कालाणुरूपसे असंख्यात है, लोकाकाश प्रमाण प्रदेशोंमें भिन्न २ रत्नोंकी राशिके समान व्यापक है। क्योंकि एक कालाणुका प्रदेश दूसरे कालाणुके प्रदेशसे कभी मिलता नहीं है। इसलिये कालको काय रहित कहते हैं। शेष पांच द्रव्योंके प्रदेश एकसे अधिक हैं व परस्पर मिले हुए हैं इसलिये इन पांच द्रव्योंको पंचास्तिकाय कहते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार अजीव पदार्थ स्पर्शादि गुणरहित होनेसे अमूर्तीक हैं, केवल पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, क्योंकि उनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जाता है। पुद्गलके भेद सुनो:—

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन चार मुख्य गुणोंके धारी पुद्गल द्रव्यको

पुद्गल इसलिये कहते हैं कि उसमें पूरण और गलन होता है। परमाणु मिलकर स्कंध बनते हैं, स्कंधसे छूटकर परमाणु बनते हैं तथा परमाणुओंमें भी पुरानी पर्यायका गलन व नई पर्यायका प्रकाश होता है। पुद्गलोंके मूल दो भेद हैं, परमाणु और स्कंध—परमाणुओंमें रूक्ष तथा स्निग्ध गुणके कारण परस्पर बंध होनेसे स्कंध बनते हैं। दो अंश अधिक चिकना या रूखा गुण होनेसे बंध होजाते हैं, जैसे १२ अंश चिकना परमाणु १४ अंश चिकने या रूक्षमें मिलजायगा या १९ अंश रूखा परमाणु १७ अंश रूखे या चिकने परमाणुमें मिल जायगा। जिसमें अधिक गुण होगा वह दूसरे परमाणुको अपने रूप कर लेगा। जघन्य अंशधारी चिकने व रूखे परमाणुका बन्ध नहीं होता है। स्कंधोंके अनेक भेद दो परमाणुओंके स्कंधसे लेकर महा स्कंध पर्यंत हैं। छाया, धूप, अंधेरा, प्रकाश आदिके स्कंध होते हैं।

पुद्गलोंके छः भेद किये गए हैं—१ सूक्ष्म सूक्ष्म, २ सूक्ष्म, ३ सूक्ष्म स्थूल, ४ स्थूल सूक्ष्म, ५ स्थूल, ६ स्थूल स्थूल। सूक्ष्म सूक्ष्म एक अविभागी पुद्गका परमाणु है जो देखनेमें नहीं आता। अनुमानसे ही जाना जाता है। सूक्ष्म पुद्गलोंका दृष्टांत कार्मणवर्गणा है, जिसमें अनंत परमाणुओंका संयोग है तौभी वह इन्द्रियोंके गोचर नहीं है। चार इन्द्रियोंका विषय शब्द, स्पर्श, रस, गंध सूक्ष्म स्थूल हैं। ये चारों आंखसे नहीं दिखलाई पडते हैं। स्थूल सूक्ष्म पुद्गल छाया, प्रकाश, आतप आदि हैं, जो आंखसे दिखलाई पडते हैं परन्तु उनको न तो ग्रहण किया जा सक्ता है न उनका घात किया जा सक्ता है। वहनेवाले

द्रव्य जल आदि स्थूल हैं। पृथ्वी आदि मोटे स्कंध जो टुकड़े करने पर स्वयं नहीं मिल सक्ते स्थूल स्थूल हैं।

आस्रव तत्व।

आस्रवके दो भेद हैं—भावास्रव और द्रव्यास्रव। कर्मके निमित्तसे होनेवाले जीवके अशुद्ध भावोंको भावास्रव कहते हैं। आगमानुसार भावास्रवके चार भेद हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग। जीवादि तत्वोंका व सच्चे देव शास्त्र गुरुका श्रद्धान न होना मिथ्यात्व है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहमें वर्तन अविरति है। क्रोध, मान, माया, लोभके वश होना कषाय है। मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्मामें चंचलता होना योग है। इन भावास्रवोंके निमित्तसे कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल कर्मरूप अवस्थाके होनेको प्राप्त होते हैं वह द्रव्यास्रव है।

बन्ध तत्व।

आस्रवपूर्वक बन्ध होता है अर्थात् कर्म बन्धके सम्मुख होकर बंधते हैं। इस बंधतत्वके भी दो भेद हैं—भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। जिन अशुद्ध भावोंसे बन्ध होता है वह भावबन्ध है। कर्मवर्गणाका कार्मण शरीरके साथ बन्धजाना द्रव्यबन्ध है। बंधके चार भेद हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप स्वभाव पड़ना प्रकृतिबन्ध है। कितनी संख्या किस कर्मकी बंधी सो प्रदेशबंध है। कर्मोंमें कितनी मर्यादा पड़ी यह स्थितिबन्ध है। उन कर्मोंमें तीव्र व मंद फलदान

शक्ति पड़ना अनुभाग बंध है। चारों ही बंध एक साथ योग और कषायोंसे होते हैं।

संवर तत्व।

आस्रवके रोकनेको संवर कहते हैं। जिन शुद्ध भावोंसे कर्मोंका आना रुकता है वह भाव संवर है। कर्मोंके आस्रवका रुक जाना यह द्रव्य संवर है।

निर्जरा तत्व।

कर्मोंके आत्मासे अलग होनेको निर्जरा कहते हैं। निर्जराके दो भेद हैं-सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। जो कर्म पककर अपने समयपर झड़ता है वह सविपाक निर्जरा है। जो कर्म पकनेके पहले शुद्ध भावोंसे दूर किया जाता है वह अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा संवरपूर्वक होती है व यही कार्यकारी है। तत्वज्ञानियोंने इस निर्जराके दो भेद कहे हैं-जिन शुद्ध भावोंसे कर्मकी निर्जरा होती है वह भाव निर्जरा है। उन शुद्ध भावोंके प्रभावसे कर्मोंका झड़ जाना द्रव्य निर्जरा है।

मोक्ष तत्व।

जीवका सब कर्मोंके क्षय होनेपर अशुद्धावस्थाको छोड़कर शुद्ध अवस्थाको प्राप्त होना मोक्ष है। मोक्ष पर्यायमें अनंत ज्ञान, अनंत आनंद आदि स्वभावोंका प्रकाश स्वतः होजाता है।

पुण्य पाप पदार्थ।

शुभ भावोंसे पुण्य कर्मका व अशुभ भावोंसे पाप कर्मका बंध

होता है। अहिंसादि व्रतोंके पालनेसे शुभ भाव होते हैं। हिंसादि पापोंसे अशुभ भाव होते हैं।

इस प्रकार श्री गौतमस्वामीने श्रेणिक महाराजको सात तत्वोंका वर्णन किया। इतने हीमें आकाशसे कोई तेजमई पदार्थ उतरता हुआ दिखलाई पड़ा। ऐसा झलकता था कि सूर्यका बिम्ब अपना दूसरा रूप बनाकर पृथ्वीतलपर वीतराग भगवानकी समवशरण लक्ष्मीके दर्शन करनेको आया हो।

विद्युन्माली देवका आना।

महाराजा श्रेणिक इस अकस्मात्को देखकर आश्चर्यमें भर गए। गौतमस्वामीसे पुनः पूछा कि यह क्या दिखलाई पड़ रहा है? ऐसा पूछनेपर गौतमस्वामी कहने लगे कि हे राजन्! यह महाऋद्धिका धारी विद्युन्माली नामका देव है, प्रसिद्ध है। अपनी चार महादेवियोंको लेकर धर्मके अनुरागसे श्री जिनेन्द्रकी वन्दना करनेके लिये शीघ्र २ चला आरहा है। यह भव्यात्मा आजसे सातवें दिन स्वर्गसे चयकर मानव जन्ममें आयगा। यह चरम शरीरी है, उसी मनुष्य भवसे मोक्ष जायगा।

श्रेणिकके प्रश्न।

गौतमस्वामीके वचन सुनकर राजा श्रेणिक भक्तिभारसे पूर्ण हो व परम प्रीतिपूर्वक तीन जगतक गुरु श्री जिनेन्द्र भगवानसे प्रार्थना करने लगे कि हे कृपानिधि स्वामी! आपने अपनी दिव्यध्वनिसे यह उपदेश किया था कि जब देवोंकी आयु छः मास शेष रह जाती

है तब उनके गलेमें पुष्पोंकी माला मुरझा जाती है, शरीरकी चमक मन्द पड़जाती है, उनके कल्प वृक्षोंकी ज्योति कम होजाती है, महाराज! इस देवके मुखका तेज सब दिशाओंमें व्याप्त है। इसका शरीर बड़ा तेजस्वी है, यह प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। यह बात बड़े आश्चर्यकी है। तब सिंहासन पर बिराजमान श्री जिनेन्द्ररूपी देवने राजा श्रेणिकके संशयरूपी अंधकारको दूर करते हुए गम्भीर वाणीसे यह प्रकाश किया कि हे राजन्! इस देवका सर्व वृतान्त आश्चर्यकारक है। इस देवकी कथाको सुननेसे धर्मप्रेमकी वृद्धि होगी व संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न होगा। तू चित्त लगाकर सुन।

भावदेव भवदेव ब्राह्मण।

इसी धनधान्य सुवर्णादिसे पूर्ण मगधदेशमें पूर्वकालमें एक वर्द्धमान नामका नगर था। वह नगर वन व उपवनोंकी पंक्तिसे व कोट खाई आदिसे शोभनीक था। विशाल कोटके चार विशाल द्वार थे। जहांकी महिलाएं भी सुन्दर थीं, वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थीं। वहां ऐसे ब्राह्मण रहते थे जो वेद मार्गको जाननेवाले थे। पुण्यके व हितके लाभके लिये यज्ञमें हिंसा पशुवध करते थे। मिथ्यात्वके अंधकारसे कुमार्गगामी विप्र यज्ञोंमें गौ, हाथी, बकरादि यहां तक कि मानवकी भी बलि करते थे। उन्हींमें एक आर्यावसु नामका ब्राह्मण रहता था, जो वेदका ज्ञाता व अपने धर्म कर्ममें प्रवीण था। उसकी स्त्री सोमशर्मा बड़ी पतिव्रता सीताके समान साध्वी तथा पतिकी आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। उस ब्राह्मणके दो पुत्र भावदेव, भवदेव

थे जो चंद्रमा व सूर्यके समान शोभते थे। धीरे २ दोनों पुत्रोंने विद्याभ्यास करके वेदशास्त्र, व्याकरण, वैद्यक, तर्क, छन्द, ज्योतिष, संगीत, काव्यालंकार आदि विषयोंमें प्रवीणता प्राप्त की। वे विद्या-रूपी समुद्रके पार पहुंच गए।

ये दोनों ब्राह्मण वाद-विवाद करनेमें बहुत प्रवीण थे, ज्ञान-विज्ञानमें चतुर थे। दोनो भाइयोंमें ऐसा प्रेम था, जसा पुण्यके साथ सांसारिक सुखका प्रेम होता है। ये दोनो विना किसी उपद्रवके सुखसे बढ़कर कुमार वयको प्राप्त हुए। पूर्व पाप-कर्मके उदयसे उनके पिता महान व्याधिसे पीड़ित होगए। उसको कोढ़का रोग हो गया। शरीरभरमें कुष्टरोग फैल गया। कान, आंख, नाक गलने लगे, अंग उपङ्ग सड़ने लगे, तीव्र वेदनासे वह ब्राह्मण व्याकुल हो गया। यह प्राणी अज्ञानसे पापकर्म बांध लेता है। जब उस कर्मका फल दुःख होता है तब उसको सहना दुष्कर होजाता है। जो कोई स्वादिष्ट भोजनको अधिक मात्रामें खालेता है, जब वह भोजन पचता नहीं तब वह दुःखदाई होजाता है, ऐसा जानकर बुद्धि-मानको उचित है कि वह इन्द्रियोंके विषयोंको विषके समान कटुक फलदाई जानकर छोड़ दे और विकार रहित मोक्षपदके देनेवाले धर्मामृतका पान करे। कहा है:—

अज्ञानेनार्यंते कर्म तद्विपाको हि दुस्तरः।
स्वादु संभोज्यते पथ्यं तत्पाके दुःखवानिव॥ ८८॥
मत्वेति धीमता त्याज्या विषया विषसंनिभाः।
धर्मामृतं च पानीयं निर्विकारपदप्रदम्॥ ८९॥

वह ब्राह्मण महान दुःखी होकर अपना मरण नित्य चाहता था। मरण न होते हुए वह पतंगके समान अग्निकी चितापर पड़कर भस्म होगया। अपने पतिके वियोगसे शोकपीडित होकर सोमशर्मा ब्राह्मणी भी उसीकी चितामें भस्म होगई। मातापिता दोनोंके मरनेपर ये दोनो भावदेव व भवदेव अत्यंत दुःखी हुए—शोकके संतापसे तप्त होगए। करुणा उत्पादक शब्दोंसे विलाप करने लगे। उनके निजी बन्धुओंने समभावसे बहुत समझाया तब उन्होंने शोकको छोड़कर मातापिताकी मरणक्रिया की। जैसी ब्राह्मणोंकी रीति है उसके अनुसार तर्पण आदि क्रिया की। फिर शोकके वेगोंको दूर करके वे दोनों ब्राह्मण पहलेके समान अपने घरके कामोंमें लग गए।

बहुत दिनोंके पीछे उस नगरमें एक सौधर्म नामके मुनिराज पधारे, जो धर्मकी मूर्ति ही थे। जो बाहरी व भीतरी सर्व परिग्रहके त्यागी थे, जन्मके बालकके समान नग्न स्वरूपके धारी थे, मन, वचन, कायकी गुप्तिसे सज्जित थे, जैन शास्त्रोंके अर्थमें शंका रहित थे, परन्तु व्रतोंसे कभी च्युत न होजावें इस शंकाको रखते थे, सर्व प्राणी मात्रपर दयालु थे, तथापि कर्मोंके नाशमें दया रहित थे, मिथ्या एकांत मतके खण्डनमें स्याद्वाद बलके धारी थे, सूर्यके समान तेजस्वी थे, चंद्रमाके समान सर्वांग शांत थे, मेरू पर्वतके समान उन्नत व धीर थे। वे जैन साधु संसारकी दावानलसे तप्त प्राणियोंको मेघके समान शांतिदाता थे। भवरूपी चातकोंको धर्मोपदेशरूपी जलसे पोषनेवाले थे, आलस्य रहित थे, इंद्रियोंके जीतनेवाले थे, ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण थे,

गुणोंके सागर थे, वीतराग थे, गणके नायक थे, शत्रु मित्र, जीवन मरणमें समान भावधारी थे। लाभ अलाभमें व मान अपमानमें विकार रहित थे, रत्नत्रय धारी थे, धीर थे, तप रूपी अलंकारसे भूषित थे, संयम पालनेमें निरन्तर सावधान थे, वैराग्यवान होनेपर भी प्रायः करुणा रससे पूर्ण होजाते थे। ऐसे मुनिराज आठ मुनियोंके संघ सहित वनमें विराजमान हुए। कहा है—

सर्वसंगविमुक्तात्मा बाह्याभ्यंतरभेदतः।
यथाजातस्वरूपोऽपि सज्जो गुप्तश्च गुप्तिभिः॥ ९६॥
स्याद्वादी कुमतध्वान्ते तेजस्वी भानुमानिव।
सौम्यः शशीव सर्वांगे धीरो मेरुरिवोन्नतः॥ ९८॥

(नोट—जैन साधुका ऐसा स्वरूप होना चाहिये।)

अवसर पाकर मुनिराजने दयामई जैन धर्मका उपदेश देना आरम्भ किया।

मुनिराजका धर्मोपदेश।

हे भव्यजीवो! तुम सब श्रवण करो, यह धर्म उत्तम है। स्वर्ग तथा मोक्षका बीज है, शुभ है व तीन लोकके प्राणियोंका रक्षक है।

इस संसारमें सर्व ही प्राणी यहांतक कि स्वर्गके देव भी सब अपने२ कर्मोंके उदयके वश हैं। उनको रंच मात्र भी सुख नहीं है। तो भी मोहके माहात्म्यसे यह मूढ़ संसारी प्राणी ज्ञानके लोचनको बन्द किये हुए इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होकर सुख मान रहा है। यह शरीर अनित्य है, पुत्र-पौत्र आदि नाशवन्त हैं, संपदा,

घर, स्त्री आदि सब छूट जानेवाले हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी इन सब अनित्य पदार्थोंमें नित्यपनेकी बुद्धि करता है। चाहता है कि ये सदा बना रहे। अपनेको सुख मिलेगा, इस आशासे दुःखोंके मूल कारण इन विषयभोगोंमें रमण करता है। जब विषयभोगोंका वियोग होजाता है तब दुःखोंसे पीड़ित होकर पशुके समान कष्ट भोगता है।

क्षणभरमें कामी होजाता है, क्षणभरमें लोभी होजाता है, क्षणभरमें तृष्णासे पीड़ित होता है, क्षणमें भोगी बन जाता है, क्षणभरमें रोगी होजाता है, भूतपीड़ित प्राणीकी तरह व्यवहार करता है। कहा है—

क्षणं कामी क्षणं लोभी क्षणं तृष्णापरायणः।
क्षणं भोगी क्षणं रोगी भूताविष्ट इवाचरेत् ॥ १०९ ॥

यह अज्ञानी मोही प्राणी वारवार रागद्वेषमई होकर ऐसे कर्म बांधता है जिनका छूटना कठिन है। इसलिये वारवार दुर्गतिमें जाता है। कभी अत्यन्त पापकर्मके उदयसे नारकी होकर असहनीय ताडनमारणादि दुःखोंको सागरोंतक सहता है।

कभी तिर्यंच गतिमें जन्म लेकर या मनुष्यगतिमें नीच कुलमें जन्म लेकर हजारों प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित होता हुआ इस संसारमें भ्रमण किया करता है। चार गतियोंमें भ्रमण करते हुए इस जीवको अनंतकाल होगया। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई धर्मको न पाकर इसे कभी थिरता नहीं मिली। इसलिये जो कोई प्राणी सुखका अर्थी है उसको अवश्य ही जिनेन्द्र कथित धर्मका संग्रह सदा करना चाहिये।

भावदेव मुनिदीक्षा।

इसप्रकार मुनिमहाराजके शांतिगर्भित अनुपम वचनोंको सुनकर भावदेव ब्राह्मणका हृदय कंपित होगया, संसार भ्रमणसे भयभीत होगया, मनमें वैराग्य पैदा होगया। हाथ जोडकर सौधर्म मुनिराजसे प्रार्थना करने लगा कि हे स्वामी! मैं संसार-समुद्रमें डूब रहा हूं, मेरी रक्षा कीजिये, जिससे मैं अविनाशी आत्मीक सुखको प्राप्त कर सकूं। कृपा करके मुझे पवित्र जैन साधुकी दीक्षा दीजिये। यह दीक्षा सर्वपरिग्रहके त्यागसे होती है तथा यही संसारका छेद करने-वाली है ऐसा मुझे निश्चय होगया है। भावदेवके ऐसे शांत वचन सुनकर सौधर्म मुनिराजने उसको संतोषप्रद वचन कहे-हे ब्रह्म! यदि तू वास्तवमें संसारके भोगोंको रोगके समान जानकर वैराग्यवान हुआ है तो तू इस जिनदीक्षाको धारण कर। जो जीव संसारमें रागी हैं वे इसे धारण नहीं कर सक्ते। गुरुमहाराजके उपदेशसे शुद्ध बुद्धि-धारी भावदेवको बहुत धैर्य प्राप्त हुआ। वह ब्राह्मणोत्तम सब शल्य त्यागकर मुनिदीक्षामें दीक्षित होगया।

फिर वे सौधर्म योगीराज अपने संयमकी विराधना न करते हुए पृथ्वीतल पर विहार करने लगे। वे मुनिराज गुणोंमें महान थे। ऐसे गुरुके साथ साथ भावदेव मुनि पापरहित भावसे घोर तप करने लगा। दुःख तथा सुखमें समान भाव रखता था। एकाग्र भावसे कभी ध्यान कभी स्वाध्यायमें निरंतर लगा रहता था। विनयवान होकर ब्रह्म भावको उत्पन्न करनेवाले शब्द ब्रह्ममई तत्वका अभ्यास

करता था। अर्थात् ॐ, सोहम् आदि मंत्रोंसे निजात्माके स्वरूपको ध्याता था। कहा है—

> स्वाध्यायध्यानमैकाग्र्यं ध्यायन्निह निरंतरम्।
> शब्दब्रह्ममयं तत्त्वमभ्यसन् विनयानतः॥ १२४॥

वह भावदेव मनमें ऐसा समझता था कि मैं धन्य हूं, कृतार्थ हूं, बड़ा बुद्धिशाली हूं, अवश्य भवसागरसे तिरनेवाला हूं जो मैंने इस उत्तम जैन धर्मका लाभ प्राप्त किया है।

बहुत काल विहार करते हुए वे सौधर्म मुनिराज एक दफे भावदेवके साथ उसी वर्द्धमानपुरमें पधारे। उससमय विशुद्ध बुद्धिधारी भावदेवने अपने छोटे भाई भवदेवको याद किया। भवदेव ब्राह्मण इस नगरमें प्रसिद्ध था, परन्तु संसारके विषयोंमें अंधा था, एकांत मतके शास्त्रोंमें अनुरागी था, अपने यथार्थ आत्महितको नहीं जानता था। भावदेवके भावोंमें करुणाने घर किया और यह संकल्प किया कि मैं स्वयं उसको जाकर सम्बोधूं तो उसका कल्याण होगा। परम वैराग्यवान होनेपर भी परहितकी कांक्षासे उसके घर स्वयं जानेका मनोरथ कर लिया।

मैं उसको अर्हंत् धर्मका उपदेश करूं। किसी तरह भी यदि वह समझ आयगा तो वह अवश्य संसारके भोगोंसे विरक्त होकर मुनि हो जायगा ऐसा अपने मनमें विचार कर भावदेव अपने गुरुके पास आज्ञा मांगनेके लिये गए और कहा—हे महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं जाकर अपने छोटे भाईको संबोधन करूं,

आपके प्रसादसे मेरे भावमें यह करुणा पैदा हुई है। इस प्रकार अपने गुरुको प्रसन्न करके व आज्ञा लेकर तथा वारंवार नमस्कार करके भावदेव मुनि शुद्ध भावसे ईर्या समिति पालते हुए-भूमिको निरख कर चलते हुए भवदेवके सुन्दर घरमें पधारे। भवदेवके घरमें आकर वहींकी अवस्था देखकर आश्चर्यमें भर गए। क्या देखते हैं कि तोरणोंमें शोभित मंडप छाया हुआ है, मंगलमई बाजोंके शब्द होरहे हैं जिनके शब्दोंसे दिशा चूर्ण होती है। युवती स्त्रियां मंगलगान कररही हैं, बंदीजन वेद-वाक्योंसे स्तुति पढ़ रहे हैं। चित्रोंसे लिखित ध्वजा हिल रही हैं। सुगंधित कुंद आदि फूलोंकी मालाएं लटक रही हैं। कर्पूरसे मिश्रित श्रीखंडसे रचना बनी हुई है। ऐसा देखकर भी दयालु मुनिराज भावदेव उसके घरके आंगणमें शीघ्र ही जाकर खड़े होगए। मुनिराजको देखकर भवदेव उसी समय स्वागतके लिये उठा, नतमस्तक हुआ, उच्च आसनपर विराजमान किया, वार वार नमस्कार किया और भावदेव मुनिके निकट विनयसे बैठगया।

भवदेव संबोधन व जैनधर्म ग्रहण।

योगीमहाराजने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया। व उसको संतोषित किया। तब भवदेवने पूछा-हे भ्रात! आपके संयममें, तपमें, एकाग्र चिन्तवन ध्यानमें, स्वात्मजनित ज्ञानमें कुशल हैं? महान बुद्धिमति मुनिने समभावसे कहा कि वत्स! हमें सब समाधान है। हमें यह तो बताओ कि इस घरमें क्या हुआ था, क्या होरहा है, व क्या होनेवाला है? हे भ्राता! तेरे घरमें मण्डपका आरम्भ

दिखाई पड़ता है, तेरा सौम्य शरीर परम सुन्दर व भूषणोंसे अलंकृत है। तेरे हाथमें कंकण बन्धा है, तेरे यहां कोई उत्सव दिखाई पड़ता है। गुरुमहाराजके इस वाक्योंको सुनकर भवदेवने मुख नीचा कर लिया। कुछ मुसकराते हुए व लज्जासे डगमगाते हुए वचनोंसे कहा- —

हे स्वामी! इस नगरमें दुर्मिषण नामका ब्राह्मण रहता है उसकी नागश्री नामकी स्त्री है। वह कुलवान व शीलवान है। उनकी नागश्री नामकी पुत्री है। बन्धुजनोंकी आज्ञासे उसके साथ आज मेरा विवाह वेदवाक्योंके साथ हुआ है। अपने छोटे भाईकी इस उचित वाणीको सुनकर मुनिराज बोले—हे भ्राता! इस जगतमें धर्मके प्रतापसे कोई बात दुर्लभ नहीं है। धर्मसे ही इन्द्रपद, सर्वसंपदासे पूर्ण चक्रवर्तीपद, नारायण व प्रतिनारायणपद व राजाका पद प्राप्त होता है। धर्मका लक्षण सर्व प्राणियोंपर दया भाव है अर्थात अहिंसा लक्षण धर्म है, वही धर्म यती तथा गृहस्थके भेदसे दो प्रकार हैं। तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्‌चारित्र मय रत्नत्रयके भेदसे तीन प्रकार हैं ऐसा जिनेन्द्रने उपदेश किया है। कहा है—

सर्वप्राणिदयालक्ष्मो गृहस्थशमिनोर्द्विधा।
रत्नत्रयमयो धर्मः स त्रिधा जिनदेशितः॥१५१॥

मनुष्य जन्म बहुत कठिनतासे प्राप्त होता है। ऐसे नर जन्मको पाकर जो कोई धर्मका आचरण नहीं करता है उसका जन्म

पूछा जाता है, ऐसा मैं मानता हूं। इत्यादि मुनिरूपी समुद्रसे धर्मामृतसे पूर्ण पवित्र वचनोंके रसको पीकर भवदेव बहुत संतुष्ट हुआ और उन्होंने भावपूर्वक श्रावकके व्रत ग्रहण कर लिये।

भवदेवका आहारदान।

व्रतोंको ग्रहणकर उसी समय मुनिराजसे प्रार्थना की कि स्वामी! आज मेरे घरमें कृपाकर आप भोजन स्वीकार करें। धर्मके अनुरागसे पूर्ण अपने छोटे भाईके वचन सुनकर मुनिमहाराजने दोषरहित शुद्ध आहार ग्रहण किया। कहा है—

पीत्वा वाक्यामृतं पूतं प्राप्तं मुनिमहोदधेः।
भवदेवो व्रतान्युच्चैः श्रावकस्याग्रहीत्तदा॥ १५३॥
संग्रहीतव्रतेनाशु विज्ञप्तो मुनिनायकः।
स्वामिन्नत्र गृहे मेऽद्य त्वया भोज्यं कृपापर॥ १५४॥
विज्ञप्तेरनुजस्यैव भ्रातृधर्मानुरागतः।
मुनिः स शुद्धमाहारं निःसावद्यं जघास सः॥१५५॥

(नोट-इन वाक्योंसे मुनिराजकी उदारता व सरलता व सज्जनता व निरभिमानता प्रगट होती है। एक यज्ञकी हिंसाका माननेवाला ब्राह्मण जब हिंसाको त्यागकर श्रावकके अहिंसादि बारह व्रतोंको स्वीकार करलेता है तब उसी क्षण वह श्रद्धावान श्रावक माना जाने लगा। उसके हाथका आहार उसी दिन लेना मुनिने अनुचित नहीं समझा। उसको आहारकी विधि सब बतादी थी। यद्यपि उसकी प्रार्थना एक निमंत्रण रूपमें थी। जैन मुनि निमंत्रण नहीं मानते

हैं इस अतीचारका ध्यान उससमय मुनिराजने उसके धर्मानुरागको महत्वको देखकर नहीं किया। यह उनका भाव था कि किसी प्रकार यह मोक्षमार्ग पर दृढतासे आरूढ़ होजावे। यद्यपि मुनिने आहार अवश्य नवधाभक्तिसे लिया होगा। जब भोजनका समय होगा तब उस श्रावकने अतिथि संविभाग व्रतके अनुसार ही आहारदान दिया होगा। यदि वह स्वीकार नहीं करते तो उसका मन मुरझा जाता व धर्मप्रेम कम होनेकी भी संभावना थी। इत्यादि बातोंको विचार कर परम उदार, जिन धर्मके ज्ञाता, द्रव्य, क्षेत्र, काल भावको विचारनेवाले मुनिराजने उसके हाथका उसी दिन आहारदान लेना उचित समझा। किंचित् अतिचार पर ध्यान नहीं दिया। उसके सुधारका भाव अतिशय उनके परिणाममें था।)

आहारके पश्चात् भावदेव मुनिराज अपने गुरु सौधर्मके पास, जो अनेक मुनिसंघ सहित वनमें तिष्ठे थे, ईर्यापथ सोधते हुए चलने लगे तब नगरके कुछ लोग मुनिकी अनुमति बिना ही विनय करनेकी पद्धतिसे मुनिराजके पीछे चलने लगे। वे लोग कितनी दूरतक गए फिर अपने प्रयोजनके वशसे मुनिको नमस्कार करके अपने २ घर लौट आए।

भवदेव छोटा भाई भी मुनिके साथ पीछे २ गया था। वह भोला यह विचारने लगा कि जब मुनि आज्ञा देंगे कि तुम जाओ तब मैं लौटूंगा। इसी प्रतीक्षासे अपने गौरववश पीछे २ चला गया। मुनि महाराजने ऐसे वचन नहीं कहे न वह कह सक्ते थे;

क्योंकि ये वचन अहिंसा व्रतके घातक थे, वे मुनि धर्म—नाशसे भयभीत थे व संयमादिकी भलेप्रकार सदा रक्षा करते थे। इस तरह चलते चलते वह बहुत दूर चला गया। यद्यपि भवदेव मोक्षका प्रेमी होगया था तो भी उसके कंकणकी गांठ थी। उसका चित्त व्याकुलित होने लगा। वह वारवार अपने मनमें नवीन वधू नागवसूके मुखकमलको याद करता था। उसका पग मूर्छित मानवकी तरह लड़खड़ाता हुआ पड़ता था। घर लौटनेकी इच्छासे कुछ उपाय विचार कर वह भवदेव अपने भाई भावदेवसे किसी बहानेसे वारवार कहने लगा कि—हे स्वामी! यह वृक्ष हमारे नगरसे दो कोस दूर है आप स्मरण करें, यहां आप और हम प्रतिदिन क्रीड़ा करनेको आते थे व बैठते थे। महाराज! यह देखिये। कमलोंसे शोभित सरोवर है। यहां हम दोनों मोरकी ध्वनि सुननेको बैठते थे। स्वामी देखिये, यह नाना वृक्षोंसे संगठित लगाया हुआ बाग है जहां हम दोनों बड़े भावसे पुष्प चुननेको आया करते थे।

कृपानाथ! यह वह चांदनीके समान उज्वल स्थान है जहां हम सब गेंद खेला करते थे। (नोट—गेंद खेलनेका रिवाज पुरातन है)। इसतरह बहुतसे वाक्योंसे भवदेवने अपना अभिप्राय कहा परन्तु भवदेव श्री मुनिराजके मनको जरा भी मोहित न करसका। मुनिराज मौनसे जारहे थे—न वचनसे हुंकार शब्द कहते थे न भुजाका संकेत करते थे। चलते चलते दोनों भाई श्री गुरुमहाराजके निकट पहुंच

गए। वे दोनों वृषभोंके समान धर्मरूपी रथकी धुराको चलानेवाले थे (भावार्थ–दोनों मोक्षगामी आत्मा थे) तब सब मुनियोंने भावदेव मुनिको कहा–हे महाभाग! तुम धन्य हो जो अपने भाईको यहां इससमय लेआए हो।

भावदेव मुनि भक्तिपूर्वक सौधर्म गुरुको नमस्कार करके अपने योग्य स्थानपर बैठ गए।

वहांके शांत वातावरणको देखकर भवदेव अपने मनमें विचारने लगा कि मैंने नवीन विवाह किया है। मैं यहां संयम धारण करूं या लौटकर घरको जाऊँ? सूझ नहीं पड़ता है क्या करूं? चित्तमें व्याकुल होने लगा, संशयके हिंडोलेमें झूलने लगा। अपने मनको क्षणभर भी स्थिर न कर सका। कभी यह सोचता था कि नवीन वधूके साथ घर जाकर दुर्लभ इच्छित भोग भोगूं। मेरे मनमें लज्जा है, इस बातको मैं कह नहीं सक्ता, तथा यह मुनीश्वरोंका पद बहुत दुर्द्धर है। कामरूपी सर्पसे मैं डसा हुआ हूं। मेरे ऐसा दीन पुरुष इस महान पदको कैसे धारण कर सकेगा? तथा यदि मैं गुरु वाक्यका अमादा करके दीक्षा धारण न करूं तो मेरे बड़े भाईको बहुत लज्जा आयगी। इस तरह दोनों पक्षकी बातोंको विचार कर शल्यवान होकर यह सोचने लगा कि दोनों बातोंमें कौनसी बात करने योग्य है, कौनसी करने योग्य नहीं है, यही स्थिर किया कि इस समय तो मुझे जिन दीक्षा लेना ही चाहिये, फिर कभी अवसर होगा तो मैं अपने घर लौट आऊंगा।

भवदेवको मुनिदीक्षा।

इस तरह कपट सहित वह भवदेव नतमस्तक होकर मुनि महाराजको कहने लगा कि—स्वामी! कृपा करके मुझे अर्हत दीक्षा प्रदान कीजिये। मुनिराजने अवधि ज्ञानरूपी नेत्रसे यह जान लिया कि यह ब्राह्मण अपने मनके भीतरी अभिप्रायको छिपा रहा है। भोगोंकी अभिलाषा रखते हुए भी दीक्षा लेना चाहता है, यह भी जाना कि यह भविष्यमें वैरागी हो जायगा ऐसा समझकर महामुनिने मुनिदीक्षा प्रदान करदी। भवदेवने सर्वके समक्ष निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करली तौ भी उसका मन कामकी अग्निरूपी शल्यसे रहित नहीं हुआ। उसके मनमें यह बात खटकती रही कि मैं कब उस तरुणी, चंद्रमुखी, मृगनयनी अपनी भार्याको देखूं जो मेरेपर मोहित है व मेरे विना दुःखी होगी, मेरा स्मरण भले प्रकार करती होगी, मेरे विना उसका चित्त सदा व्याकुल रहेगा। ऐसा मनमें चिंतवन करता रहता था तौ भी बराबर ध्यान, स्वाध्याय, ज्ञान, तप व व्रतमें लगा रहता था।

भवदेवका पत्नी प्रति गमन।

बहुत काल पीछे एक दिन संघसहित सौधर्म गणी विहार करते हुए फिर उस वर्द्धमान नगरमें पधारे। सर्व ही संयमी मुनि नगरके बाहर उपवनके एकांत स्थानमें ठहर गए। जब अनेक मुनि शुद्धात्माके ध्यानकी सिद्धिके लिये कायोत्सर्ग तप कर रहे थे तब भवदेव मुनि पारणा करनेके छलसे नगरकी तरफ चला। उसका चित्त इस

बातमें उत्सुक होरहा था कि शीघ्र अपनी स्त्रीको देखूं। मार्गमें चलते हुए कामभावसे पीड़ित हो यही विचारता रहता था कि आज मैं घर जाकर मनोहर पत्नीका संभोग करूंगा, मेरे बिना विरहसे वह इसी तरह आतुर होगी जिस तरह जलके बिना मछली तड़फड़ती है। इसतरह चिंतवन करते हुए मार्गमें क्रमसे चलकर उसने ग्राममें प्रवेश किया।

भवदेव मुनि संध्याके समय लाल रङ्ग सहित सूर्यके समान था, जो रात्रि होनेके पहले पश्चिम दिशाको जारहा हो। ग्राममें आकर उसने एक सुन्दर व ऊंचे जिनमंदिरको देखा। ऊंचे तोरणोंसे वह सुशोभित था, ध्वजाओंसे अलंकृत था, रत्न और मोतियोंकी मालाओंसे अतिशय सुशोभित था। मंदिरमें गाना बजाना व महाउत्सव होरहा था। स्त्रियां जातीं व आतीं थीं। भवदेव मुनि मंदिरके भीतर गया और तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रकी शांत मूर्तिको नमस्कार किया और अपने योग्य स्थानमें बैठ गया।

स्वपत्नी आर्यिकासे भवदेवकी भेट।

उस चैत्यालयमें एक प्रसिद्ध आर्यिका व्रतसे पूर्ण विराजमान थी। तपके कारण जिसके शरीरकी हड्डियां रह गईं थीं। मुनिराजका दर्शन करके उसने आकर नमस्कार किया फिर आर्यिकाजीने निवेदन किया—महाराज! आपके ज्ञानमें, ध्यानमें व स्वभावमें भलेप्रकार कुशलता है? मुनिराजने भी यथायोग्य आर्यिकाके व्रतोंकी कुशल पूछी। कुछ देर पीछे मनमें विषयकी इच्छा रखनेवाले भवदेव मुनिने

समभावसे आर्यिकाकी ओर देखके कहा कि–हे आर्ये! इस नगरमें आर्यावसु ब्राह्मणके दो विद्वान् सर्वसम्मत प्रसिद्ध पुत्र थे। बड़ेका नाम भावदेव व छोटेका नाम भवदेव था। भवदेव वेदपारगामी व वक्ता था। हे पवित्रे! यदि तुम जानती हो तो कहो, मेरे मनमें संशय है वह दूर होजाय कि वे दोनों किसतरह रहते हैं, अब उनकी क्या अवस्था है?

सुचारित्रवती व निर्विकार भावको रखनेवाली आर्यिकाजीने कहा कि वे दोनों ब्राह्मण काल आदि लब्धिके योगसे मुनि होगए हैं। यह सुनकर आतुरचित्त भवदेव फिर प्रश्न करने लगा, मानो अपने मनके छिपे हुए अभिप्रायको उगल रहा है। हे आर्ये! एक संशय और है सो मैं पूछता हूं, क्योंकि महान पुरुषोंके मनमें भी संशयका होना दूषित नहीं है। भवदेवकी विवाहिता स्त्री जो नागवसू थी वह पतिके चले जानेसे अब किसतरह है? विकार सहित इस वचनको सुनकर उस आर्यिकाको विदित होगया कि यही मेरा पूर्वका भर्तार है, इसके मनमें भय पैदा होगया, शरीर कांपने लगा, वह विचारने लगी कि यह मूढ़बुद्धि धैर्य रहित है, कामांध है, दुःसह कामभावसे पीड़ित है, यह निश्चयसे मुनिपदको छोड़ना चाहता है, इसलिये धर्मानुराग-वश मुझे अब इसे अवश्य संबोधना चाहिये। कदाचित् यह कामी होकर सर्वथा भोगोंकी इच्छा करता है लेकिन मैं तो प्राणोंके अंत तक अपने व्रतमें दृढ़ रहूंगी, ऐसा सोचकर चारित्रवती व दृढ़ व्रतोंको पालने-वाली आर्यिका विनयसे मस्तक झुकाकर सरस्वतीके समान प्रिय वचन कहने लगी—

आर्यिकाका भवदेवको उपदेश।

हे स्वामिन्! आप पूज्य हैं, महान बुद्धिमान हैं, धन्य है जो आपने तीन लोकमें महान पुरुषोंको भी दुर्लभ ऐसे चारित्रको अंगीकार किया है। आप परम पवित्र मुनि हैं, इंद्रोंसे भी पूज्य हैं, आप मोक्षरूपी लक्ष्मीके स्वयंवर हैं, सर्व सम्पदाके निधान हैं। हे सौम्य! आपके समान ऐसा कौन है जो स्वर्गमें भी दुर्लभ ऐसे महानभोगोंको पाकर अपनी तरुण वयमें उनको त्याग देवे। वास्तवमें भोग प्रारम्भमें मीठे लगते हैं, परन्तु उनका फल कड़वा होता है। ये भोग हालाहल विषके समान भवभवमें प्राणोंके हरनेवाले हैं। कहा है—

प्रारंभे मधुराभासा विपाके कटुकाः स्फुटम्।
हालाहलनिभा भोगाः सद्यःप्राणापहारिणः॥ २१६॥

ऐसा कौन मूर्ख है जो अमृतको छोड़कर विषकी इच्छा करेगा? सुवर्णको त्यागकर पत्थरको ग्रहण करेगा? कौन ऐसा अधम है जो स्वर्ग व मोक्षके सुखको छोड़कर नर्क जायगा-जिनेश्वरी दीक्षाको छोड़कर इन्द्रियोंके भोगोंकी कामना करेगा? इत्यादि नाना प्रकारके बोधप्रद वाक्योंसे श्रीमती आर्जिकाजीने समझाया तो मुनिका भाव पलट गया, लज्जासे मुख नीचा कर लिया। फिर वह कहने लगी कि आपने जिस नागवसूकी कामना करके प्रश्न किया था वह नागवसू आपके सामने मैं बैठी हूं। आप देखलें मैं आप मुनिराजके भोगने योग्य नहीं हूं। मेरा यह शरीर कृमियोंसे पूर्ण है। नव द्वारोंसे मल बहता है—महा अपवित्र है। मुखसे अपवित्र लार

बहती है। सिर खरबूजेके समान है। वचन सम्बन्ध रहित लड़खड़ाते निकलते हैं। शब्द भयानक अस्पष्ट निकलते हैं। दोनों कपालोंमें गड्ढे पड़ गए हैं। आंखें कूपके समान भीतरको गहरी होगई है।

बहुत क्या कहूं, ऐसे कुत्सित शरीरको धरनेवाली मैं आपके सामने बैठी हूं। मेरी भुजाओंका मांस सूख गया है। पयोधर पतित होगए हैं मानों प्रमादी सेवकोंके समान हैं। सर्व अंगमें चमड़ा हड्डी दिखरहा है। मैं अब सर्व कामकी इच्छारहित हूं। श्राविकाके व्रतोंमें तत्पर हूं। यह बड़े धिक्कारकी बात है, यह बड़ा दुर्भाग्य है जो आपने बारबार मुझे स्मरण करके शल्य सहित इतना काल, हे धीर! वृथा गंमाया है। निश्चयसे इस स्त्रीकी शरीररूपी कुटीमें कोई बात सुन्दर नहीं है इसलिये अपने मनको शीघ्र विरक्त करके शल्यरहित होकर उत्तम तपका साधन करो जिससे स्वर्ग व मोक्षके सुख प्राप्त होते हैं। सुखाभासको देनेवाले इन विषयभोगोंसे क्यों वृथा जन्म खोना? इस जीवने अनंतवार स्त्री आदि महान भोगोंको भोगा है और झूंठनके समान छोड़ा है।

हे मुने! उनके भीतर अनुराग करनेसे क्या फल होगा? केवल दुःख ही मिलेगा। ऐसे धर्मरसपूर्ण वचन सुनकर मुनि महाराजका मन स्त्रीके सुखसे विरक्त होगया। कुछ लज्जावान होकर वह अपनेको वारवार धिक्कारने लगा। मुनि प्रतिबुद्ध होकर आर्यिकाजीकी वारवार प्रशंसा करने लगे। मैं भवदेव तेरे बचनोंके

संयोगसे उसी तरह निर्मल होगया जिस तरह अग्निके संयोगसे सुवर्ण निर्मल होजाता है।

हे आर्ये! तू धन्य है। मैं भवसमुद्रमें डूब रहा था, तू मेरे लिये आज नौकाके समान हुई है। तूने मुझे मोहके अगाध जलसे भरे हुए व सैकड़ों आवर्त व भ्रमणसे मुझे इस संसार-समुद्रमें डूबते हुए बचा लिया।

भवदेवका फिर मुनि होना।

इतना कहकर मुनि शीघ्र ही उठे और शल्य रहित होकर मुनिराजके निकट पहुंचे जैसे-चिरकालसे समुद्रके आवर्तमें पकड़ा हुआ जहाज छूटकर अपने स्थानको पहुंचे। मुनिनाथको नमस्कार करके व योग्य स्थानमें बैठकर भवदेवने अपना सर्व वृत्तान्त जो कुछ वीता था वह सब शुद्ध भावसे वर्णन कर दिया। उसी समय पूर्वकी दीक्षा छेदकर फिरसे उसने मुनिका संयम धारण किया। अब वह भावोंकी शुद्धिसे साक्षात् कर्मोंको जीतनेवाला यति होगया। कहा है-

छेदोपस्थापनं कृत्वा ततश्चेतः स संयमी।
जातः साक्षान्मुनिर्जेता कर्मणां भावशुद्धितः ॥२१४॥

अब वह भवदेव मुनि रागद्वेषसे रहित होकर आत्मध्यानमें रत होगए। अपने बड़े भाईके साथ बराबर तप करते हुए रहने लगे।

अब यह भवदेव मुनि अपने शरीरमें भी राग रहित थे। केवल मुक्तिके संगमकी भावना थी। क्षुधा, तृषा आदि दुःखोंको समभावसे

सहन करते थे। शत्रु, मित्र, तृण, सुवर्ण, लाभ अलाभमें समभाव धारते थे, शांत थे, निंदा स्तुतिमें भी निर्विकार थे। वह बुद्धिमान जीवन मरणमें भी समान भावके धारी थे। कहा है—

निःस्पृहः स्वशरीरेऽपि सस्पृहो मुक्तिसंगमे।
सहिष्णुः क्षुत्पिपासादिदुःखानां समभावतः ॥ २३६ ॥
अरिमित्रतृणस्वर्णलाभालाभसमः शमी।
निंदास्तुतिसमो धीमान् जीविते मरणे समः ॥ २३७ ॥

भावदेव भवदेव तीसरे स्वर्गमें देव।

अंतमें दोनों भ्राता मुनियोंने समाधिमरणपूर्वक विमलाचल पर्वतसे प्राण त्यागे तथा वे तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें सात सागरकी आयु धारक देव हुए। दोनों आत्माने शुभ योगसे पण्डितमरण किया। हे राजन्! इसतरह आर्यवसु ब्राह्मणके दोनों पुत्र व्रतोंके महात्म्यसे स्वर्गके सुखोंको भोगने लगे। जिस धर्मके प्रतापसे दो ब्राह्मण स्वर्गके देव हुए, उस धर्मका सेवन सज्जनोंको सुखकी सिद्धिके लिये सदा करना योग्य है।
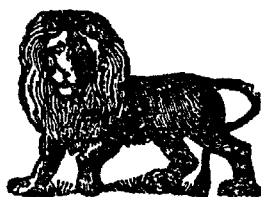
तीसरा अध्याय।

जम्बूस्वामी पूर्वभव–भावदेव भवदेव छठे स्वर्गगमन।

(श्लोक १७२ का भाव)

कुबुद्धिरूपी अंधकारके नाशके लिये सुमतिधारी सुमतिनाथ तीर्थंकरको वंदना करता हूं। पद्मकमलके समान रक्तवर्ण देहधारी, सूर्यके समान तेजस्वी श्री पद्मप्रभु भगवानको मनवचन कायसे नमस्कार करता हूं।

देवगतिसे पतन।

हे मगधराज! भावदेव भवदेवके जीवोंने तीसरे स्वर्गमें सुखसमुद्रमें मगन होते हुए अपने सात सागरकी आयु पूर्ण करदी। एकदफे उन दोनों देवोंके आभूषणोंमें लगी निर्मल मणियां अपने प्रकाशमें उसी तरह मंद दीखने लगीं जिस तरह रात्रिके अंतमें दीपक मन्द तेज भासते हैं। उनके वक्षस्थलोंकी मालाएं मुरझाई हुई दिखने लगीं, मानों स्वर्गकी लक्ष्मीका वियोग होगा, इससे भय सहित शोच कर रही हैं। उनके विमानोंके कल्पवृक्ष कांपने लगे। मानों उनके वियोगरूपी महान पवनसे हिलते हुए घबड़ा रहे हैं। उनके शरीरकी ज्योति भी मंद पड़ गई। ठीक है जब पुण्यरूपी छत्र चला जाता है तब छाया कैसे रह सक्ती है? इन दोनोंके कुम्हलाए हुए शरीरोंको देखकर मणियोंकी कांति जाती रही। ये दोनों दीन होगए, इनकी दीनताको देखकर उनके सेवक देव भी दीन होगए। जब वृक्ष

हिलता है तब उसकी शाखाएं क्या विशेष नहीं हिलती हैं? इन दोनों देवोंने जो जन्मभर सुख भोगा था वही सब सुख इकट्ठा होकर दुःखरूपमें आगया। इन दोनों देवोंकी ऐसी अवस्था देखकर उनके संबंधी देव इनके शोकको दूर करनेके लिये सुंदर वचन कहने लगे:—

हे धीर! धैर्य धारण करो। शोच करनेसे क्या फल! सर्व प्राणियोंके जन्म, मरण, जरा, रोग व भय आते रहते हैं। यह साधारण विषय है कि जब देव आयुका क्षय होगा तब सर्व देवोंका देवगतिसे पतन होगा। उस पतनको कोई एक क्षण भी रोक नहीं सक्ता है।

जहां नित्य प्रकाश होता है वहीं नित्य अंधकार होता है, लोकमें दोनों बातें प्रगट हैं। जब पुण्यका दीप बुझ जाता है तब सर्व तरफ पापरूप अंधेरा छाजाता है। जैसे स्वर्गमें पुण्यके उदयसे निरंतर रतिभाव होता है वैसे ही पुण्यके क्षय होनेपर अरति भाव या दुःखित भाव होजाता है। पाप आतापके तपनेसे केवल शरीरके साथ रहनेवाली माला ही नहीं मुरझा जाती है; किन्तु शरीर भी मुरझा जाता है। पहले हृदय कांपता है फिर कल्पवृक्ष कांपता है। पहले शरीरकी शोभा गलती है फिर लज्जाके साथ शरीरकी कान्ति नष्ट होजाती है।

मरण निकट आनेपर जो दुःख देवोंको होता है वैसा दुःख नारकीको नहीं होता है। अब आप दोनोंके सामने मरणका समय आगया है। जिस सूर्यका उदय होता है उसका अस्त भी होता है इसीतरह जिसका स्वर्गमें जन्म है उसका मरण अवश्य है, इसीतरह

सम्पदा भी आती है व जाती है इसलिये आप शोक न करें। इस शोकसे कुगतिमें पतन होगा। आप आर्य हैं, सज्जन हैं, इस समय धर्मके पालनमें वृद्धि करनी चाहिये। इस तरह समझाये जानेपर उन बुद्धिमानोंको धैर्य आगया। वे दोनों सुखदातार जैन धर्ममें अपना प्रेम करने लगे।

देवोंने अंतमें धर्मभावना की।

देवगतिमें देवोंके इच्छाका निरोध नहीं होता है। ऐसा ही देवपर्यायका स्वभाव है। इसलिये वे देव इन्द्रियोंको रोककर व्रत लेनेको समर्थ नहीं है। वे दोनों देव श्री जिनमंदिरमें जाकर श्री जिन बिम्बोंकी पूजा भक्ति भावोंकी शुद्धिके लिये करने लगे। आयुके अंत समय वे दोनों कल्पवृक्षके नीचे बैठकर समाधान चित्त होकर प्रतिमायोगके साथ आत्मध्यानमें मगन होगए। बड़े भावसे णमोकार मंत्रका भय रहित हो स्मरण करने लगे। क्षणमात्रमें प्राण त्याग दिये। और उनका आत्मा अन्य भवको प्रयाण कर गया। शरीर अदृश्य होगए—उड़ गए।

इस जम्बूद्वीपके महामेरु पर्वतके पूर्व विदेहमें केवल चौथा काल रहता है, न पहला दूसरा तीसरा न पांचवा छठा काल होता है। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालका परिवर्तन नहीं होता है। सदा ही तीर्थंकरोंकी उत्पत्ति होती है।

भावदेव भवदेवके जीव विदेहमें।

उनके चरणोंके विहारसे विदेह देश सदा पवित्र रहता है।

चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र उस रमणीक क्षेत्रमें सदा ही हुआ करते हैं। सदा ही कर्मभूमिकी रचना रहती है। देश धन-धान्यसे पूर्ण होता है।

उस विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती नामका देश है, जहां इतने पास पास ग्राम है कि एक ग्रामसे उड़कर मुरगा दूसरे ग्राममें चला जाता है। जगह जगह धान्यसे हरे भरे खेत दिखलाई पड़ते हैं। जगह २ जहां कमलोंसे पूर्ण जल सहित सरोवर हैं। उन कमलपत्रोंको देखकर स्त्रियोंकी आंखोंमें आंसू निकल पड़ते हैं। वहां बड़ी २ झीले हैं, जहां हंसोंकी ध्वनि होती है। मानों वे उन झीलोंके यश ही गान करते हैं। जिस देशमें ऐसे कूप हैं जिनसे खेत सींचनेकी नाली लगी है व बावड़ी ऐसी शोभती है मानों कमलके समान नेत्र हैं। वन वृक्षोंसे सघन हैं। बाजारोंमें जगह जगह सम्पदाएं हैं—अन्नादिके ढेर हैं। स्वर्गपुरीके समान जहां ग्राम हैं। पुरुष बड़े सुन्दर व स्त्रियां उनसे भी अधिक सुन्दर हैं। वहां निरंतर सुख रहता है। उस देशका वर्णन कौन विद्वान् कर सक्ता है ? मानों तीर्थंकरोंके दर्शनके लिये स्वर्ग ही चलकर यहां आगया है। इसदेशमें एक महान नगरी पुंडरीकिणी है, जो बारह योजन लम्बी व नौ योजन चौड़ी है। वहांकी भूमि बागीचोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान है। नगरके चारों तरफ खाई पातालतक चली गई है। नगरका कोट इतना ऊंचा है कि आकाशको स्पर्श करता है। उस नगरके श्रावक तथा साधु जैन धर्ममें रत हैं। वे सब व्रतोंको पालते हैं व तीर्थोंकी यात्रा करते हैं।

जैसे झीलोंमें हंस कल्लोल करते हैं। कहा है:—

जैन धर्मरता यत्र श्रावका मुनयस्तथा।
रमंते व्रततीर्थेषु मराला मानुसेष्विव॥ ३७॥

जहां तपस्वी साधु सर्व परिग्रहके त्यागी भयरहित हैं, बाहरी उपवनोंमें बैठकर कठिन-कठिन तप करते हैं। जहां कितने ही भव्य जीवोंको कर्मोंके क्षयसे सदा अविनाशी केवलज्ञानका लाभ हुआ करता है। कितने ही भव्य जीवोंको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती रहती है। मानों रत्नत्रयकी उत्पत्तिके लिये वहांकी भूमि रत्नगर्भा है। स्वर्गादि सुखकी प्राप्तिके लिये वहांकी भूमि श्रेणीके समान है।

इस पुंडरीकिणी नगरीका राजा वज्रदन्त था। केवल उसके दांत ही वज्रके समान नहीं थे, किन्तु सारा शरीर वज्रमई था। अर्थात् वह वज्रऋषभनाराच संहननका धारी था। शत्रु उसकी प्रताप रूपी अग्निसे जल जाते थे इसलिये उसको दूरसे देखकर भाग जाते थे। उसकी पट्टरानी यशोधना थी, जो कामके बाणके समान थी, बड़ी ही सुन्दर थी। भावदेवका जीव जो तीसरे स्वर्गमें देव हुआ, आयुके अंतमें वहांसे चयकर इन दोनोंके पुत्र हुआ। उसके जन्मसे बन्धुओंको परम आनन्दकी प्राप्ति हुई, इससे उसका नाम सागरचन्द्र रक्खा गया। वह चन्द्रमाकी कलाके समान दिन पर दिन बढ़ता जाता था। उसी देशमें एक दूसरी महान् वीतशोकापुरी थी, जहांकी भीतें चन्द्रकांत मणियोंसे निर्मापित थीं। जहांकी स्त्रियां उन भीतोंमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर सौतकी भ्रांतिसे

रति कर्मसे विमुख हो जाती थीं। जहां युवती स्त्रियां पतियोंके साथ पर्वतोंपर क्रीड़ा करती थीं व कभी लतागृहोंमें रमण करती थीं। कभी वे महिलाएं पतियोंके साथ जलके स्थानोंपर जलकेलि करती थीं व कभी वे उपवनकी गलियोंमें सैर करती थीं।

उस नगरमें महापद्म नामका बलवान चक्रवर्ती राजा था। जिसके प्रतापकी कीर्ति तीन जगतमें फैली हुई थी। वह नव निधि व चौदह रत्नोंका स्वामी था। नौ निधियोंके नाम हैं—महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील व खर्व। चौदह रत्नोंके नाम हैं—सेनापति[1], गृहपति[2], पुरोहित[3], गज[4], घोड़ा[5], सूत्रधार[6], स्त्री[7], चक्र[8], छत्र[9], चर्म[10], मणि[11], कामिनी[12], खड्ग[13], दण्ड[14]। वह भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंका अकेला स्वामी था। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसकी सेवा करते थे। छ्यानवे हजार स्त्रियोंका वह वल्लभ था। जैसे कमलनियोंके प्रफुल्लित करनेको सूर्य होता है वैसे वह उन स्त्रियोंको प्रसन्न रखता था। उस चक्रवर्तीकी एक पत्नीका नाम वनमाला था। वह देवी रतिकर्ममें दिव्य औषधिके समान थी।

इस वनमालाके गर्भमें भवदेवका जीव आया। शुभ दिवस व नक्षत्रमें उसका जन्म हुआ। चक्रवर्ती पुत्रके जन्मसे प्रसन्न हुआ। जन्मका उत्सव किया। याचकोंको उनकी इच्छानुकूल सुवर्णादि दिये। बाजोंकी ध्वनिसे दिशाएं बहरी होगईं। मंगलगान होने लगे। अप्सराएं नृत्य करने लगीं। भाट लोग गद्यपद्य रचनासे यशगान करने लगे। पुष्प सुगंधसे मिश्रित चन्दनसे मानवोंको चर्चित किया गया। पुत्रके

मुखको देखकर चक्रवर्तीको ऐसा हर्ष हुआ जैसे धातुवादी वैद्य रसायनका लाभ करके प्रसन्न होता है। चक्रवर्तीने बंधु वर्गोंके साथ मिलकर उसका नाम शिवकुमार रखा। जैसा नाम था वैसा ही वह गुण रखता था। यह शिव वरनेके लिये कुमार ही था।

वह बालक प्रतिदिन माताका दूध पानकर बढ़ता गया। जैसे बाल चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है। शिशुवयमें केवल माताहीकी गोदमें नहीं रमता था, किन्तु बन्धुजन भी अपने हाथोंसे रमाते थे।

शिवकुमारका विद्याभ्यास, विवाह व गृहीसुख।

क्रमसे शिवकुमार आठ वर्षका होगया। तब व्याकरण साहित्यादि शास्त्रोंको अर्थ सहित पढ़ने लगा। शस्त्रविद्या सीखी, संगीत व नाटक भी सीखा। पृथ्वीकी रक्षा करनेको समर्थ वीर गुणधारी हो गया। चक्रवर्तीने बड़े उत्सवके साथ उसका विवाह पांचसौ कन्याओंके साथ किया। अब वह कुमार युवावयमें अपने योद्धागण व मंत्रियोंके मध्यमें ऐसा शोभता था, जैसे चन्द्रमा नक्षत्रोंके मध्यमें उनकी कांतिको जीतता हुआ शोभता है। वह चक्रवर्तीका पुत्र कभी तो मित्रोंके साथ गान व चर्चा करता था, कभी वादित्र बजाता था, कभी वैद्योंके साथ, वीरोंके साथ, ज्योतिषियोंके साथ नाना विरोधी विषयों पर तर्कवाद करके आनंद भोगता था। कभी कवियोंकी मंडलीमें कविता करता था, कभी नाटक खेलता था, कभी युवानोंके साथ पर्वतपर क्रीड़ा करता था, कभी वन उपवनोंके मार्गमें घूमता था, कभी नदियोंके तटोंपर रमता था, कभी अपनी स्त्रियोंके

साथ सरोवरोंमें जलक्रीड़ा करता था, कभी अपनी स्त्रियोंक साथ रतिक्रीडा करता था, कभी कोई स्त्री अभिमानसे रूठ जाती थी तो उसको मनाकर राज़ी करता था। कभी वह पवित्र जिनमंदिरमें जाकर भावोंको शुद्ध करके जल चन्दनादि सामग्रीसे जिनबिम्बोंकी पूजा करता था। कभी श्री गुरुओंके पास जाकर सुखकारी धर्मको सुनता था। इस प्रकार युवानीमें शिवकुमार अपना समय हर्षपूर्वक विताता था।

उधर पुंडरीकिणीनगरमें भावदेवका जीव सागरचन्द्र भी भोग-समुद्रमें मगन रहता था। एक दफे पुंडरीकिणीनगरके उद्यानमें तीन गुप्तिधारी व चार ज्ञानसे विभुषित त्रिगुप्ति नामके मुनिराज पधारे। तब नगरके सब लोग मुनिकी वन्दनाके लिये गए। ऐसा देखकर सागरचंद्र भी मुनिराजके निकट गया, तब नगरनिवासियोंने विनय सहित धर्मका स्वरूप पूछा। मुनिराजने उपदेश किया। अवसर पाकर सागरचंद्रने अपने पूर्वभवका हाल जानना चाहा। तब मुनि-राजने अवधिज्ञानके नेत्रसे जानकर कहा—हे वत्स ! तू महाभाग्यवान है। अपने पूर्वभवका चारित्र सुन—

इस जंबुद्वीपके भरतक्षेत्रके मगधदेशमें वर्द्धमानपुर रमणीक था। वहां वेदके ज्ञाता दो विद्वान् ब्राह्मणपुत्र रहते थे। एक तो तुम भावदेव थे, दूसरा तुम्हारा छोटाभाई भवदेव था। एक दिन सौधर्म मुनिराजके समक्ष भावदेवने गृहारम्भसे विरक्त होकर तप स्वीकार कर लिया। किन्तु भवदेव कितने ही काल घरमें ही रहा।

भावदेव प्रमाद रहित हो तप करते थे। कुछ काल पीछे भावदेव उसी नगरमें गए और धर्मानुरागसे छोटे भाईके समझानेको उसके घर गए। धर्मोपदेश देकर उसे गुरुके पास ले आए।

भवदेवने शुद्ध-बुद्धि होनेपर भी शल्यसहित लज्जासे गुरुके पास दीक्षा लेली। जब किसी कारणसे उसकी शल्य दूर होगई। तब वह मुनिराजके साथ २ चारित्रको पालता हुआ चारित्रका भंडार होगया। भावदेव भवदेव दोनों मुनिचारित्रको पालते हुए, अंतमें समाधिमरणपूर्वक प्राण त्याग कर तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुए। वहां उपपाद शय्यामें अंतर्मुहूर्तमें पूर्णयौवनवान होकर उठे और सात-सागरपर्यंत मनोहर भोगोंको विना किसी विघ्न बाधाके भोगते रहे। आयुके अंतमें भावदेवके जीव तुम सो वज्रदंत राजाके घरमें सागरचंद्र पैदा हुए। और भवदेवका जीव चक्रवर्तीके घरमें शिवकुमार नामका पुत्र हुआ है जो सूर्यके समान तेजस्वी है। तुम्हारे दर्शन मात्रसे उसको अपने पूर्वभवका स्मरण होजायगा और वह संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होजायगा।

इसतरह कुमारने मुनिराजसे अपने पूर्वभव सुने। संसारको असार जानकर अपना मन धर्मसाधनमें तत्पर कर दिया। वह विचारने लगा कि इस जगतमें सर्व ही प्राणी जन्म, मरण, जराके स्थान हैं। इस जगतके भोगोंमें कुछ सार नहीं है, सार यदि कुछ है तो वह मुक्तिके सुखको देनेवाला दयामई जैनधर्म है। उसी धर्मकी सेवासे इन्द्रियोंके व कषायोंके मदको दमन किया जासक्ता है। जो कोई

आत्मीक सुखको चाहता है उसे इसी जैन धर्मका सेवन करना चाहिये। कहा है—

> सारोऽस्त्यत्र दयाधर्मो जैनो मुक्तिसुखप्रदः।
> स चेन्द्रियकषायाणां दुर्मदे दवनक्षमः॥ ९५॥

सागरचन्द्रका मुनि होना।

इस तरह विद्वान सागरचन्द्रने विचार कर श्री मुनिराजके पास जिनेन्द्रकी मुनि दीक्षा धारकी। यह सुख दुःखमें, शत्रु मित्रमें, महल मशानमें, जीवन मरणमें समभावका धारी होगया। परम शांत होगया। बाह्य और अभ्यन्तर बारह प्रकारका तप बड़े यत्नसे करने लगा। परीषह व उपसर्गोंके पड़नेपर भी अपने मनको समाधिसे चंचल न कर सका। ध्यानमें स्थिर रहा। तपके साधनसे उसको चारण ऋद्धि सिद्धि होगई, वह श्रुतकेवली होगया। एक दफे विहार करते हुए वे सागरचन्द्र मुनि वीतशोकापुरीमें पधारे।

मध्याह्न कालमें (अर्थात् ९ से ११ के मध्य) ईर्यापथकी शुद्धिसे वह नगरमें विधिपूर्वक विनयसे पारणाके लिये गए। राज-महलके निकट किसी सेठका घर था। उस सेठने शुद्ध भावोंसे आहार दिया। मुनिराजने नवकोटि शुद्ध ग्रासको शांतिपूर्वक ग्रहण किया। मन वचन कायसे कृत कारित अनुमोदना रहितको नवकोटि शुद्ध कहते हैं।

मुनिराज ऋद्धिधारी थे। मुनिदानके महात्म्यसे दातारके पवित्र घरके आंगणमें आकाशसे रत्नोंकी वृष्टि हुई। इस बातको देखकर

वहांके सर्व जन परस्पर बातें करने लगे। यह क्या हुआ, सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। परस्पर वादविवाद करनेपर बड़ा कोलाहल हुआ। शिवकुमारने अपने महलमें सब वृत्तान्त सुना। वह महलके ऊपर आया और आनन्दसे कौतुकपूर्वक देखने लगा। मुनिराजका दर्शन करके चित्तमें आश्चर्यपूर्वक विचारने लगा। अहो! मैंने किसी भवमें इन मुनिराजका दर्शन किया है। पूर्व जन्मके संस्कारसे मेरे मनमें स्नेह भर गया है और बड़ा ही आल्हाद होरहा है। इसलिये मैं जाऊं और अपना संशय मिटानेके लिये मुनिराजसे प्रश्न करूँ।

शिवकुमारको जाति स्मरण।

ऐसा विचारता ही था कि इतनेमें उसको पूर्वजन्मका स्मरण होगया। उसी समय पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त जानकर उसने यह निश्चय कर लिया कि यह मेरे पूर्वभवके बड़े भाई हैं। आप यह तपस्वी महामुनि हैं। इन्होंने ही कृपा करके मुझे धर्ममें स्थापित किया था। उस धर्मके साधनसे पुण्य बांधकर पुण्यके उदयसे मैं परम्परा सुखको पाता रहा हूं। मैंने तीसरे स्वर्गमें देव होकर महान भोग भोगे और अब सर्व सम्पदासे पूर्ण चक्रवर्तीके घरमें जन्मा हूं। यह मेरा सच्चा भाई है, इस लोक पर लोकका सुधारनेवाला है। इस तरह बुद्धिमान शिवकुमारने पूर्वभवका सर्व वृत्तान्त स्मरण किया और उसी क्षणमें मुनिराजके निकट आगया। मुनिवरको देखकर शिव-कुमारकी आंखोंमें प्रेमसे आंसू निकल आए। जैसे वह मुनिराजके पास गया, प्रेमके उत्साहके वेगसे वह मूर्छित होगया।

चक्रवर्तीने जब यह सुना कि शिवकुमारको मूर्छा आगई है

तब वह उसी क्षण आया और मोहसे आंसू भरकर रोने लगा। और यह कहने लगा—हे पुत्र! तूने यह अपनी क्या व्यवस्था की है। इसका क्या कारण है? शीघ्र भयहारी वचन कह! क्या अपनी स्त्रीके स्नेहसे आतुर हो लताके समान श्वास ले लेकर कांप रहा है। क्या किसी स्त्रीका नवीन अवलोकन किया है, जिसके संगमके लिये रुदन कर रहा है? क्या तुझे तरुणावस्थामें कामभावकी तीव्रता होगई है, जिससे आतुर हो जल रहा है? क्या किसी स्त्रीके वचनोंको व उसके गुणोंको स्मरण कर रहा है! इतनेमें सर्व नगरके मनुष्य आगए। देखकर व्याकुलचित्त होगए। दुःसह शोक पृथ्वीपर छागया। सबने अन्न पानी त्याग दिया। ठीक है, पुण्यवान पदार्थको कोई हानि पहुंचती है तो सबको उद्वेग होजाता है।

फिर किसी उपायसे चेतनता आगई, मूर्छा टल गई। कुमार प्रातःकालके सूर्यके समान जागृत होगया। सर्व लोग पूछने लगे—हे कुमार! मूर्छा आनेका क्या कारण है? शीघ्र ही यथार्थ कह जिससे सबको सुख हो, चिंता मिटे। तब शिवकुमारने मंत्रीके पुत्र दृढ़रथको जो उसका मित्र था, एकांतमें बुलाकर अपने मनका सब हाल वर्णन कर दिया। ठीक है, चिंतारूपी गूढ़ रोगसे दुःखी जीवोंके लिये मित्र बड़ी भारी औषधि है, क्योंकि मित्रके पास योग्य व अयोग्य सर्व ही कह दिया जाता है। कहा है:—

चिंतागूढ़गदार्तानां मित्रं स्यात्परमौषधम्।
यतो युक्तमयुक्तं वा सर्वं तत्र निवेद्यते ॥ १९५ ॥

शिवकुमारने मित्रसे अपना गूढ़ हाल कह दिया कि हे मित्र! मैं संसारके भोगोंसे भयभीत हुआ हूं। मैं नाना योनियोंके आवर्तोंसे भरे हुए महा भयानक इस दुस्तर संसार समुद्रसे पार होना चाहता हूं। उसके अभिप्रायको जानकर दृढ़धर्मने चक्रवर्तीको सर्व वृत्तांत कह दिया कि महाराज! शिवकुमार तप करना चाहता है।

शिवकुमारको वैराग्य।

हे महाराज! यह निकट भव्य है, शुद्ध सम्यग्दृष्टी है, यह राज्यसम्पदाको अपने मनमें तृणके समान गिनता है, यह आज बिलकुल विरक्त चित्त है, सर्व भोगोंसे यह उदासीन है, इसका जरा भी मोह न धनमें है न जीवनमें है। यह अपने आत्माके स्वरूपका ज्ञाता है, तत्वज्ञानी है, विद्वानोंमें श्रेष्ठ है। यह जैन यतिके समान सर्व त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्यको जानता है। इसका मन मेरु पर्वतके समान निश्चल है, यह परम दृढ़ है। किसीकी शक्ति नहीं है जो रागरूपी पवनसे इसके मनको डिगा सके। इसको इस समय पूर्व जन्मके संस्कारसे वैराग्य होगया है। इसका भाव सर्व जीवोंकी तरफ रागद्वेष शल्यसे रहित सम है, यह संशय रहित जिनदीक्षा लेना चाहता है।

चक्रवर्ती इन कठोर वज्रके घातके समान वचनोंको सुनकर चित्तमें अतिशय व्याकुल होगया। इसका मोहित हृदय विंध गया। आंखोंमेंसे बलपूर्वक आंसुओंकी धारा बह निकली। गद्गद् वचनोंको दीन भावसे कहता हुआ रुदन करने लगा। मेरा बड़ा दुर्भाग्य है!

मैंने विचार कुछ किया था, दैवके उदयसे कुछ और ही होरहा है। जैसे कमलके बीचमें सुगंधकी इच्छासे बैठा हुआ भ्रमर हाथीद्वारा कमल मुखमें लेनेपर प्राण खो बैठता है। वह कहने लगा कि— हे पुत्र! तुझको यह शिक्षा किसने दी है? तेरी यह बुद्धि विचार-पूर्ण नहीं है। कहां तेरी बाल अवस्था व कहां यह महान् मुनिपदकी दीक्षा? यह कार्य असंभव है, कभी नहीं होसक्ता है। इसलिये हे पुत्र! इस साम्राज्यको ग्रहण करो जिसमें सर्व राजा सदा नमन करते हैं। देवोंको भी दुर्लभ महाभोगोंको भोगो!

शिवकुमारका उपदेश।

इत्यादि पिताके वचनोंको सुनकर उसने घरमें रहना स्वीकार किया तथा कोमल वाणीसे कहने लगा—हे तात! इस संसाररूपी वनमें प्राणी कर्मोंके उदयसे चारों गतियोंमें भ्रमण करते रहते हैं। कहीं भी निश्चल नहीं रह सक्ते। कभी यह जीव नारकी होता है। फिर कभी पशु होजाता है फिर मनुष्य होजाता है। कभी आयुके क्षयसे मरके देव होता है। इसी तरह देवसे नर व तिर्यंच होता है। हे तात! न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिता है। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठती व बैठती हैं वैसे इस संसारमें प्राणी जन्मते व मरते हैं।

हे पिता! यह लक्ष्मी भी उत्तम वस्तु नहीं है। महा पुरुषोंने भोग करके इसे चंचला जान छोड़ दी है। यह लक्ष्मी वेश्याके समान चंचल है। एकको छोड़कर दूसरेके पास चली जाती है। इस लक्ष्मीका

विश्वास क्षण मात्र भी नहीं करना चाहिये। यह ठगनीके समान फसानेवाली है, व अनेक दुःखोंमें पटकनेवाली है। इन्द्रियोंके भोग सर्पके रमण समान शीघ्र ही प्राणोंके हरनेवाले हैं। यह जवानी जिसे भोगोंको भोगनेका स्थान माना जाता है, स्वप्नके समान या इन्द्रजालके समान विला जाती है, ऐसा प्रत्यक्ष भी दिखता है। तथा भूतकालके ज्ञानका स्मरण भी इसे देखकर होता है। यदि यह राज्यलक्ष्मी उत्तम थी तो महान ऋषियोंने क्यों इसका त्याग किया! पूर्वकालका चरित्र सुनाई पडता ह कि पहले बड़े बड़े ज्ञानी श्रीमान् ऐश्वर्यवान होगए हैं, उन्होंने सर्व परिग्रह व राज्यको त्यागकर मोक्षके लिये तप स्वीकार किया था। हे तात! ये भोग भोगने योग्य नहीं हैं। ये वर्तमानमें मधुर दीखते हैं, परन्तु इनका फल या विपाक कडुवा है। इन भोगोंसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

धर्म वही है जहां अधर्म न हो, पद वही है जिसमें कोई आपत्ति न हो। ज्ञान वही है जहां फिर कोई अज्ञान न हो। सुख वही है जहां कोई दुःख न हो।

भावार्थ—वीतराग विज्ञान धर्म है, मोक्षपद ही उत्तम पद है, केवल ज्ञान ही श्रेष्ठ ज्ञान है, अतीन्द्रिय आत्मीक सुख ही सुख है। कहा है—

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्पदं यत्र नापदः।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं तत्सुखं यत्र नासुखम् ॥ १५१ ॥

बुद्धिमान् चक्रवर्ती इस तरह बोधप्रद पुत्रके वचनोंको सुनकर

पुत्रके मनकी बातको ठीक ठीक जान गया। उसको निश्चय होगया कि यह मेरा पुत्र संसारसे भयभीत है, वैराग्यसे पूर्ण है, यह अपना आत्महित चाहता है, यह अवश्य उग्र तप ग्रहण कर मोक्षको प्राप्त करेगा, ऐसा जानकर भी मोहके उदयसे चक्रवर्ती कहने लगा— हे पुत्र! जैसी तुम्हारी दया सर्व प्राणियों पर है वैसी दया मुझपर भी करो। सौम्य! एक बुद्धिमानीकी बात यह है कि जिससे तुम्हें तपकी सिद्धि हो और मैं तुम्हें देखता भी रहूं इसलिये हे पुत्र! घरमें रहकर इच्छानुसार कठिन २ तप व्रत आदि अपनी शक्तिके अनुसार साधन करो।

शिवकुमार घरमें ब्रह्मचारी।

हे पुत्र! यदि मनमें रागद्वेष नहीं है तो वनमें रहनेसे क्या? और यदि मनमें रागद्वेष है तो वनमें रहनेका क्लेश वृथा है। इत्यादि पिताके वचनोंको सुनकर शिवकुमारका मन करुणाभावसे पूर्ण होगया। वह कहने लगा—हे तात! जैसा आप चाहते हैं वैसा ही मैं करूँगा। उस दिनसे कुमार सर्व संगसे उदास हो एकांतमें घरमें रहने लगा, ब्रह्मचर्य पालने लगा, एक वस्त्र ही रखा, मुनिके समान भावोंसे पूर्ण व्रत पालने लगा। वह रागियोंके मध्यमें रहता हुआ भी कमल पत्तेके समान उनमें राग नहीं करता था। अहा! यह सब सम्यग्ज्ञानकी महिमा है। महान् पुरुषोंके लिये कोई बात दुर्लभ नहीं है। कहा है—

> कुमारस्तद्दिनान्नूनं सर्वसंगपरांगमुखः।
> ब्रह्मचार्यैकवस्त्रोऽपि मुनिवत्तिष्ठते गृहे ॥ १६० ॥

अकामी कामिनां मध्ये स्थितो वारिजपत्रवत् ।
अहो ज्ञानस्य माहात्म्यं दुर्लभ्यं महतामपि ॥ १६१ ॥

कभी वह एक उपवास करके पारणा करता था, कभी दो दिनके पीछे, कभी एकपक्ष, कभी एक मासका उपवास करके आहार करता था । वह शुद्ध प्राशुक आहार, बहुधा जल व चावल लेता था । जिसमें कृत व कारितका दोष न हो ऐसा आहार दृढ़वर्म मित्र द्वारा भिक्षासे लाया हुआ ग्रहण करता था । (नोट—ऐसा मालूम होता है दृढ़वर्म मित्र भी क्षुल्लक होगया था । वह भिक्षासे भोजन लाता था । उसे ही दोनो ग्रहण करते थे । एक या अनेक घरोंसे लाया हुआ भोजन लेना क्षुल्लकोंके लिये विधिरूप था । कहा है—

प्राशुकं शुद्धमाहारं कृतकारितवर्जितम् ।
आदत्त भिक्षयानीतं मित्रेण दृढवर्मणा ॥ १६३ ॥

उस कुमारने घरमें रहते हुए भी तीव्र तपकी अग्निमें काम, क्रोधादिकको ऐसा जला दिया था कि ये भाग गए थे, फिर निकट नहीं आते थे। इस तरह शिवकुमार महात्माने पापसे भयभीत होकर चौसठ हजार वर्ष ६४००० वर्ष तप करते हुए पूर्ण किये। आयुका अन्त निकट देखकर वह नग्न दिगम्बर मुनि होगया । उसने इन्द्रियोंको जीतकर चार प्रकारके आहारका त्याग कर दिया । इस तपके करनेसे शुभोपयोग द्वारा बांधे हुए पुण्यके फलसे वह छट्ठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अणिमादि गुणोंसे पूर्ण विद्युन्माली नामका इन्द्र उत्पन्न हुआ। इसकी दश सागरकी आयु हुई । अब उसके पास वे चार महादेवी

विद्यमान हैं। वही विद्युन्माली यहांपर स्वर्गमें इंद्रके समान शोभ रहा है। यह सम्यग्दृष्टी है। इस सम्यग्दर्शनके अतिशयसे इसकी कांति मलीन नहीं हुई। (नोट–इससे सिद्ध है कि मिथ्यादृष्टी देवोंकी ही माला मुरझाती है, शरीरकी शोभा कम होती है, आभूषणोंकी चमक घटती है, परन्तु सम्यग्दृष्टी देवोंकी शोभा नहीं घटती है; क्योंकि उनके मनमें वियोगका दुःख व शोक नहीं होता है। सम्यक्तीको वस्तु स्वरूपके विचारसे इष्ट वियोगका व मरणका शोक नहीं होता है।) कहा है—

सोऽयं प्रत्यक्षतो राजन् राजते दिवि देवराट्।
नास्य कांतिरभूत्तुच्छा सम्यक्त्वस्यातिशायितः ॥१६९॥

सागरचन्द्र मुनिने भी व्रतमें तत्पर रहकर समाधिमरणपूर्वक शरीर छोड़ा। उसका जीव भी छट्ठे स्वर्गमें जाकर प्रतीन्द्र हुआ। वहां भी पंचेन्द्रिय सम्बन्धी नाना प्रकार सुखकी इच्छापूर्वक विना बाधाके दीर्घ कालतक भोग किया।

धर्मके फलसे सुख होता है, उत्तम कुल होता है, धर्मसे ही शील व चारित्र होता है। धर्मसे ही सर्व सम्पदाएं मिलती हैं, ऐसा जानकर हरएक बुद्धिमान्को योग्य है कि वह प्रयत्न करके धर्मरूपी वृक्षकी सदा सेवा करे। कहा है—

धर्मात्सुखं कुलं शीलं धर्मात्सर्वा हि संपदः।
इति मत्वा सदा सेव्यो धर्मवृक्षः प्रयत्नतः ॥ १७२ ॥

चौथा अध्याय।

जम्बूस्वामीका जन्म व बालक्रीड़ा।

(श्लोक १६० का भावार्थ)

सर्व विघ्नोंकी शांतिके लिये प्रकाशमान सुपार्श्वनाथको वन्दना करता हूं। तथा चन्द्रमाकी ज्योतिके समान निर्मल यशके धारी श्री चंद्रप्रभ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं।

चार देवियोंके पूर्वभव।

श्रेणिक महाराज विनय पूर्वक गौतम गणधरको पूछने लगे कि इस विद्युन्माली देवकी जो ये चार महादेवियां हैं वे किस पुण्यसे देवगतिमें जन्मी हैं. मेरे संशय निवारणके लिये इनके पूर्वभव वर्णन कीजिये। योगीश्वर विनयके आधीन होजाते हैं, इसलिये श्री गौतमस्वामीने उनका पूर्वभव कहना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे-हे श्रेणिक! इसी देशमें चंपापुरी नामकी नगरी थी, वहां धनवानोंमें मुख्य सुरसेन सेठ था। उस सेठके चार स्त्रियां थीं। उनके नाम थे जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी, यशोमती। इन महिलाओंके साथ यह सेठ बहुत काल तक सुख भोगता रहा, जबतक पुण्यका उदय रहा। फिर तीव्र पापके उदयसे सेठका शरीर रोगमई होगया, एक साथ ही सर्वरोगोंका संयोग होगया। कास, श्वास, क्षय, जलोदर, भगंदर, गठिया आदि रोग प्रगट होगए। जब शरीरमें रोग बढ़ गए तब शरीरकी धातुएं विरोधरूप होगईं। उस सेठके भीतर अशुभ वस्तुओंकी तीव्र अभिलाषा पैदा होगई। रोगी होनेसे उसका ज्ञान भी मंद होगया। वह

अपनी स्त्रियोंको मुट्ठीसे व लकड़ीसे मारने लगा। वह दुर्बुद्धि अकस्मात् भ्रांतिवान् होगया। मस्तिष्क बिगड़ गया। खोटे दुष्ट वचन कहने लगा–तुम्हारी पास कोई जार पुरुषको खड़े देखा था। फिर कभी देखूंगा तो तुम्हारे नासादिको छेद डालूंगा व प्राण ले लूंगा। इत्यादि कर्णभेदी शस्त्रके समान कठोर वचन स्त्रियोंको कहता था, पापके उदयसे रौद्रध्यानी होगया।

वे चारों बहुत दुःखी हुईं अपने जीवनको धिक्कार युक्त मानने लगीं। एक दफे वे तीर्थयात्राके लिये घरसे वनमें गईं। वहां श्री वासुपूज्यस्वामीका महान् मंदिर था, उसको देखकर भीतर जाकर श्री जिनबिम्बोंके दर्शन करके मानने लगी कि आज हमारा जन्म सफल हुआ है, आज हम कृतार्थ हुए। वहां मुनिराज विराजमान थे, उनके मुखारविंदसे धर्म व धर्मका फल सुना व गृहस्थ श्रावकके व्रत ग्रहण किये। व्रत लेकर वे घरसे लौट आई। इतनेमें महापापी सूरसेनका मरण होगया।

तब चारोंने अपना सर्व धन धर्मबुद्धिसे एक महान् जिनमंदिर बनानेमें खर्च कर दिया। फिर वैराग्यवान होकर चारोंने गृहका त्याग करके आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये। शास्त्रानुसार उन्होंने तीव्र तप किया। अतः शुभ भावोंसे पुण्य बांधकर उसी छठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देवियां पैदा हुईं और इस विद्युन्माली देवकी वे प्राणधारी महादेवियां होगईं।

श्रेणिक महाराज इस धर्मकथाको सुनकर बहुत ही प्रमुदित

हुए। फिर मनमें विचार किया कि एक और प्रश्न करें। स्वामी! आज आपने यह भी कहा था कि विद्युन्मालीका जीव जब मानव-भवको ग्रहण करेगा तब विद्युच्चर नाम चोर भी उनके साथ तप ग्रहण करेगा। यह विद्युच्चर कौन है, उसका क्या कुल है, चोरीकी आदत कैसे पड़ी, फिर वह मुनि कैसे होगा, विद्युच्चर! कृपा करके इसका सब वृत्तांत कहिये। मैं धर्मफलकी प्राप्तिके लिये विस्तार सहित सुनना चाहता हूं।

श्री महावीर तीर्थंकरके दयारूपी जलसे पूर्ण समुद्रके समान गंभीर श्री गौतमस्वामी कहने लगे-हे श्रेणिक! धर्मका अद्भुत महात्म्य है। तू श्रवण कर।

विद्युच्चरका वृत्तांत।

इसी मगधदेशमें हस्तिनागपुर नामका महान नगर है, जो स्वर्गपुरीके समान है। वहां संवर नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानी प्रियवादिनी कामकी खान श्रीषेणा थी। उसका पुत्र विद्युच्चर पैदा हुआ। यह बहुत विद्वान् होगया। जैसे जैसे कुमार अवस्था आती गई यह अनेक विद्याओंको सीख गया। इसको जो कुछ भी विज्ञान सिखाया जाता था, जल्दी ही सीख लेता था। रात दिन अभ्यास करनेसे कौनसी विद्या है जो प्राप्त न हो? यह शस्त्र व शास्त्र सर्व विद्याओंमें निपुण हो गया।

किसी एक दिन इसके भीतर पापके उदयसे यह खोटी बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैंने चोरी करना नहीं सीखा, उसका भी अभ्यास

करना चाहिये, ऐसा विचारकर वह एक रात्रिको अपने पिताके ही महलमें धीरे २ चोरकी तरह गया। बड़ी बुद्धिमानीसे बहुत मूल्य रत्न उठा लिये। उन रत्नोंका बड़ा भारी प्रकाश था। जब वह लौटने लगा तब उसको किसीने देख लिया। इस दर्शकने सबेरा होते ही राजाके सामने कुमारकी चोरीका वृत्तांत कह दिया। सुनकर राजाने उसे उसी समय बुलवाया। कर्मचारी दौडकर उसको ले आए। वह वीर सुभटके समान धैर्यके साथ सामने आकर खड़ा होगया। तब राजाने मीठी वाणीसे पुत्रको समझाया—हे पुत्र! चोरीका काम बहुत बुरा है। तूने यह चोरी किसलिये की? यदि तू भोगोंको भोगनेकी इच्छा करता है तो मेरी क्या हानि है। तू अपनी स्त्रियोंके साथ इच्छित भोगोंको भोग। जो वस्तु कहीं नहीं मिलेगी सो सब मेरे घरमें सुलभ हैं। जो तुझे चाहिये सो ग्रहण कर ले, परन्तु इस चोरी कर्मको तू न कर। यह बहुत निंद्य है, इसलोक व परलोकमें दुःखदाई है, सर्व संतापका कारण है, तू तो महान विवेकी है, ऐसे कामको कभी न कर।

पिताके ऐसे उपदेशप्रद वचनोंको सुनकर भी उसको शांति न मिली। जैसे ज्वरसे पीड़ित प्राणीको शक्करादि मिष्ट पदार्थ नहीं सुहाते हैं। वह दुष्ट चोरीका प्रेमी अपने पिताको उत्तरमें कहने लगा कि महाराज! चोरी कर्म व राज्यमें बहुत बड़ा भेद है। राज्यमें लक्ष्मी परिमित होती है। चोरी करनेसे अपरिमितका लाभ होता है। इन दोनोंमें समानता नहीं है। इसलिये चोरीके गुणको ग्रहण करना

उचित है। कर्तव्य व अकर्तव्यका विचार न करके पिताके वचनका उल्लंघन कर वह दुष्ट घरसे उदास होकर राजगृही नगरको चल दिया। वहां कामलता नामकी वेश्या बहुत सुंदर काम भावसे पूर्ण थी, उसके रूपमें आसक्त होगया। उस वेश्याके साथ इच्छित भोगोंको भोगने लगा। वह कामी विद्युच्चर चोर रात दिन चोरी करके जो धन लाता है वह सब वेश्याको दे देता है।

जम्बूस्वामी जन्मस्थान।

भगवान गौतमके मुखसे इस प्रश्नके उत्तरको सुन कर राजा श्रेणिक बहुत संतुष्ट हुआ। फिर प्रश्न करने लगा–हे भगवान्! आपने जो इस विद्युन्माली देवकी कथा कही थी, उसमें कहा था कि आजसे सातवें दिन यह इस पृथ्वीतलपर जन्मेगा, सो यह किस पुण्यवानके घरको अपने जन्मसे भूषित करेगा? जगतके स्वामीने उसके प्रश्नका यह समाधान किया कि इसी राजगृह नगरमें धन-सम्पन्न अर्हद्दास सेठ रहता है जो जैनधर्ममें तत्पर हैं। उसकी स्त्री स्वरूपवान जिनमती नामकी है, जो धर्मकी मूर्ति है, महान साध्वी है। जैसे उत्तम विद्या मानवको सुखदाई होती है, वैसे वह सुखको देनेवाली है। कहा है:—

> तस्य भार्या सुरूपाद्या नाम्ना जिनमती स्मृता।
> धर्ममूर्तिर्महासाध्वी सद्विद्येव सुखावहा ॥ ५२ ॥

उस जिनमतीके पवित्र गर्भमें पुण्योदयसे यह अवतार धारण करेगा। यह सम्यग्दर्शनसे पवित्र है। इसका आत्मा अवश्य मोक्ष-रूपी स्त्रीका स्वामी होगा।

वहां कोई यक्ष बैठा था, वह यह सुनकर आनंदसे पूर्ण हो नृत्य करने लगा। हे स्वामी! ऐ केवलज्ञानी! हे नाथ! जय हो, जय हो, आपके प्रसादसे मैं कृतार्थ होगया। मैंने पुण्यका फल पालिया। उसका कुल धन्य है, प्रशंसनीय है, जहां केवलीका जन्म हो, उस कुलमें सूर्यके समान केवलज्ञानसे वह प्रकाशित होगा। वही पवित्र देश है, वही शुभ नगर है, वही कुल पवित्र है, वही घर पावन है, जहां सदा धर्मका प्रवाह रहता है। कहा है:—

स एव पावनो देशस्तदेव नगरं शुभम्।
तत्कुलं तद्गृहं पूतं यत्र धर्मपरंपरा॥ ५७॥

जम्बूस्वामी कुलकथा।

वह यक्ष अपने आसनपर खड़ा खड़ा बारबार हर्षसे नृत्य करने लगा। तब श्रेणिकने पूछा कि महाराज! यह यक्ष क्यों नृत्य कर रहा है? गौतम गणेशराज श्रेणिकसे कहने लगे-इसी नगरमें एक श्रेष्ठ वणिक् पुत्र था, जिसका नाम धनदत्त था जो सौम्यपरिणामी था व धनमें कुबेरके समान था। उसकी स्त्री सुन्दर गोत्रमती नामकी थी, उसके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम अर्हद्दास जो बहुत बुद्धिमान् है। छोटेका नाम जिनदास था, जो चंचल बुद्धि था। पापके तीव्र उदयसे वह सर्व जुआ आदि व्यसनोंमें फंस गया। वह दुर्बुद्धि मांस खाने लगा, मदिरा पीने लगा, वेश्यासेवन करने लगा। पापी जुआ भी रमने लगा। उसका सर्व कर्म निंदनीय हो गया। इधर उधर दुःखदाई चोरीका कर्म भी करने लगा। अधिक क्या कहा जावे।

उसका आचरण सर्व बिगड़ गया। जगतमें प्रसिद्ध है, एक जूएके व्यसनमें फंसकर युधिष्ठिर आदि पांडुपुत्रोंने राज्यभ्रष्ट होकर महान दुःखोंको भोगा, परन्तु जो कोई इन सर्व ही व्यसनोंमें लोलुप होगा वह इस लोकमें आज व कल अवश्य दुःख भोगेगा व परलोकमें भी पापके फलसे दुःख सहन करेगा। कहा है:—

अहो प्रसिद्धिर्लोकेऽस्मिन् द्यूताद्धर्मसुतादयः।
एकस्माद्व्यसनान्नष्टाः प्राप्ता दुःखपरम्पराम् ॥ ६६ ॥
अयं सर्वैः समग्रैस्तु व्यसनैर्लोलमानसः।
अद्य श्वो वा परश्वश्च ध्रुवं दुःखे पतिष्यति ॥ ६७ ॥

इस तरह नगरके लोग परस्पर बातें करते थे। उसके जातिवाले उसको शिक्षा देनेके लिये दुर्वचन भी कहते थे।

इसतरह एक दिन जुआ खेलतेर जिनदास इतना सुवर्ण हार गया जितना उसके घरमें भी नहीं था। तब जीतनेवाले जुआरीने जिनदासको पकड़कर कहा कि शीघ्र मुझे जितना तूने द्रव्य हारा है, दे। जिनदास तीव्र धनकी हारसे आकुलित हो विना विचार किये हुए कठोर वचनोंसे उत्तर देने लगा—तू चाहे जो वध बन्धन आदि करे, मेरे पास आज इतना सुवर्ण देनेको नहीं है। मैं अपने प्राणोंका अंत होनेपर भी नहीं दूंगा। जिनदासके वचन सुनकर वह क्षत्रिय जुआरी क्रोधमें भर गया। कहने लगा कि मैं आज ही सर्व सुवर्ण लूंगा, नहीं तो तेरे प्राण लूंगा। तू ठीक समझ—दूसरी गति नहीं होसक्ती। परस्पर लड़ाई झगड़ा होने लगा। बड़ा भारी कोलाहल होगया।

दुष्ट क्षत्रियने क्रोधके आवेशमें आकर अपनी तलवारसे जिनदासको मारा। वह जिनदास मूर्छा खाकर गिर पड़ा। तब वह क्षत्रिय अपनेको अपराधी समझकर मारा गया। इतनेमें नगरके बहुत लोग वहां देखनेको आगए। जिनदासका भाई अर्हद्दास भी आया। भाईको मूर्छित देखकर व्याकुल चित्त हो उसे यत्नपूर्वक अपने घरमें लेगया। शस्त्र वैद्यको बुलाकर उसकी चिकित्सा कराई परन्तु जिनदासका समाधान नहीं हुआ। ठीक है जब दुष्ट कर्मरूपी शत्रुका उदय होता है तब सब उपाय वृथा जाता है। जैसे दुर्जन पुरुषके साथ किया हुआ उपकार उसके स्वभावसे वृथा ही होता है। कहा है—

उदिते दुष्टकर्मारौ प्रतीकारो वृथाखिलः।
निसर्गतः खले पुंसि कृताप्युपकृतिर्यथा॥ ७९॥

उसको ज्ञान देनेके लिये अर्हद्दास जैन सूत्रके अनुसार धर्म-भरी वाणी कहने लगा–हे भ्रात! इस संसाररूपी समुद्रमें मिथ्या-दृष्टी दुष्ट जीव सदा भ्रमण किया करता है, व महादुखोंको सहता है। इस जीवने संसारमें अनंतवार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव इन पांच परिवर्तनोंको किया है। पापबंधके कारण भाव मिथ्यात, विषयभोग, कषाय व मनवचन कायके योग हैं, इनमें भी जूआ आदिके व्यसन तो दोनों लोकमें निन्दनीय हैं। जूआ आदिके व्यसनोंमें जो फंस जाते हैं उनको इसलोकमें भी वध बंधन आदि कष्ट होता है व परलोकमें महान असाताकर्म उदयमें आकर तीव्र दुःख होता है।

हे भाई ! तूने प्रत्यक्ष ही द्युत कर्मका महान खोटा फल प्राप्त कर लिया। यह भी निश्चयसे जान, तू परलोकमें भी तीव्र दुःख पावेगा। अर्हदासके वचनोंको सुननेसे जिनदासका मन पापोंसे भयभीत होगया। रोगातुर होनेपर भी उसकी रुचि धर्मामृत पीनेमें होगई।

तब जिनदासने अर्हदासकी तरफ देखकर कहा कि वास्तवमें मैंने बहुत खोटे काम किये हैं। मैंने व्यसनोंके समुद्रमें मगन होकर अपना समय वृथा खो दिया। हे भाई ! मैं अपराधी हूं, मेरा तू उद्धार कर। इस लोकमें जैसा तू मेरा सच्चा हितैषी बन्धु है वैसा हे धर्मात्मा ! तू मेरी परलोकमें भी सहायता कर। अर्हदास भी जिनदासके करुणापूर्ण वचन सुनकर शुद्ध बुद्धि धारकर उसका धर्म साधन हो वैसा उपाय करने लगा। अर्हदासके उपदेशसे जिनदासने श्रावकके अणुव्रत ग्रहण कर लिये और तब समाधि-मरणसे मरके पुण्यके उदयमे यह यक्ष हुआ है। इसीलिये हे राजन् ! मेरे वचनोंको सुनकर यह नाच रहा है। इसके मनमें बड़ा हर्ष है कि मेरे वंशमें अंतिम केवलीका जन्म होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। यह विद्युन्मालीदेवका जीव अर्हदास सेठका पुत्र जन्मेगा और यही जम्बूस्वामी नामका धारी अंतिम केवली होगा।

हे राजन् ! जम्बूस्वामीकी कथा बड़ेर मुनींद्र सत्धर्मकी प्राप्तिके हेतु वर्णन करेंगे। श्रेणिक महाराज इस प्रकार भगवानकी दिव्यवाणी सुनकर व अपने इच्छित प्रश्नोंका समाधान करके बहुत प्रसन्न हुआ। और घर लौटनेकी इच्छा करके श्री जिनेन्द्रकी स्तुति गद्य

व पद्यमें करने लगा। भगवत्के गुणोंका स्मरण किया। स्तुतिके कुछ वाक्य ये हैं—हे देव महादेव! जय हो, जय हो। केवलज्ञान नेत्रके धारी भगवानकी जय हो। आप दयाके सागर हैं, सर्व प्राणी मात्रके हित कर्तार हैं। हे देवाधिदेव! आपकी जय हो, आपने घातीय कर्मोंका नाश कर दिया है, आपने मोहरूपी योद्धाको जीतकर वीरत्व प्रगट किया है, आप धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्तन करनेवाले हो। हे स्वामी! आपके समान तीन जगतमें कोई शरण नहीं है। हे विभु! जब तक मैं आपके समान न हो जाऊं, तब तक मुझे आपकी शरण प्राप्त हो। कहा है:—

यथा त्वं शरणं स्वामिन्नस्ति त्रिजगतामपि।
तथा मे शरणं भूयाद्यावत्स्यां त्वत्समो विभो॥ ९८॥

इस तरह स्तुति करके श्रेणिक राजा अपने नगरमें प्रयाण कर गया। घरमें रहते हुए वह श्रेणिक जिनेन्द्रकथित धर्मका पालन करने लगा। यह जिनधर्म, भावकर्म और द्रव्यकर्मका नाश करनेवाला है।

जम्बूस्वामीका जन्म।

राजा श्रेणिकको राज्य करते हुए कुछ काल बीत गया, तब श्री जम्बूस्वामीका जन्म हुआ था। अर्हद्दास सेठ राज्यश्रेष्ठी थे। राज्यकार्यमें मुख्य थे। उनकी स्त्री जिनमती सीताके समान शील-वती, गुणवती व रूपवती थी। दोनों दम्पति परस्पर स्नेहसे भीगे हुए सुखसे काल बिताते थे। यद्यपि वे गृहस्थके न्यायपूर्वक भोग करते थे, तथापि रात दिन जैन धर्ममें दत्तचित्त थे।

एक रात्रिको जिनमती सुखसे शयन कर रही थी, उसने रात्रिके पिछले पहर कुछ स्वप्न देखे। एक स्वप्न यह देखा कि जामुनका वृक्ष है, फलोंसे भरा हुआ है, भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, देखनेसे बड़ा प्रिय दीखता है। दूसरा स्वप्न देखा कि अग्निकी ज्वाला जल रही है, परन्तु धूप नहीं निकलता है। तीसरा स्वप्न चावलका खेत फूला हुआ हराभरा देखा। चौथा स्वप्न कमल सहित सरोवर देखा। पांचवां स्वप्न तरङ्ग सहित समुद्र देखा। प्रातःकाल उठकर अपने पतिसे स्वप्नोंका हाल जानकर अर्हद्दासको बहुत आनंद हुआ। जैसे मेघोंको देखकर मोरनी शब्द करती हुई नाचती है वैसे ही सेठका मन हर्षसे पूर्ण होगया। वह उसी समय उठा, स्त्री सहित श्री जिन मंदिरजी गया। वारवार नमस्कार किया। श्री जिनेन्द्रोंकी भले भावोंसे पूजा की। फिर वह वैश्वराज मुनीश्वरोंको प्रणाम करके स्वप्नोंका फल पूछने लगा—

हे स्वामी! आज रातको पिछले भागमें मेरी स्त्रीने कुछ शुभ स्वप्न देखे हैं, आप ज्ञाननेत्रधारी हैं! शास्त्रानुसार उनका क्या फल है सो कहिये। तब मुनिराजने कुछ देर विचार किया फिर कहने लगे कि—जम्बूवृक्ष देखनेका फल यह है कि कामदेव समान तुम्हारे पुत्र होगा। प्रज्वलित अग्निके देखनेका फल यह है कि वह कर्मरूपी ईंधनको जलाएगा। खेतके धान्य देखनेका फल यह है कि वह लक्ष्मीवान् होगा। कमलसहित सरोवर देखनेका फल यह है कि वह भव्यजीवोंके पापरूपी दाहकी संतापको शांत करनेवाला होगा। हे श्रेष्ठी! समुद्रके दर्शनका फल यह है कि वह

संसारसमुद्रके पार पहुंचेगा और भव्यजीवोंको सुख-प्राप्ति करानेके लिये धर्मामृतकी वर्षा करेगा। धर्मका फल सुनकर सेठको बहुत आनंद हुआ। मुनिवृन्दोंको मन वचन कायसे नमस्कार करके वह अपने घर आया। तब ही विद्युन्माली देवका जीव जिनमतीके गर्भमें पूर्व पुण्यके फलसे आगया था। गर्भाधान होनेपर जिनमतीका शरीर शिथिल रहने लगा। कोमल अंगमें पसिना आनेलगा। कुचका अग्र-भाग नीला होगया। स्तन व कपोल सफेद होगए। वह शिथिलतासे मिष्ट वचन भाषण करती थी। तौ भी जैसे रत्नागर्भा पृथ्वी शोभती है वैसे शोभती थी। शिशुके गर्भमें रहते हुए त्रिवली भंग होगई, परन्तु चरमशरीरी जीवको उसके उदरमें रहते हुए कोई बाधा नहीं हुई। गर्भवती जिनमतीको सुखदाई शुभ दोहला उत्पन्न हुआ, कि मैं देव शास्त्र गुरुकी उत्तम भावसहित पूजा करूं, जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा कराऊं, जीर्ण चैत्यालयोंका उद्धार करूं, चार प्रकार दान देऊं। उसकी गाढ़ श्रद्धा पुण्यकर्मके लिये होगई।

सेठजीने दोहलेको जानकर हर्षित मनसे उसकी सर्व इच्छा पूर्ण की, बड़े उत्साहसे धन खर्च किया। उसके मनमें पुत्रके दर्शनकी तीव्र इच्छा थी। नौ मास पूर्ण होने पर जिनमतीने सुखसे महा तेजस्वी, महापवित्र पुत्रको जन्म दिया, मानो पूर्व दिशाने सूर्यका उदय कर दिया। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें पूर्णिमाके शुभ दिनमें प्रातःकाल जम्बूस्वामीका जन्म हुआ।

आनंदसे गद्गद सेठने बन्धुवर्ग व नगरवासियोंको बुलाकर जन्मका बड़ा उत्सव किया। स्वर्गमें दुन्दुभि बाजे बजे। स्वर्गसे

पुष्पोंकी वर्षा हुई। ठंडी, पुष्परजसे सुगंधित पवन चलने लगी। सर्व तरफ जय जयकार ध्वनि होने लगी, जो कानोंको प्रिय लगती थी व परमानंद होता था। मंगल गीतको जाननेवाली स्त्रियें गीत गाने लगीं। सुन्दर भृकुटी रखनेवाली व कुंकुमके समान लाल साड़ी पहने हुई भामिनीयें मंगल नृत्य हर्षसे करने लगीं। सेठके घरका आंगण सुंदर पताकाओंसे व मणिमाणिक्यकी शोभासे जिस शोभाको प्राप्त हुआ, उसका वर्णन कोई महान् कवि भी नहीं कर सक्ता है।

सेठने इतना दान दिया कि उसके धनका क्षय नहीं हुआ, धनके लेनेवालेकी कमी थी, उसको धन देनेमें कमी नहीं थी। इस तरह पुण्यात्मा सुन्दर जम्बूकुमार बड़े सुखसे व लाड़ प्यारसे पाला जाने लगा। मातापिताने बंधुओंकी सम्मतिसे जम्बूकुमार नाम रक्खा। सेठजीने उसके पोषणके लिए धाएं नियत कर दी थीं, जो बालकको स्नान करावे, शृंगार करावे, क्रीड़ा करावे। जब वह मुस्कराता हुआ मणिकी भूमिको स्पर्श करता था तब मातापिता उसकी अद्भुत चेष्टा देखकर मुदित होजाते थे। उसका रूप देखकर जगतके लोगोंको बड़ा आनंद होता था। उसका शिशुपना चंद्रमाकी कलाके समान बढ़ने लगा।

जम्बूस्वामीकी शिशु वय।

इसके मुखरूपी चंद्रमाकी कांतिको बढ़ती हुई देखकर माता-पिताका संतोषरूपी समुद्र बढ़ता जाता था। जब यह मुखमे हंसता था तब ऐसा झलकता था कि इसका मुख सरस्वतीका सिंहासन है

व लक्ष्मीका घर है या कीर्तिरूपी वेलका विकास है। जब वह डग-मगाते हुए पगोंसे इन्द्रनील मणिकी भूमिपर चलता था, तब वह रक्त कमलोंकी शोभाको जीत लेता था। अपने समान वयधारी शिशुओंके साथ वह रत्न–धूलिमें क्रीड़ा करता हुआ मातापिताको प्रसन्न करता था। वह बाल चंद्रके समान था। अपने उत्तम गुणोंसे प्रजाको आनंददाता था। उसके अङ्गमें निर्मल यश व्याप्त था। बालावस्था उलंघन करके जब वह कुमार वयमें आगया तब उसका तेज इन्द्रोंसे पूज्यनीय होगया था। शरीर सुन्दर था, मीठी बोली थी, उसका दर्शन प्रिय था। जब वह मुसकराकर बातें करता था तब जगतके प्राणी प्रेमसे पूर्ण होजाते थे। वह अब सर्व कलाओंमें पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान पूर्ण होगया। इस पुण्यवानको जगतकी सर्व विद्याएं स्वयं पूर्वजन्मके अभ्याससे स्मरण आगईं। शिक्षा विना ही वह सर्व कलाओंमें कुशल था, सर्व विद्याओंमें चतुर था, सर्व क्रियाओंमें दक्ष था। वह बृहस्पतिके समान सर्व शास्त्रका ज्ञाता होगया। जैसे शरीर बढ़ता जाता था, गुण बढ़ते जाते थे। वह चरम शरीरी था। इसमें विशेष आरोग्य, सौभाग्य व सौंदर्य था।

जम्बूस्वामीकी कुमार क्रीड़ा।

कभी कभी यह सुन्दर लिपि लिखता व लिखाता था। गाना बजाना स्वयं करता व कराता था। मित्रोंके साथ छंद अलंकारके साथ वार्तालाप करता था। चित्र खींचने आदिकी कलाका जानने-वाला था। कभी कभी कवियोंके साथ काव्य चर्चा करता था।

कभी कभी वाद करनेवालोंके साथ किसी २ विषय पर वाद करता था। कभी गान मंडलीमें गीत गाता व सुनता था। कभी बाजा बजानेवालोंकी गोष्ठी करता था। कभी वीणाकी ध्वनि सुनता व सुनाता था। कभी करताल ध्वनिके साथ नृत्यकारोंका नृत्य कराता था। कभी गांधर्वके द्वारा गाए हुए गंगाजलके समान अपने निर्मल यशको सुनता था।

कभी वापिकाओंमें कुमारोंके साथ जाकर जलक्रीडा करता था, कभी पिचकारियोंमें जल भरकर जल छिड़कता था। कभी नंदन वनके समान वनोंमें जाकर कुमारोंके साथ वनक्रीड़ा करता था। इसतरह आठ वर्षका होनेपर भी सर्व प्रकार क्रीड़ा व विनोदमें निपुण था।

वह जंबुकुमार देवतुल्य था, इन्द्रादि देवोंसे पूज्यनीय था, सर्व गुणरूपी रत्नोंकी खान था, पवित्र मूर्ति था, पुण्यमयी अपने घरमें कुमारोंके साथ इच्छित क्रीड़ाओंको करता हुआ रहता था। वह कुमार राजकुमारोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ चंद्रमाके समान शोभता था। उसकी छातीपर हार ऐसा झलकता था, मानों लक्ष्मीदेवीके झूलनेका हिंडोला है जिसके मोती तारोंकी चमकके समान चकमते थे।

जिस धर्मरूपी महान वृक्षके फलरूप पुण्यके उदयसे स्वर्गमें देव महान सुखको भोगते हैं व जिसके फलरूप पुण्यके उदयसे महान पुरुष तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण प्रतिनारायण आदि उत्पन्न होते हैं, उस धर्मरूपी महावृक्षकी सेवा यत्नपूर्वक अन्य सत् पुरुषोंको भी करना योग्य है।

पाचवाँ अध्याय।

जम्बूकुमारकी वसंतक्रीडा व हाथीको वश करना।

(९६ श्लोकोंका भावार्थ)

यथार्थ विधिको बतानेवाले व धर्मतीर्थके कर्ता श्री सुविधि या पुष्पदंतनाथको तथा शांतिपद वाणीके कर्ता श्री शीतलनाथ भगवानको नमस्कार करता हूं।

जम्बूकुमारका रूप।

जम्बूकुमारका शरीर यौवनपूर्ण व मनोहर दीखता था जैसे शरदकी पूर्णीमासीका चन्द्रमा ही हो। शरीर सुवर्ण रङ्गका था, कामदेवके समान रूपवान था, रोगरहित था। शरीरमें सुगंध आती थी, शरीरमें १००८ लक्षण थे। वज्रवृषभ नाराच संहनन था, समचतुर संस्थान था। वायु, पित्त, कफ सम्बन्धी कोई रोग नहीं थे। शरीर परमौदारिक शोभनीक था। उसके रूप लावण्य व यौवनको देखकर मानवोंके नेत्र रूपी भ्रमर कहीं और जगह नहीं रमण करते थे। उसके कामदेव समान रूपको देखकर नगरकी स्त्रियां कामकी पीड़ासे आकुलित थीं, नगरकी स्त्रियां उसके रूपको बार-बार देखना चाहती थीं, रूपको न देख कर आकुल होती थीं। कोई २ स्त्री रूप देखकर पागल सी होजाती थी, कोई लम्बे श्वांस लेने लगती थी। कोई पण्डिता स्त्री कुमारके रूपको स्मरण कर

चित्रपटके समान देखती रहती थी। कोई २ स्त्री घरके कार्यको छोड़ कर झरोखेमें आकर बैठती थी कि कुमारका रूप देखनेमें आजावे। कोई किसी बहानेसे घरसे बाहर जाकर जहां जम्बूकुमारका आना जाना रहता था उन बड़ी २ सड़कोंपर घूमती थी। कोई स्त्री मार्गमें देखकर कुमारका दर्शन न पाकर घरके कामकी चिंतासे आतुर हो लौट जाती थी। कोई २ तरुणी उसे देखकर ऐसा निदान करती थी कि अन्य जन्ममें मुझे ऐसा रूपवान पति होवै। उस कुमारके रूपको देखनेसे स्त्रियोंकी जो दशा होती थी उसे कवि वर्णन नहीं कर सक्ता है। वास्तवमें एक पुत्र अच्छा है, यदि वह गुणवान हो व अपने कुलका प्रकाश करनेवाला हो। कुलको कलंकित करने-वाले हजारों पुत्रोंसे क्या लाभ? कहा है—

सुपुत्रो हि वरं चैको स्वात्स्वकुलदीपकः।
न च भद्रं कुपुत्राणां सहस्राणि कुलद्विषाम्॥ २०॥

कुमारके गुणोंकी सम्पत्तिको सुनकर कितने ही सेठोंका मन होता था कि हम अपनी कन्या उसे व्याहें। उसी नगरमें एक सेठ जिनभक्त सागरदत्त रहता था। उसकी स्त्री सुन्दर पद्मावती थी, उसकी एक कन्या पद्मश्री थी। जिसका मुख कमलके समान प्रफु-ल्लित था, जो बड़ी सुंदरी थी, व नवयौवन पूर्ण थी।

वाणिज्यकारकोंमें श्रेष्ठ दूसरा सेठ धनदत्त था, उसकी सेठाणी सुंदरमुखी कनकमाला थी। इसकी पुत्री कनकश्री थी। जिसका स्वर कोयलके समान था, तप्तायमान सोनेके समान शरीरकी आभा थी, कर्णतक लम्बे नेत्र थे।

तीसरा एक धनवान व्यापार-शिरोमणि **वैश्रवण** सेठ था। उसकी भार्या विनयवती **विनयमाला** थी। उसकी कन्या **विनयश्री** थी जो कामकी ध्वजा थी। सुकुमार शरीरवाली थी व सुन्दर लक्षणोंको धरनेवाली थी। चौथा लक्ष्मीवान व्यापारी सेठ **वणिकदत्त** था। उसकी पतिव्रता स्त्री **विनयमती** थी। उसकी कन्या रूपश्री थी जो पूर्ण मनोहर थी। ये चारों ही कन्याएं नवयौवना थीं।

जम्बूकुमारकी सगाई।

चारों ही सेठ अपनी २ कन्याओंके लिये योग्य वरकी चिंतामें रहते थे। सबने यही सम्मति पक्की की कि हम अपनी कन्याएं **जम्बूकुमारको** विवाहेंगे। तब चारों ही सेठ अर्हदास सेठके घर पर आए और अपने मनका भाव प्रगट किया। हे श्रेष्ठी! आप धन्य हैं, तीन लोकमें माननीय हैं, आपके घरमें जगतको पवित्र करनेवाला महा पवित्र पुत्र श्री जम्बूकुमार है, वह जगतमें विख्यात है। हम चारोंकी प्रार्थनाको आप स्वीकार करें। हम अपनी कन्याएं आपके पुत्रको उचित जानके देना चाहते हैं। जम्बूस्वामी उनके भर्तार होनेको योग्य हैं। इससे परस्पर प्रीति बढ़ेगी। हमारा आपसे परस्पर मैत्रीभाव है ही। हम आपके आज्ञाकारी सेवकके समान हैं। उनके प्रेमपूर्ण वचन सुनकर अर्हदास सेठ मुसकरा दिये, बहुत प्रसन्न हुये। भीतर जाकर जिनमतीसे कहा। जिनमती इस बातको सुनकर बहुत हर्षित हुई और इस बातको स्वीकार किया। पुत्रके विवाहके उत्सवकी इच्छा स्त्रियोंको स्वभावसे ही होती है।

जिनमतीकी सम्मति भी पाकर अर्हद्दास सेठने उन चारों सेठोंसे कह दिया कि आपकी इच्छानुसार ही कार्य होगा। अक्षय-तृतीया (वैशाख सुदी तीज) का दिवस विवाहके लिये नियत होगया। सेठने उन चारोंका बहुत सत्कार किया, फिर वे अपने घर चले गए। उस दिनसे अर्हद्दास सेठके व उन चारों सेठोंके घरोंमें मंगलगीत हुआ करते थे। वे विवाहके लिये सामग्री एकत्र करते थे। घरोंमें उत्तम चित्र रचवाते थे, धन धान्य सुवर्णादि वस्त्र अलंकार धन देकर खरीद करते थे। सबने अपने २ बन्धुवर्गोंको निमन्त्रण कर दिया था। चारों सेठोंको विवाह करनेका बड़ा ही उत्साह था।

वसन्तऋतुका आगमन।

इतनेमें ऋतुओंमें शिरोमणि वसन्तराजका आगमन हुआ। वृक्षोंके पुराने पत्ते गिर पड़े थे, नवीन पत्ते आगए थे। नीले कमल-पत्रके समान शोभते थे। फूलोंके द्वारा वह वसन्तराज अपने यशको विस्तार रहा था। वनोंमें कोयलोंके शब्द होरहे थे, चारों तरफ सुगन्ध फैली हुई थी। मानों कामदेवने मोहित करनेको जाल ही बिछा दिया है। फूलोंकी गंधसे खिंचकर भ्रमरोंकी पंक्तियां वनमें घूम रही थीं। वहां शीतल मंद सुगन्ध पवन चलती थी। वहां अशोक वृक्ष व चंपक वृक्ष शोभते थे। किंशुकके फूल शोभनीक थे। ऐसी वसन्तऋतुमें जम्बूकुमार अन्य कुमारोंको लेकर वनमें क्रीड़ा करनेको गए। उस समय नगरके लोग अपनी २ स्त्रियोंके साथ वनमें गए थे और वनकी क्यारियोंमें मनवांछित क्रीड़ा करते थे। एकदफे सर्वजन

सरोवरमें स्नान करनेको गए। स्नान करके अपने डेरोंकी तरफ आरहे थे। मार्गमें परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। कुछ लोग घोड़े और हाथियोंपर सवार थे। चारों तरफ बाजोंकी गंभीर ध्वनि होरही थी।

राजाके हाथीका छूटना।

वह भयंकर कोलाहल सुनकर श्रेणिक राजाका वह हाथी जो युद्धमें जाता रहता था, भयभीत होगया। सांकल तोड़कर क्रोधमें भरकर वनमें घूमने लगा। उसके कपोलोंसे मद झरता था, जिस पर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। उसको देखकर व उसके भयंकर शब्द सुनकर सब जन भयभीत होगए। वह नील पर्वत समान काला था। कान जिसके हिलते थे, बड़ा भारी शरीर था, कालके समान था। आषाढ़ मासके मेघोंके समान था। बड़े २ दांतोंसे पृथ्वीको खोदता था। सूंड़से पानी लेकर फेंकता था। ऐसे हाथीके छूट जानेसे सारा वन भयानक भासने लगा। यह हाथी जिधर जाता था वृक्षोंको जड़मूलसे उखाड़ लेता था। वह वन इतना मनोहर था कि उस वनमें आम्र, जांबन, नारंगी, तमाल, ताल, अशोक, कदंब, सल्लकी, शाल, नीम्बू किसमिस, खजूर, अनार आदि फलोंके वृक्ष थे। चंपा, कुंद, मचकुंद आदिके सुगंधित फूल थे। नागरवेलादि सुंदर वेलोंके पत्तोंसे मनोहर था। इलायची, लवंग, सुपारी, नारियल, आदिसे पूर्ण था। मोर मोरिणीके शब्दोंसे गूंज रहा था, कोयलें मनोहर ध्वनि कर रही थीं। उस वनकी शोभा क्या कही जावे। देवगण भी जिसकी प्रशंसा करते थे।

उन्मत्त हाथीने सर्व वनको क्षणमात्रमें नाश कर दिया, जिस

तरह विषयोंके लोभमें फंसा हुआ मलीन मन पुण्यके वृक्षको नाश कर डालता है। सब लोग कायरतासे इधर उधर भागते थे, कोई हाथीके सामने नहीं आता था। कोई आकुलित चित्त हो अपनी स्त्रियोंके रक्षणमें लग रहे थे, जो बिचारी अधीर हो सावधानीसे नहीं चल सक्ती थीं। योद्धा लोग हाथीको बांधनेके लिये सामने जानेका साहस नहीं करते थे, मनमें विचारते थे, मालूम नहीं आज क्या होनेवाला है। बड़े २ योद्धा हाथीके गौरवको देखकर उत्साह रहित उद्यमरहित व उदास थे। राजा श्रेणिक भी सामने था, वह भी उस हाथीको पकड़ न सका। जम्बूस्वामी कुमार बड़े बलवान व वीर्यवान थे, वे अपने स्थान पर ही खड़े रहे, किंचित् भी भयसे हटे नहीं। उस हाथीको तृणके समान समझकर जम्बूकुमारने भयरहित हो धैर्यसे उसकी पूंछ पकड़ ली।

वास्तवमें वज्रके समान जम्बूकुमारकी हड्डियां थीं, वज्रके समान कीले थे, वज्रके समान नसोंका जाल था। इस कुमारको वज्र भी खंडित नहीं कर सक्ता था। कीट समान हाथीकी तो बात ही क्या है। हाथीने बहुत पुरुषार्थ किया कि कुमारके शरीरको बाधा पहुंचावे, परन्तु वह वज्र शरीरको किंचित् भी कष्ट नहीं देसका। वज्र शरीरधारी यदि हाथीको जीत ले तो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है।

जंबूकुमारका हाथीको वश करना।

कुमारका साहस व बल अचिन्त्य था, उन्मत्त हाथीको कुमारने क्षणमात्रमें मद रहित कर दिया। वह कुमार उसके दांतोंपर पग

रखकर शीघ्र ही उसके ऊपर चढ़ बैठा और हाथीका मान चूर्ण करके उसको इच्छानुसार इधर उधर घुमाने लगा। तब सर्व ही महान पुरुषोंने जंबूकुमारका बड़ा ही सत्कार किया।

सब लोग कहने लगे—धन्य है कुमारका अद्भुत बल! देखो जिसने देखते देखते एक क्षणमें भयानक हाथीको वश कर लिया। अहो पुण्यका बड़ा महात्म्य है! महान पुरुषोंके द्वारा यह पूज्य है। पुण्यके बलसे यश प्राप्त होता है। पुण्यसे विजय होती है। पुण्यसे सुख मिलता है। कहा है—

अहो पुण्यस्य माहात्म्यं महनीयं महात्मभिः।
येन हस्तगतं सर्वं यशः सौख्यमथो जयः॥ ८६॥

जम्बूकुमारका वीर्य देखकर श्रेणिक महाराजको आश्चर्य हुआ। नीतिनिपुण राजाने उस कुमारको बुलाकर अपने साथ अर्धं सिंहासनपर बिठाया, प्रसन्न मन हो बार बार कुमारकी प्रशंसा करने लगा व द्रव्योंसे व रत्नोंसे कुमारकी भक्तिपूर्वक पूजा की। राजा कहने लगा—हे महाभाग! तू धन्य है जिसने ऐसे भयंकर हाथीको वश किया। तेरी जिनमती माता धन्य है जिसके गर्भसे तेरे समान पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी हाथीके मस्तकपर बिठाकर दुंदुभि बाजोंकी ध्वनिके साथ व सैकड़ों राजाओंके समूहको साथ लिये हुए कुमारको नगरमें प्रवेश कराया।

माता पिता बड़े आदरसे अपने घरमें लाए और उसका बड़ा ही सन्मान किया। सिंहासनपर बिठा कर माता पिताने मस्तक

झुका कर स्नेहसे चित्त भिगोकर पूछा–हे वत्स! गजराजको वश करते हुए तेरे शरीरमें सब कुशल है? कोई २ कुमारके शरीरको कोमल हाथसे स्पर्श कर कहने लगे–कहां तेरा केलेके पत्तेके समान कोमल शरीर, कहां मेरु पर्वतसम हाथी, किस तरह तूने वश किया? महान आश्चर्यवान होकर माता पिता अपने पुत्रके मुखको देखकर सुखको प्राप्त होते थे। जिस पुण्यके फलसे जम्बूस्वामी कुमार राज्य-सभामें मान्य हुए, बुद्धिवानोंको उचित है कि उस पुण्यका संग्रह करें।

छठा अध्याय।

जम्बूस्वामीकी जय पताका।

(२५७ श्लोकोंका भावार्थ)

दुःखकी संतानको हरनेवाले व धर्मतीर्थके कर्ता श्री श्रेयांस भगवानको तथा सर्व विघ्नोंकी शांतिके लिये श्री वासपूज्य तीर्थंकरको मैं नमस्कार करता हूं।

एक दिन राजा श्रेणिक सभाके बीच सिंहासनपर विराजित थे। अनेक राजा उनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे, नतमस्तक थे। पानीके झरनेके समान चमर राजापर ढुर रहे थे। महामंत्री, सेनापति आदि राज्य कर्मचारी वर्ग सभामें यथास्थान शोभायमान थे। पासमें श्री जम्बूस्वामी कुमार भी प्रसन्नतासे तिष्ठे हुए थे, जिनके शरीरका तेज राजाओंके शरीरके तेजको मंद करता था।

विद्याधर द्वारा केरलदेश वर्णन।

इतनेमें अकस्मात् आकाशके मार्गसे दिशाओंमें प्रकाश फैलाता हुआ एक विद्याधर आया। यह घंटोंकी ध्वनिसे शोभित विमानपर आरूढ़ था। विमानको ठहराकर वह नीचे उतरा। राजा श्रेणिकके पास जाकर नमस्कार किया और विनय सहित यह कहने लगा कि हे राजन्! सहस्रश्रृंग नामका एक उत्तम पर्वत है जहां विद्याधर मनुष्य रहते हैं। उसी पर्वतपर मैं भी दीर्घकालसे सुखपूर्वक रहता हूं। मेरा नाम व्योमगति घोड़ा है। हे राजन्! मैं एक आश्चर्यकारी बातको कहनेको आया हूं सो आप श्रवण करें। मलयाचल पर्वतके दक्षिण भागमें केरल नामका नगर है। उस नगरका राजा मृगांक यशस्वी व गुणवान है। उसकी स्त्रीका नाम मालतीलता है। वह मेरी बहन है। वह शीलवान है, गुणवान है, सुवर्णके समान शरीरधारी है, उसकी कन्याका नाम विशालवती है। कर्म विधाताके द्वारा वह कामकी क्रीड़ाका स्थान ही निर्मापित है, विशालनेत्र कर्णपर्यंत चले गए हैं। शरीर कंचन समान है। एक दिन मृगांक राजा विद्याधरने एक मुनिराजसे प्रश्न किया कि हे दयासागर स्वामी! मेरा एक संशय है उसको निवारण कीजिये। मेरी पुत्रीका वर कौन होगा? इस वाक्यको सुनकर मुनिमहाराज अपनी दांतोंकी किरणोंसे दिशाओंको धोते हुए यथार्थ वचन कहने लगे कि राजगृह नामके रमणिक नगरमें राजा श्रेणिक है वही तेरी पुत्री विशालवतीका वर होगा।

(नोट—महावीर स्वामीके व गौतमबुद्धके समयमें दक्षिणकी

तरफ केरल-देशमें ऐसे लोग रहते थे जिनको विद्याधर कहते हैं। ये लोग आकाशमें विमानोंपर चढ़के चलते थे। उस समय भी विमानपर चढ़कर चलनेकी कलाका प्रचार था, ऐसा इस चरित्रसे झलकता है।)

हे स्वामी! हंसद्वीपका निवासी विद्याधरोंका राजा बड़ा तेजस्वी रत्नचूल नामका विद्याधर है। उसने उस सुंदर कन्याको अपने लिये वरनेकी इच्छा प्रगट की। राजा मृगांकको मुनिराजके वचनोंपर श्रद्धा थी। उसने श्रेणिकको ही देनेका विचार स्थिर करके रत्नचूलकी बात अस्वीकार की। इस बातसे रत्नचूलने अपना बहुत अपमान समझा, क्रोधित हो गया, मृगांक राजासे वैर बांध लिया, सेनाको सजकर उसने मृगांकके नगरको नाश करना प्रारम्भ कर दिया है। उस पापीने मकान तोड़ डाले हैं। धन-धान्यसे पूर्ण व ग्रामोंकी पंक्तियोंसे शोभित ऐसे ऐश्वर्यवान देशको ऊजड़ कर दिया है। वनोंको उखाड़ डाला है, किला भी तोड़ दिया है। और अधिक क्या कहूं, सर्व ही नाश कर दिया है। मृगांक भयसे पीड़ित होकर अपने किलेके भीतर ठहर कर किसी तरह अपने प्राणोंकी रक्षा कर रहा है। वर्तमानमें जो वहांकी दशा है सो मैंने कह दी। आगे क्या होगा, उसे ज्ञानीके सिवाय और कौन जान सक्ता है? मृगांक राजा भी युद्धमें सावधान है। आज व कलमें वह भी अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करेगा।

क्षत्रियोंका यह धर्म है कि जब युद्धमें शत्रुका सामना किया

जाता है तब प्राणोंका त्याग करना तो अच्छा है परन्तु पीठ दिखाकर जीना अच्छा नहीं। कहा है—

क्रमोऽयं क्षात्रधर्मस्य सन्मुखत्वं यदाहवे।
वरं प्राणात्ययस्तत्र नान्यथा जीवनं वरं॥ ३०॥

महान पुरुषोंका धन व प्राण नहीं है, किन्तु मानरूपी महान धन है। प्राण जानेपर भी यशको स्थिर रखना चाहिये। मान नहीं रहा तो यश कहांसे हो सक्ता है। कहा है—

महतां न धनं प्राणाः किंतु मानधनं महत्।
प्राणत्यागे यशस्तिष्ठेत् मानत्यागे कुतो यशः॥ ३१॥

जो कोई शत्रुके पूर्ण बलको देखकर विना युद्ध किये शीघ्र भाग जाते हैं उनका मुख मैला होजाता है। जो कोई बुद्धिमान धैर्यको धारण करके युद्ध करते हैं, मर जाते हैं, परन्तु पीठ नहीं दिखाते हैं, वे ही यशस्वी धन्य हैं। कहा है—

ये तु धैय विधायाशु युद्धं कुर्वंति धीधनाः।
मृतास्तत्रैव नो भग्ना धन्यास्ते हि यशस्विनः॥ ३२॥

हे राजन्! मैं वचन देकर आया हूं, मुझे वहां शीघ्र जाना है। यह कार्य परम आवश्यक है, मुझे विलम्ब करना उचित नहीं है। मैं क्षण मात्र यहांपर आपका दर्शन करता हुआ इस उत्तम स्थानमें वहांका वर्णन करता हुआ ठहरा था। अब मेरा मन यहां अधिक ठहरना नहीं चाहता है। हे राजन्! आज्ञा दीजिये जिससे मैं शीघ्र जाऊं। ऐसा कहकर वह आकाशगामी विद्याधर तुरंत चल-

नेको उद्यमी हुआ। इतनेमें जम्बूस्वामी उस विद्याधरसे कहने लगे—

हे विद्याधर! क्षणभर ठहरो ठहरो, जबतक श्रेणिक महाराज तैयारी करें। यह महाराज बड़े पराक्रमी हैं। सर्व शत्रुओंको जीत चुके हैं, उनके पास हाथी, घोड़े, रथ, बलदोंकी चार प्रकारकी सेना है, यह महा धीर हैं, राजा बड़ा बुद्धिमान है, राज्यके सातों अंगोंसे पूर्ण है, तेजस्वी है व यशस्वी है। कुमारके वीरतापूर्ण वचन सुनकर विद्याधरको आश्चर्य हुआ। फिर वह विद्याधर सर्व वचन युक्तिपूर्वक कहने लगा-हे बालक! तूने जो कुछ कहा है वही क्षत्रियोंका उचित धर्म है, परन्तु यह काम असंभव है। इसमें तुम्हारी युक्ति नहीं चल सक्ती। यहांसे वह स्थान सैकड़ों योजन दूर है, वहां जाना ही शक्य नहीं है तब वीर कार्य करनेकी बात ही क्या? तुम सब भूमिगोचरी हो, वे आकाशगामी योद्धा हैं, उनके साथ आपकी समानता कैसे हो सक्ती है? जैसे कोई बालक हाथीको पानीमें डालकर चन्द्रबिम्बकी परछाईको चन्द्र जानकर पकड़ना चाहें वैसा ही आपका कथन है। अथवा कोई बोना मानव बाहु रहित हो और ऊंचे वृक्षके फलको खाना चाहे तो यह हास्यका भाजन होगा वैसा ही आपका उद्यम है। यदि कोई अज्ञानी पगोंसे सुमेरु पर्वतपर चढ़ना चाहे, कदाचित् यह बात होजावे परन्तु आपके द्वारा यह काम नहीं होसक्ता है। जैसे कोई जहाजके विना समुद्रको तरना चाहे वैसे ही यह आपका मनोरथ है कि हम रत्नचूलको जीत लेंगे।

इस तरह हजारों दृष्टांतोंसे उस विद्याधरने अपने प्रभावका

बल दिखलाया। सर्व और चुप रहे, परन्तु यशस्वी कुमारसे न रहा गया। वह वादी-प्रतिवादीके समान अनेक दृष्टान्तोंसे उत्तर देने लगा। हे विद्याधर! ऐसे विना जाने वचन कहना ठीक नहीं है। ज्ञान विना किसीके बल व अबलको कौन जान सक्ता है? कुमारके वचनको सुनकर व्योमगति विद्याधर निरुत्तर होगया। मौनसे कुमारके पराक्रमको देखनेके लिये ठहर गया। श्रेणिकराजा उनके वचनोंको सुनकर अहंकार युक्त होकर यह विचारने लगा कि यह काम बहुत कठिन है, ऐसा सोचकर मनमें घबड़ा गया। राजा बार बार विचार करता है, खेदित होता है, उस कामको दुर्लभ जानकर कुछ करनेका दृढ़ संकल्प न कर सका। न तो शीघ्र चलनेको तय्यार हुआ न उसको कुछ उत्तर ही दे सका। दो काठकी तराजूमें चढ़कर राजाका मन हिलने लगा।

जम्बूकुमारका साहस।

इतने हीमें जंबूस्वामी कुमारने आनंद सहित गंभीर वाणीसे शांतभावके द्वारा ऊंचे स्वरसे कहा—हे स्वामी! यह काम कितना है? आपके प्रसादसे सिद्ध हो जायगा। सूर्यकी तो बात ही दूर रहे, उसकी किरण मात्रसे अंधकार मिट जाता है। मेरे समान बालक भी उस कामको कर सक्ता है तो आपकी तो बात ही क्या है, जिनके पास चार प्रकारकी सेना तय्यार है।

जंबूकुमारके वचन सुनकर श्रेणिक महाराज आनंदित होगए। जैसे सम्यग्दृष्टी तत्वकी बात कर आनंदित होजाता है और जम्बु-

कुमारके वचनोंपर श्रद्धावान होगए। तब हर्षपूर्वक मगधका राजा कहने लगा कि यदि ऐसा है तो क्षत्रिय धर्मकी मर्यादा सदा बनी रहेगी। जिस कामसे कन्याका लाभ हो व क्षत्रियोंका यश हो, उस कामके साधनेसे ही हम अपना जन्म सफल मानते हैं।

हे धीर वत्स! तू परम्परा फलका ज्ञाता है ऐसा विचार कर तुझे शीघ्र वहां जाना चाहिये। इस शुभ कार्यमें विलंब न करना चाहिये।

जम्बूकुमारका युद्धार्थ गमन।

आनंद सहित राजासे इस तरह आज्ञा पाकर कुमार भयरहित हो अकेले वहां जानेको तैयार होगए। कुमारका साहस व बल अपूर्व था। तब उस वीर कार्यके करनेका उद्यमी होकर जम्बूकुमारने व्योमगति विद्याधरसे कहा—हे विद्याधर! अपने विमानमें मुझे बिठाले, और शीघ्र ही वहां ले चल जहां रत्नचूल है।

कुमारके आश्चर्यकारी वचन सुनके विद्याधर कहने लगा—हे बालक! आप वहां चलके क्या करेंगे! मृगका बच्चा अपने ही घरमें चपलता रखता है, जबतक क्रोधित सिंह गर्जना करता हुआ सामने न आवे। तब ही तक शरीर सुंदर भासता है जब तक भयानक दांतवाला यमराज नहीं खाजावे। तब ही तक तृणादि जंगलमें हरे भरे दीखते हैं जब तक प्रचंड अग्निकी ज्वाला वनमें न फैले। आकाशमें मेघोंका समूह तब ही तक शोभता है जब तक दुर्धर तीव्र पवन उन मेघोंको उड़ा न दे। तब ही तक आयु, आरोग्यता, यश, संपत्ति, जय आदि

रहते हैं, जब तक तीव्र पापका उदय न आवे। उसी समय तक जैन धर्मके समान निर्मल ब्रह्मचर्यव्रत होता है जब तक स्त्रियोंके कटाक्षोंसे मन जर्जरित न हो। तब ही तक साधुके मूलगुण गुणकारी होते हैं, जब तक क्रोधकी अग्नि उनको क्षणमें भस्म न कर दे। सुमेरुपर्वतके समान गौरव प्राणीका उसी समय तक रहता है जब-तक वह दीन भावसे 'देहि' अर्थात् देओ ऐसे दो अक्षर मुंहसे नहीं निकालता है। तब ही तक हे बालक! तेरा बालप्रताप है जब तक रत्नचूलके बाणोंसे तू जर्जरित न किया जावे। कहा है—

तावद्ब्रह्मव्रतं साक्षान्निर्मलं जैनधर्मवत्।
यावद्योषित्कटाक्षाणां नापातैर्जर्जरं मनः ॥ ७१ ॥

तावन्मूलगुणाः सर्वे संति श्रेयोविधायिनः।
यावद्ध्वंसी न रोषाग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥ ७२ ॥

गौरवं तावदेवास्तु प्राणिनः कनकाद्रिवत्।
यावन्न भाषते दैन्याद्देहीति द्वौ दुरक्षरौ ॥ ७३ ॥

ऐसे क्रोधको पैदा करनेवाले बचन सुनकर जंबूकुमार कहने लगे—उनके भीतर क्रोध अग्नि थी, बाहर नहीं थी, वह आगे भस्म करेगी। हे आकाशगामी विद्याधर! तेरा कहना ठीक नहीं। यह बालक क्या करेगा सो तू अभी ही देख लेगा।

जगतमें तीन प्रकारके प्राणी हैं। उत्तम वे हैं जो कहते नहीं किंतु करके बताते हैं। मध्यम वे हैं जो कहते हैं व करते भी हैं। जघन्य जो केवल कहते हैं परन्तु करते नहीं हैं। कहा है—

कुर्वंति न वदंत्येव कुर्वंति च वदंति च ।
क्रमादुत्तममध्यास्तेऽधमोऽकुर्वन् वदन्नपि ॥ ७७ ॥

तब मगधेश श्रेणिक कुमारके योग्य वचन सुनकर तथा कुमारके पुरुषार्थको समझकर विद्याधरसे कहने लगा—

हे विद्याधर ! जो तूने मेरे सामने ऐसा कहा कि यह बालक अकेला जाकर वहां क्या करेगा, यह तुम्हारा सर्वपक्ष दोषपूर्ण है। जिस सिंहको मृग नहीं मार सक्ते उस सिंहको अकेला अष्टापद मारडालता है। जिस यमने सर्व जगतको मारा है, उस यमको जिनेन्द्रने जीत लिया है। प्रचंड दावाग्निको भी मेघका जल अकेला बुझा देता है। जो वायु मेघको उड़ा देती है वह ऊंचे सुमेरुपर्वतको नहीं उडा सक्ती है। रात्रिमें अंधकारके समान मिथ्याज्ञान तब तक ही रहता है जब तक रात्रिके अंधकारको दूर करनेवाले सूर्यके समान आत्मीक ज्ञानका प्रकाश उदय नहीं हो। जो क्रोधकी अग्नि सर्व कर्माधीन प्राणियोंको जला देती है, इसीको कोई २ महात्मा उत्तम-क्षमारूपी जलसे शांत कर देता है। तीर्थंकर भगवान सर्व प्राणियोंके हित करनेवाली मुनिदीक्षाको लेकर भिक्षासे भोजन करते हैं तौ भी उनकी इन्द्रादि पूजा करते हैं। सूर्य एक अकेला ही आकाशमें उदय होता है। क्या वह सर्व जगतके अंधकारको दूर नहीं कर देता है ? बड़े पुरुषोंने यह वचन कहा है कि कार्यको सिद्ध करनेवाला एक पुरुष भी होता है।

श्रेणिकराजाने जो वचन कहे उनको विद्याधरने बड़े

आदरसे अपने मस्तक पर चढ़ाएं। विद्याधरने उस दिव्य विमानमें श्रेणिक महाराजकी आज्ञा पाकर अनुपम बलधारी श्री जम्बूकुमारको बिठाया। वह विमान आकाशके मार्गसे चलके पवनके वेगके समान शीघ्र ही ईच्छित स्थानपर पहुंच गया। पीछे श्रेणिक-राजा भी चार प्रकारकी सेनाको लेकर वीर योद्धाओंके साथ चल पड़ा। रणके वाजे बजने लगे, उनको सुनकर मेघकी ध्वनिकी शंका औरोंको होगई। घोड़ोंसे खींचे हुए रथ चलने लगे, हाथी भी महान शब्द करने लगे।

श्रेणिकराजाका सेना सहित प्रस्थान।

छः अङ्गी शक्तिको रखनेवाला श्रेणिकराजा रत्नचूलके जीतनेकी इच्छासे चला। उसकी सेनामें हाथी झड़नोंके पतनको रखनेवाले पर्वतोंके समान मदको भूमिपर सींचते हुए ऐसे चलते मालूम होते थे, मानो पर्वतमालाएं ही चल रही हैं। उन हाथियोंके ऊपर सुभट अंकुश लिये बिराजमान थे। घोड़ोंके ऊपर चमकती हुई तलवारोंको लिये हुए योद्धा बैठे थे, वे घोड़े सुंदर ध्वनि कर रहे थे।

शस्त्रोंसे सजे हुए रथ मार्गमें चलते हुए ऐसे दीखते थे, मानों संग्रामरूपी समुद्रको तैरनेवाली नौकाएं हैं। पैदल चलनेवाले योद्धा कवच और रक्षाका टोप पहने हुए खडगादि हाथमें लिये चल रहे थे। शस्त्रोंको लिये हुए भटोंका समूह ऐसा शोभता था मानों बिजली सहित मेघ ही चल रहे हैं। चारों प्रकारकी सेनाको लेकर श्रेणिक निकला। प्रथम पैदल सेना थी, फिर घोड़ोंकी सेना

थी, फिर रथोंकी, फिर हाथियोंकी। बीचमें ही श्रेणिक महाराजका रथ पताका सहित था। नगरकी सड़कोंको लांघकर सेना धीरे २ चलती थी। तरङ्ग सहित समुद्र ही मालूम होता था। नगरकी स्त्रियोंने अपने झरोखोंसे दृष्टिके साथ साथ पुष्पोंकी भी वर्षा की। नगरके बाहर दूर जाते हुए नगरवासियोंको राजा श्रेणिककी सेना बहुत बड़ी विदित होती थी। ऐसा झलकता था, मानों प्रलयकालकी पवनसे समुद्र क्षोभित होगया है, अथवा तीन जगतके प्राणी आकुलित हो जा रहे हैं।

श्रेणिक महाराजने देखा कि कहीं लताओंके मंडपोंमें चंद्रकांति मणिकी शिलाओंपर राजाका यशगान करते हुए किन्नरदेव बैठे हैं। कहीं लताओंमें फूलोंको व भौंरोंको उनपर संभ्रम देखकर राजाको कृष्णकेशवाली अपनी स्त्रियोंकी स्मृति आ जाती थी। राजा श्रेणिकने मार्गमें छायादार फलोंसे लदे हुए ऊंचे ऊंचे वृक्षोंको देखा। सरोवरोंके तटोंपर भूमिपर कमलोंकी रज पड़ी हुई थी सो सुवर्णकी रजके समान झलकती थी। चलती हुई सेनाकी रज आकाशमें छा जाती थी सो रात्रि होनेकी शंका होजाती थी। कहींपर दूधको झलकाती हुई गाएं जंगलमें जाती हुई दिखती थीं। कहीं ऊंचे २ सींगवाले बैल स्थल-कमलोंको अंकित करते हुए जाते थे। कहीं निर्मल यशके समान सफेद कमलकी डंडियें दिखती थीं, कहीं पर दूध पीकर संतोषी बछड़े स्वच्छ-शरीर दिखलाई पड़ते थे।

राजाने देखा कि नगरके कोटके बाहर पके धान्यसे लदे हुए खेत

खड़े हुये थे व फलसे भरे हुए खेत झुके हुए थे, उद्धत नहीं थे। मानो वे मानवोंको कह रहे हैं कि वे इनका भोग कर सक्ते हैं। राज्यवर्गसे वेष्ठित राजा देखकर प्रसन्न हुआ। कहीं पर राजाने सुंदर स्त्रियोंको इक्षुदंड या गदा हाथमें लिये हुए देखा। कहीं पर खेतवालोंकी वधुओंको मनोहर गीत गाते हुए देखा। उनके गीतकी ध्वनिसे हंस आकाशमें छा रहे थे। चावलोंके खेतोंकी रक्षा करनेवाली बालिकाएं बैठी थीं, जिनके मुखकी सुगंध लेनेके लिये भ्रमर उड़ रहे थे। दोपहरके समय रागद्वेष न करके मध्यस्थ रहनेवाला सूर्य भी तीव्र धूपसे तप रहा था। यह ठीक है, तीव्र प्रताप धारनेवालोंका माध्यस्थ भाव भी तापकारी होता है।

बड़े २ घोड़े खुरोंको उछालते हुए व मुंहसे वमन करते हुए चले जाते थे। वनके पशु पक्षी सेनाकी महान ध्वनिको जिसे कभी सुना नहीं था, सुनकर भयवान होगए। हाथी उस वनसे दूसरे वनको चले गए। केशरीसिंह जाग करके मुह फाड करके निर्भय हो देखने लगा, भैंसे व गाएं व मृग, व शूकर वनके भागको छोड़कर चले गए। बहुत दूर चलकर सेनाने रेवा नदीके किनारे डेरा किये। फिर वहांसे केरल नगरकी तरफ जाते हुए कुछ दिनोंमें सेना कुरल पर्वतपर पहुंच गई। कहा है—

ततस्तां च समुत्तीर्य प्रतस्थे केरलां प्रति।
विशश्राम कियत्कालं नाम्ना कुरलभूधरे ॥ १४३ ॥

यहां पर्वतपर सेनाने कुछ काल विश्राम किया। पर्वतपर श्री

जिनेन्द्रके बिम्बोंकी राजा श्रेणिकने पूजा की व मुनियोंकी भी भक्ति की। फिर राजा वहांसे भी आगे चला। व कुछ दूर जाकर सेना सहित ठहर गया।

(नोट—केरलनगर मलाबार मदरास देशमें है। जिनके पास ही कुरल पर्वत होना चाहिये। वहां २॥ हजार वर्ष पूर्व श्री जिनमन्दिर थे। वर्तमानमें यह पहाड़ कहां पर है इसका पता लगाना चाहिये।)

राजा श्रेणिकने तो यहां विश्राम किया, उधर श्री जम्बूकुमार विद्याधरके साथ शीघ्र ही केरला नगरीमें पहुंच गए। नगरीमें सेनाका शब्द होरहा था, सुनकर जम्बूकुमारने विद्याधरसे पूछा, यह कोला-हल क्या है? तब विद्याधरने कहा कि आपके शत्रु रत्नचूलकी सेना यहां पड़ी हुई है, इसीका शब्द है। मैंने पहले कहा था कि कन्याको इसने मांगा था, न मिलनेसे मानभंगसे क्रोधी होकर यह यहां आया है, देशको उजाड़ा है। राजा मृगांक भयभीत हो किलेके भीतर बैठा है। स्वामी! इसके सेवक बहुतसे विद्याधर हैं। यह बहुतसे शत्रुओंको जीतनेवाला विद्याधरोंका स्वामी है। इसका जीतना दुर्निवार है। विद्याधरके इन बचनोंको सुनकर कुमारका क्रोध अधिक बढ़ गया। कुमारने कहा—हे विद्याधर! तू विमानको यहां ठहरा, उसकी रक्षा कर, मैं जाकर देखता हूं, रत्नचूलका कैसा उद्धत बल है?

जंबूकुमार विमानसे उतरे और सीधे शत्रुकी सेनामें निर्भय होकर चले गए व कौतुकसे सेनाको इधर उधरसे देखने लगे। सेनाके योद्धा

कामदेवके समान सुन्दर कुमारको बार बार देख कर चकित हो आपसमें बातें करने लगे—यह कौन है, कोई इन्द्र है, धरणेन्द्र है या कामदेव है जो हमारी सेनाको देखनेके लिये आया है। कोई कहने लगा कि यह कोई महा भाग्यवान् लक्ष्मीवान सेठ है, जो रत्नचूलकी सेवाको आया है, कोई कहने लगा कि यह कोई विद्याधर है जो सहायताके लिये आया है। कोई कहने लगा कि यह कोई राजा है, जो कर देनेको व अपना स्नेह बतानेको आया है, कोई कहने लगा यह कोई छली धूर्त वेषधारी सुन्दर नर है। सेनाके सैनिक आपसमें बातें करते ही रहे। किसीका साहस पूछनेका न हुआ। कुमार सीधे राजद्वार पर पहुंच गए।

जम्बूकुमारका रत्नचूलसे मिलना।

द्वारपालसे कहा कि भीतर जाकर विद्याधरसे मेरा संदेश कह दे कि मैं दूत हूं, मृगांकराजने मुझे भेजा है। आपसे कुछ समझाकारी बात करना चाहता हूं। द्वारपालने शीघ्र ही भीतर जाकर व राजाको नमन कर यह कहा कि कोई मानव द्वारपर है जो आपका दर्शन करना व बात करना चाहता है। रत्नचूलने उसे बुलानेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर द्वारपाल जंबूकुमारके पास आया और भीतर जानेको कहा। जंबूकुमार अपनी कांतिसे तेजको फैलाते हुए भीतर निर्भय हो चले गए। नमस्कार किये विना सामने खड़े हो गए। रत्नचूल उसे देखकर आश्चर्य करने लगा कि यह कैसा दूत है, जो नमस्कारकी क्रिया भी नहीं जानता है, कुछ न कहकर

खंभेके समान सामने खड़ा है। मालूम होता है कि यह कोई देव है या कोई महापुरुष है जो मेरे बलकी परीक्षा करनेको आया है। ऐसा मनमें चिंतवन करके रत्नचूलने कुमारसे पूछा—आप किस देशसे मेरे पास किस कामके लिये आए हैं? सुनकर कुमार कहने लगे कि नीतिमार्गका आश्रय करके तुम्हें समझानेके लिये यहां शीघ्रतासे आया हूं। तुम अपना खोटा हठ छोड़ दो। इस दुराग्रहसे इसलोक व परलोक दोनोंमें तुम्हें दुःख प्राप्त होगा। हे विद्याधर! इससे तेरा अपयश होगा, व तू दुर्गतिका कारण पापबंध करेगा, जगतमें जगह २ हजारों स्त्रियां हैं, तुझे इसी कन्यासे क्या साध्य है, यह हम नहीं समझ सके। यदि तू अपनी सेनाके बलका अभिमान रखता है तो यह तेरा अज्ञान है।

जम्बूकुमारका उपदेश।

इस संसाररूपी वनमें कर्मसहित अनंतजीव अपने २ कर्मोंके अनुसार भ्रमण किया करते हैं। कर्म नानाप्रकारके होते हैं, उनका फल भी नानाप्रकारका होता है। इन कर्मोंके स्वरूपको न जानते हुए जीव मिथ्यादृष्टि अज्ञानी होरहे हैं। कर्मोंके फलके सम्बन्धमें श्री समंतभद्र कृत स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिंगा।
अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥
बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वांछति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥

भावार्थ—जो भवितव्य है इसकी शक्तिको कोई लांघ नहीं सक्ता है। कार्य दो कारणोंसे होता है—पुरुषार्थसे और पूर्व पुण्यके उदयसे। हे सुपार्श्वनाथस्वामी! आपने ठीक २ बताया है कि कोई इस बातका अहंकार करें कि मैं कार्य कर ही ले जाऊंगा तो वह पुण्यकी सहायताके विना नहीं कर सक्ता है। हरएक प्राणी मरना नहीं चाहता है, डरता रहता है, परन्तु मरणसे कोई बचता नहीं। हरएक नित्य भला चाहता है परन्तु सबका भला नहीं होता। जब पुण्यके उदयसे काम होता है व पापके उदयसे विनाश होता है, तब अज्ञानी वृथा ही मरणसे डरता है, इच्छाओंके द्वारा जलता है, ऐसा आपका यथार्थ कथन है।

कोई माने कि मैं योद्धा हूं, इससे बलवान योद्धा मिलेगा। फिर कोई इससे भी बलवान मिलेगा। संसारमें ऐसी ही स्थिति है। कोईका अहंकार रहता नहीं। कोई अपनेको विजयी माने और यह समझे कि मुझे कोई विघ्न नहीं आवेगा, यह बात भी नहीं है। इस संसारमें जीवोंको भक्षण करनेवाला यमराज सदा तैयार रहता है। हे रत्नचूल विद्याधरोंका स्वामी! तू उत्तम विचारमें लीन हो। बलवान भी मानव यदि कुमार्गमें चलकर प्रमादी होजाते हैं तो वे क्षण मात्रमें नाश होजाते हैं। रावण आदिने अभिमान किया था यह बात प्रसिद्ध है। वह अपयशका भागी हुआ व दुर्गतिको भी गया! जब मृगांकने अपनी इस कन्याको श्रेणिक राजाके लिये देना निश्चय कर लिया है तो वह तुझे कैसे दी जासक्ती है? यह

बात अपयशकी होगी। यदि युद्ध हो तो क्षत्रियका धर्म नहीं है कि अपने जीवनकी रक्षाके लिये युद्धसे भाग जावे। कौन ऐसा बुद्धिमान है जो अपयशरूपी विषका पान करेगा।

हे विद्याधर! तू प्रसन्न हो, प्रमादका विधान न आचरण कर, तुझे कोई निंदा योग्य वचन भी नहीं कहना चाहिये।

इसतरह जम्बूकुमारने सुंदर वचनरूपी पुष्पोंसे गुंथी हुई अति शीतल माला रत्नचूलको पहनाई, परन्तु विरही स्त्रीको पुष्पमाला उष्ण भासती है, वैसे ही विद्याधरको वह तापकारी होगई।

रत्नचूलका जवाब।

तब रत्नचूलकी आंखें क्रोधसे लाल होगईं, ओठ कांपने लगे। क्रोधसे जलती हुई वाणी निकाली-हे बालक! तू मेरे घरमें दूत बनकर आया है। बालक है, इसलिये मारने योग्य नहीं है, परन्तु तुझ दुष्टकी दूसरी अवस्था नहीं होसक्ती है। तुझको लज्जा नहीं आती है, जो तू अपने स्वामीके कार्यको विनाश करनेवाले व वैर बढानेवाले विरुद्ध वचन कहता है? तू इस बातको नहीं जानता है कि क्या कहना चाहिये क्या न कहना चाहिये, न बल अबलका तू विचार करता है, बावलेके समान ढीठतासे जो मनमें आया सो बकता है।

उल्लूकी शक्ति नहीं है जो सूर्यका सामना कर सके। हे दूत! मेरे सामने तुझे ऐसे वाचाल वचन कहना योग्य नहीं है। जैसे जीर्ण बीज सुमेरु पर्वतको क्या भेद सक्ता है? इसी तरह दुष्ट मृगांक या

श्रेणिक कोई भी युद्धमें मेरा सामना नहीं कर सक्ते। हे दूत! हम विद्याधर हैं, श्रेणिक भूमिगोचरी है। हम दोनोंकी सामर्थ्य क्या कभी बराबर हो सक्ती है? अधिक कहनेसे क्या, तू मौन रख, मेरे साथ जिसको युद्ध करना हो वह शीघ्र ही आजावे, ऐसा कहकर रत्नचूल निश्चल मन धरके गंभीर व अक्षोभित समुद्रके समान आकुलता-रहित हो गया।

जम्बूकुमारका जवाब।

वज्रवृषभनाराच संहननका धारी प्रचंड पराक्रमी निर्भय जंबू-कुमार मेघकी ध्वनिके समान गंभीर वाणी कहने लगा—हे रत्नचूल विद्याधर! यह सब तूने घमंडमें होकर कहा है। यह तेरा कथन तेरे अभिमानको चूर्ण करनेवाला है व हेतुसे बाधित है। रावण विद्याधर था, उसे भूमिगोचरी रामचंद्रने सेनासहित युद्ध करके अपने बलसे ही मार डाला। काक भी आकाशमें उड़ता है। जब वह बाणोंसे छिद जाता है, तब वह भूमिपर आकर गिर पड़ता है। ऐसे वचन सुन कर रत्नचूल क्रोधसे भर गया और तलवार लिये हुए योद्धाओंको आज्ञा दी कि जम्बुकुमारको मारो। तब वे आठ हजार योद्धा जो कुमारके बलको नहीं जानते थे, कुंतादि शस्त्रोंसे बलवान जम्बूकुमारको मारनेका उद्योग करने लगे। इतनेहीमें कुमारने अपनी दोनों भुजाओंसे व लातोंकी मारसे कितनेहीको यमपुरमें पहुंचा दिये।

अब युद्धका प्रारम्भ होगया। एक तरफ जंबूकुमार अकेले थे, दूसरी तरफ अनेक योद्धा थे। कुमारने अपनी भुजाओंके बलसे

कितने ही योद्धाओंको मारा। तब व्योमगति विद्याधरने अपनी तीक्ष्ण खड्ग कुमारको अर्पण की। यह भी कहा कि तुम विमानपर चढ़ जाओ। कुमारने इस बातपर ध्यान नहीं दिया। वह योद्धाओंके साथ लड़नेमें अपने शरीरको तृणके समान समझता था। कहा है—

ब्रह्मचारी तृणं नारी शूरस्य मरणं तृणम्।
दातुश्चापि तृणं लक्ष्मी निस्पृहस्य तृणं जगत्॥ २१०॥

भावार्थ—ब्रह्मचारीके लिये स्त्री तृणके समान है। योद्धाके लिये मरण तृणके समान है। दातारके लिये लक्ष्मी तृणके समान है। इच्छारहितको यह जगत् तृणके समान है।

जम्बूकुमारका युद्ध।

कुमारने खड्गसे चारों तरफसे योद्धाओंको मार मारके गिरा दिये। योद्धाओंके शस्त्र कुमारपर वृथा ही पड़ते थे। उन सबको चतुराईसे कुमार बचाता था। वज्रमई शरीरधारीका देह उन शस्त्रोंसे जरा भी नहीं भेदा गया। ऐसी सावधानीसे व चतुराईसे कुमारने युद्ध किया कि रत्नचूलके योद्धा उसके सामने ठहर नहीं सके। जैसे एक ही सूर्य सर्व अन्धकारको नाश कर देता है, वैसे अकेले प्रतापशाली कुमारने शत्रुदलको भगा दिया। इतनेहीमें किसी गुप्तचरने जाकर मृगांक राजासे कहा कि हे देव! आपके पुण्यके उदयसे कोई महापुरुष आया है जो शत्रुकी सेनाके जलानेको दावानलके समान है। वह बड़ी चतुराईसे युद्ध कर रहा है। वह आपका कोई बन्धु है या पूर्वजन्मका मित्र है, या श्रेणिक राजाने

किसी वीर योद्धाको भेजा है। इन वचनोंको सुनकर मृगांक राजाके शरीरमें आनंदसे रोएं खड़े होगए। तब वह मृगांक भी अपनी सब सेनाको सजकर युद्धके लिये नगरसे बाहर निकला। उसकी सेनाकी बाजोंकी ध्वनि सुनकर रत्नचूल भी सावधान होगया। क्रोधाग्निसे जलता हुआ युद्ध करनेको सामने आया। इसतरह दोनों तरफकी सेनाओंमें भयंकर युद्ध चल पड़ा। हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, रथ रथोंसे, विद्याधर विद्याधरोंसे परस्पर भिड गए।

इस भयंकर युद्धका वर्णन हम क्या करें? रूधिरकी धारासे समुद्र ही होरहा है। जिनकी छाती भिद गई है वे उसको पार करके शत्रुके ऊपर आ नहीं सकते थे। घोड़ोंके खुरोंका धूला आकाशमें छाया हुआ है। जिससे दिनमें भी रात्रिका अनुमान होता है। कहीं योद्धा एक दूसरेका नाम लेकर ललकार रहे हैं। रथोंके चलनेकी, हाथियोंकी घंटियोंकी व उनके दहाड़नेकी, धनुषोंकी टंकारकी, योद्धाओंके रे रे शब्दकी महान ध्वनि हो रही है। कहीं योद्धा, कहीं गज, कहीं रथ भग्न पड़े हैं। तलवार, कुन्त, मुद्गर, लोहदंड आदि शस्त्रोंसे सैकड़ोंके सिर चूर्ण हो गए हैं। कितनोंहीकी कमर टूट गई है, आकाशमें तलवार पवनादिके कारण बिजलीसी चमक रही है।

ऐसा महान युद्ध होरहा है कि वहां अपना पराया नहीं दिखता है। कहीं भूमिमें आंतें पडी हैं, कोई बालोंको फैलाए मुर्छित पड़े हैं, कोई किसीके केशोंको पकड़कर मार रहा है। सिरसे रहित धड़ भी जहां युद्धके लिये नाचते थे। कुमार व रत्नचूल दोनों आकाशमें

विमानों पर युद्ध करने लगे। जम्बूस्वामीने रत्नचूलका विमान तोड़ दिया तब वह भूमिपर आगया। जैसे ही यह भूमिपर गिर पड़ा, तब हाथीपर चढ़े मृगांकने महावतको पूछा कि किसको किसने मारा? तब उसने कहा कि पराक्रमी जम्बूकुमारने रत्नचूलको भूमिपर गिरा दिया। इतनेमें कुमारने रत्नचूलको दृढ़ बांध लिया। राजाके बांधे जानेपर रत्नचूलकी सब सेना भाग गई। तब राजा मृगांकने व उसकी ओरके विद्याधरोंने जम्बूकुमारकी प्रशंसा की। चारों तरफ जय जयकार शब्द हो गया। कहने लगे—

> धन्योऽसि त्वं महाप्राज्ञ रूपनिर्जितमन्मथ।
> क्षात्रधर्मस्य चौन्नत्यमद्य जातं त्वया कृतम्॥ २५२॥

भावार्थ-हे महाबुद्धिवान्, कामदेवके रूपको जीतनेवाले कुमार तू धन्य है। तुमने आज क्षत्रिय धर्मके ऐश्वर्यको भले प्रकार प्रगट कर दिया। केरल राजाकी सेनामें जीतके नगारे वजने लगे। बंदीजन कुमारके यश कहने लगे। व्योमगति विद्याधरने जंबूकुमारका मृगांकके साथ बहुत प्रेम करा दिया।

घुटनोंतक लम्बी भुजाधारी जंबूकुमारने आठ हजार विद्याधरोंको लीला मात्रमें जीत लिया। यह सब पुण्यका महात्म्य है। उस पुण्यके उदयसे ही कुमारने जयलक्ष्मी प्राप्त की। इसलिये जिनको सुखकी इच्छा है उनको एक धर्मका सेवन सदा करना योग्य है। कहा है:—

> एक एव सदा सेव्यो धर्मो सौख्यमभीप्सुभिः।
> यद्विपाकात्कुमारेण जयश्रीः किंकरीकृता॥ २५७॥

सातमा अध्याय।

जंबूस्वामी व श्रेणिक महाराजका राजगृहमें प्रवेश।

(श्लोक १४५ का भावार्थ)

मैं शुद्ध भावोंको रखनेवाले निर्मल ज्ञानधारी विमलनाथकी स्तुति करता हूं तथा अपने गुणोंकी प्राप्तिके लिये अनंत वीर्यवान अनंतनाथ भगवानको वंदना करता हूं।

जम्बूकुमारकी वैराग्यपूर्ण आलोचना।

जम्बुकुमारने जब भयानक युद्धक्षेत्रको देखा तब मनमें दया-भाव पैदा होगया—विचारने लगे, संसारकी अवस्था अनित्य है। अहो! जलका स्वभाव शीतल है परन्तु अग्निके संयोगसे उष्ण होजाता है, परन्तु स्वरूपसे तो जल शीतल ही है। शीतलता जलका गुण है, वैसे ही आत्माका स्वभाव शांत है, कषायके उदयसे मोहित हो जाता है। ज्ञानवान पुरुषोंने इस संसारकी स्थितिको उच्छिष्ट (झूठन) मानके इसका मोह त्याग किया है, परन्तु जो अज्ञानसे व मानसे अंध हैं वे मरके दुर्गतिको जाते हैं। जो प्राणी इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होते हैं वे इसीतरह मरते हैं जैसे पतंगा स्वयं आकर अग्निमें पड़कर मर जाता है। एक तो विषयोंका मिलना दुर्लभ है, कदाचित् इच्छित विषय प्राप्त भी होजावें तो उन विषयोंके भोगसे तृष्णाकी आग बढ़ती ही जाती है। ये विषय किंपाक

फलके समान हैं—सेवते अच्छे लगते हैं, परन्तु इनका फल कडुवा है। ऐसा होनेपर भी यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि बड़े बड़े ज्ञानी भी इन विषयोंका सेवन करते हैं।

वास्तवमें यह मोहरूपी पिशाच बड़ा भयंकर है, महान पुरुषोंको भी इससे पीछा छुड़ाना कठिन है। इस मोहके उदयसे यह प्राणी परको अपना माना करता है। जैसे मृग जंगलमें मरीचिका (चमकती हुई घास या बालू) को जल समझकर पानी पीनेके लिये दौडते हैं, जल न पाकर अधिक तृषातुर हो जाते हैं, वैसे मोही प्राणी अज्ञानसे विषयोंसे सुख होगा ऐसा जानकर विषयोंको भोगनेके लिये दौड़ते हैं, परन्तु अधिक तापको बढ़ा लेते हैं। जो मिथ्यात्व अंधकारसे अंध हैं, वे ही इन्द्रियोंके विषयोंसे सुख मानते हैं। जैसे कोई अग्निको ठंडा करनेके लिये शीघ्र ईंधन डाल दे वैसे ही अज्ञानी तृष्णाकी दाहको शमनके लिये विषयोंके सामने जाता है, उलटा अधिक तृष्णाको बढ़ा लेता है। उस चतुराईको धिक्कार हो जो दूसरोंको तो उपदेश करे व अपने आत्माके हितका नाश करे। उस आंखसे क्या लाभ, जिसके होते हुए भी गड्ढेमें गिर पड़े। उस ज्ञानसे भी क्या जो ज्ञानी होकर विषयोंके भीतर पड़ जावे।

अहो! मैं भी तो ज्ञानी हूं, मुझ ज्ञानीने भी प्रमादके वश होकर यश पानेकी इच्छासे घोर हिंसाकर्म कर डाला। शास्त्र कहता है कि अपने प्राण जानेपर भी किसी प्राणीकी हिंसा न करनी चाहिये। मुझ निर्दयीने तो आठ हजार योद्धाओंको मारा है। वास्तवमें ऐसा

ही कोई शुभ या अशुभ कर्मोंका उदय आगया। कर्मके तीव्र उदयको तीर्थंकर भी निवारण नहीं कर सक्के। जैसे स्फटिकमणि स्वभावसे स्वच्छ है तौ भी रक्त पीत आदि उपाधिके बलसे रक्त पीत आदि रंगके भावको प्राप्त होजाती है वैसे ही यह जीव स्वभावसे चैतन्यमई है व अतीन्द्रिय सुखका धारी है। संसारमें रहता हुआ कर्मोंके उदयसे अहंकार आदि नाना भावोंमें परिणमन कर जाता है। कहा है—

जानतापि मयाकारि हिंसाकर्म महत्तरम्।
तत्केवलं प्रमादाद्वा यद्रेच्छता यशश्चयम्॥ १८॥
प्राणान्तेऽपि न हंतव्यः प्राणी कश्चिदिति श्रुतिः।
मया चाष्टसहस्राह्ते हता निर्दयचेतसा॥ १९॥
आफलोदयमेवैतत्कृतं कर्म शुभाशुभम्।
शक्यते नान्यथा कर्तुमातीर्थाधिपतीनपि॥ २०॥
यत्स्फाटिको मणिः स्वच्छः स्वभावादिति भावतः।
सोऽप्युपाधिबलादेव रक्तपीतादिकां व्रजेत्॥ २१॥
तथ.यं चित्स्वभावोऽपि जीवोऽतीन्द्रियसौख्यवान्।
धत्ते मानादिनानात्वमुदयादिह कर्मणाम्॥ २२॥

(नोट—सम्यग्दृष्टी गृहस्थका ऐसा ही भाव रहता है। वह कषायोंको न रोक सकनेके कारण गृहस्थ सम्बन्धी सब काम युद्धादि करता है, परन्तु अपनी निन्दा गर्हा किया करता है। कर्मकी तीव्र प्रेरणासे काम करता है। आपको स्वभावसे अकर्ता व अभोक्ता ही समझता है।)

जब तक जम्बूकुमार अपने मनमें अपने कार्यकी आलोचना कर रहे थे, तब तक रत्नचूलादि राजा इस प्रकार कह रहे थे कि गुण स्वयं निर्गुण होने पर भी अर्थात् गुणमें दूसरा गुण न होने पर भी वे गुण किसी द्रव्यके ही आश्रय पाए जाते हैं। हे स्वामी! आप बडे गुणवान हैं, आपमें ऐसे गुण हैं जिनका वर्णन नहीं हो सक्ता है। दूसरे लोग परकी सहायतासे जय प्राप्त करने पर भी अभिमानसे उद्धत होजाते हैं। आपने विना किसीकी सहायतासे केवल अपने ही पराक्रमसे विजय प्राप्त की है तब भी आप मद-रहित व रागरहित हैं। जिस वृक्षमें आमके फल लदे होते हैं वही झुकता है, फलरहित वृक्ष नहीं झुकता है। हे सौम्यमूर्ति! आपके समान कौन महापुरुष है जो विजयलाभ करके भी शांत भावको धारण करे?

इस तरह परस्पर अनेक राजा स्वामीकी तरफ लक्ष्य करके बातें कर रहे थे कि इतनेमें अकस्मात् व्योमगति विद्याधर बोल उठा— हे स्वामी जम्बूकुमार! जब आप युद्धमें वीरोंका संहार कर रहे थे तब इस मृगांक राजाने भी अपना पुरुषार्थ प्रगट किया था। आपके सामने हे स्वामी! मैं क्या कह सकता हूं, आपका पुरुषार्थ तो वीरोंसे प्रशंसनीय है। जैसा मैंने सुना था वैसा मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। मृगांककी प्रशंसा सुनकर रत्नचूल क्रोधमें आकर कहने लगा—रत्न-चूल इस मिथ्या कथनके भारको सह नहीं सका।

रत्नचूलको अपनी हार होनेसे जितना दुःख नहीं हुआ था, उससे

अधिक दुःख मृगांकके बलकी प्रशंसा सुननेसे व उसके मिथ्या अहं-कारसे हो गया। कहा है—जो गुण रहित है वह गुणीको नहीं यह मान सक्ता है। गुणवान गुणीको जानकर ईर्षाभाव कर लेता है। वास्तवमें इस जगतमें महान् गुणी भी विरले हैं व गुणवानोंके साथ प्रीति करनेवाले भी विरले हैं। हे व्योमगति विद्याधर! तू बुद्धिमान है, तुझे ऐसे मृषा वचन नहीं कहने चाहिये। कहीं आकाशके फूलोंसे वंध्याके पुत्रका मुकुट बन सक्ता है। मेरी सेना बड़ेर परा-क्रमी योद्धासे भी नहीं जीती जासक्ती थी, उसको केवल स्वामी जंबूकुमारने ही जीती है। यदि यह एक वीर योद्धा संग्राममें नहीं होता तो मैं क्या कर सक्ता था सो तुम देख लेते। अभी भी यदि मृगांकको गर्व है तो वह आज भी मेरे साथ युद्ध कर सक्ता है। हम दोनों यहां ही पर विद्यमान हैं। कुमार इस बीचमें माध्यस्थ रहे। केवल तमाशा देखने लगे कि क्या होता है।

मृगांक व रत्नचूलका युद्ध।

रत्नचूलके वचनोंको सुनकर मृगांकको भी क्रोध आगया। ईंधनोंको रगड़नेसे धूआं निकलता ही है। कहने लगा—हे रत्नचूल! जैसा तू चाहता है वैसा ही हो। काला भी सुवर्ण अग्निसे भिड़नेपर शुद्ध होजाता है। अब तू विलम्ब न कर। ऐसा कह कर युद्धके लिये तैयार होगया। कुमारने रत्नचूलको छोड़ दिया। दोनोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया। कुमार मौनसे बैठे हुए तमाशा देखने लगे। कुमारने विचार किया कि बीचमें बोलना ठीक नहीं होगा। माध्यस्थ

रहना ही सुंदर है। यदि मैं मृगांकको मना करता हूं तो इसके बलकी लघुता होती है और मैं मृगांकका पक्ष लेता हूं, ऐसा रत्नचूल विपक्षीको होगा। यदि मैं रत्नचूलको मना करता हूं तौ भी रत्नचूलको घमण्ड होजायगा। रत्नचूल और मृगांक दोनोंने कुमारको नमस्कार किया और रणक्षेत्रमें युद्ध करने लगे। दोनों ओरकी सेनाके योद्धा सावधानीसे लड़ने लगे। चारों प्रकारकी सेना परस्पर भिड़ गई। दोनोंने अहंकारमें भरकर राम रावणके समान घोर युद्ध किया। साधारण शस्त्रोंसे युद्ध किये जानेपर कोई नहीं हारा। तब रत्नचूलने क्रोधवान होकर विद्यामई युद्ध प्रारम्भ किया। मृगांक भी विद्यामई युद्धमें सावधान होगया। रत्नचूलने सब सेनामें ऐसी धूला फैला दी कि मृगांककी सेना व्याकुल होगई। तब मृगांकने पवनके शस्त्रसे उस राज्यको उड़ा दिया। तब अग्निबाण चलाकर रत्नचूलने सेनामें आग लगादी। तब मृगांकने जलकी वर्षा करके अग्निको शांत किया। इस तरह विद्यामई शस्त्रोंसे बहुत देरतक युद्ध हुआ। अंतमें रत्नचूलने नागपाशिसे मृगांकको बांध किया। अपनेको विजयी मानकर व मृगांकको दृढ़ बंधनोंसे बांधकर रणक्षेत्रसे जाने लगा। तब जम्बूस्वामीने तुर्त मना किया।

हे मूढ़! मैं मृगांकके साथ हूं, मेरे होते हुए तू इसे कहां लिये जारहा है? शेषनागके सिरकी उत्तम मणिको कौन ले सक्ता है? कालके मुखसे कौन अपनेको बचा सक्ता है? महा मेरु पर्वतको कौन हाथसे हिला सक्ता है? सिंहकी शय्यापर सोकर कौन

जी सक्ता है ? इस तरह तू मेरे रहते हुए घरमें जाकर सुखसे रहना चाहता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। तुझे लज्जा भी नहीं आती है ? जंबूकुमार यह कह ही रहे थे कि रत्नचूल जंबूस्वामीके सामने युद्ध करनेको तैयार होगया। तब कुमारने कहा कि यदि तू युद्ध करना चाहता है तो मुझ अकेलेसे युद्ध कर। सेनाको भिड़ानेसे क्या लाभ है।

रत्नचूल-जम्बूकुमार युद्ध।

रत्नचूलने बात मान ली, तब दोनों तरफकी सेनाके योद्धा हट गए। तब ये दोनों ही वीर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युद्ध करने लगे। रत्नचूलने कुमारके ऊपर नागबाण छोड़ा, कुमारने उसी क्षण गरुड़ बाणसे उसको निवारण कर दिया। तब रत्नचूलने अग्निबाण चलाया। कुमारने जलकी वर्षा करके आगको बुझा दिया। और रत्नचूलको तोमर शस्त्र मारा। तब रत्नचूलने हाथमें चक्र उठाकर कुमारके मारनेको फिराया। तब शीघ्र ही कुमारने बाण चलाकर उस चक्रके टुकड़े कर दिये। उस चक्रके टुकड़े बिजलीके घातके समान विद्याधरके कंधेपर पड़े। शरीरके अंग उसके घातसे चूर्ण होते देखकर विद्याधर जमीनपर उतरा और क्रोधी होकर कुंत नामके शस्त्रको हाथमें ले लिया। कुमार भी शीघ्र ही हाथीसे उतर पड़े, और रत्नचूलके शरीरमें ऐसी जोरसे मुट्ठी मारी जिससे वह भूमिपर पड़ गया। फिर कुमारने रत्नचूलको बांध लिया। तब मृगांक राजाको शीघ्र ही बंधनसे छुड़ाया। वह मृगांक राजा शरद कालमें मेघ रहित सूर्यके समान शोभने लगा।

आकाशमें देवोंने कुमार पर पुष्पवृष्टि की। दुंदुभि बाजे बजाए। जय जयकार शब्द किये। वास्तवमें पुण्यरूपी वृक्षके मीठे ही फल होते हैं।

जम्बूकुमारका केरला प्रवेश।

तब मृगांक राजाने वाजित्रोंकी ध्वनिके साथ अन्य राजाओंको लेकर जम्बूकुमारको **केरला नगरीके** भीतर प्रवेश कराया। उस समय व्योमगति विद्याधरको जो संतोष व सुख हुआ वह कहा नहीं जासक्ता है। नगरमें कुमारकी सवारी आरही है तब नगरकी युवतियोंने अनुरागसे कुमारके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। कोई स्त्रियां हर्षके मारे मंगलगीत गाने लगीं। तथा परस्पर बात करने लगीं—हे सखी! देखो, यही वह जम्बूकुमार हैं जिन्होंने लीलामात्रमें रत्नचूल विद्याधरको जीत लिया। कोई कहने लगी कि यह कुमार सदा जीवें, इसीने शत्रुओंको मारकर हमारे सौभाग्यकी रक्षा की। इस नरसिंहकी माता सेठ अरहदासकी पत्नी **जिनमती** धन्य हैं, जिसने गर्भमें दश मास रक्खा। वह श्रेणिक राजा धन्य है जिसका यह उत्तम योद्धा है। जिस अकेलेने हजारों योद्धाओंका मान खंडन कर दिया।

मार्गके बाजारोंमें व गलियोंमें व्यापारियोंके कुमारोंने बड़ी शोभा बना दी थी। स्वामी देखते देखते राजमहलके द्वारपर तोरणके पास पहुंच गए। वहांपर रत्न व मोतियोंसे अपूर्व शोभा कीगई थी। कुछ देर कुमार देखते देखते ठहर गए। फिर धीरे २ कुमार राजमंदिरके

भीतर गए। जम्बूकुमारको जो देखता था वह आनंदमय होजाता था। राजा मृगांकने जम्बूस्वामीकी सेवककी भांति बड़ी सेवा की, उनकी स्नानादि क्रिया कराई व नाना प्रकार रसीले भोजन तैयार कराकर कुमारको तृप्त किया। कुमारने सुन्दर भोजनोंसे परम संतोष प्राप्त किया। तब मृगांकने तांबूल दिया व चंदनादि सुगंध द्रव्य लगाया। बहुत बड़ा सत्कार किया।

रत्नचूलको कुमारने छोड़ दिया।

फिर राजसभामें बैठकर दयावान कुमारने रत्नचूल विद्याधरको बन्धनसे मुक्त किया। फिर कामविजयी कुमारने बड़े सुन्दर कोमल वचनोंसे विद्याधरको संतोषित किया—हे विद्याधर! युद्धमें जय पराजय तो होता ही है, यह क्षत्रियोंका धर्म है, इसमें विषाद न करना चाहिये। अब तुम अपने घरमें सुखसे जाओ। और परिवारके साथ रहकर सुख भोगो। रत्नचूलने नम्र वचनोंसे कहा कि हे स्वामी! मैं आपके साथ चलकर श्रेणिक महाराजका दर्शन लाभ करना चाहता हूं।

कुमारका प्रस्थान।

कुछ दिन कुमार वहां ठहरे, फिर विमानपर चढकर श्रेणिक राजाके पास चले। मृगांक भी अपनी रानीको लेकर व विशालवती सती कन्याको विवाहनेके लिये लेकर चला। भक्तिवान रत्नचूल भी चला। और पांचसौ विद्याधर योद्धा विमानोंपर चले। व्योमगति विद्याधर हर्षित-चित्त होकर अपने विमानपर बैठकर कुमारके पीछे पीछे चलने लगा। आकाश विमानोंसे छागया। चलते चलते वे सब

कुरल पर्वत पर आए, जहां श्रेणिक महाराज राजमण्डलके साथ विराजमान थे।

श्रेणिकसे भेट।

विमानोंको आकाशमें स्थापन करके मृगांक आदि सब विद्याधर उतरे। जंबूकुमार उन सबको श्रेणिक राजाके पास लाए। श्रेणिक महाराजने दूरसे आते देखा तो शीघ्र ही सिंहासनसे उठे और बडे आदरसे कुमारको गले लगाया और कहने लगे कि बहुत दिनोंके पीछे आज तुम्हें देखकर मेरे हृदयमें बड़ा ही हर्ष उत्पन्न होगया। तब व्योमगति विद्याधरने सर्व वृत्तांत श्रेणिकसे निवेदन किया और जो जो महानुभाव पधारे थे उनको अपने हाथसे बताकर उनके नाम सुनाए। हे देव! यह राजा मृगांक है जो आपको अपनी कन्या देते हैं। यह उनकी पटरानी मालती लता है। यह विद्याधरोंमें मुख्य रत्नचूल है, जिसको बडे २ योद्धा नहीं जीत सके थे, परन्तु कुमारने उन्हें जीत लिया।

इन वचनोंको सुनकर श्रेणिक राजाका आनन्द उसी तरह बढ़ गया, जिस तरह चंद्रमाके उदयसे समुद्र बढ़ जाता है। तब श्रेणिकने कुमारकी वार वार प्रशंसा की। जिससे उपकार पहुंचा हो उसकी तरफ राजाका स्वभावसे ही मृदु भाषण होना ही चाहिये।

श्रेणिकका विशालवतीसे विवाह।

तब मृगांकने अपनी कन्या विशालवती वहीं श्रेणिकको अर्पण कर दी। विवाहका उत्सव होने लगा। विद्याधरोंको बडा हर्ष हुआ।

स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं। प्रतापशाली श्रेणिकने मृगांक और रत्नचूलका मैत्रीभाव करा दिया। तब श्रेणिकने सर्व विद्याधरोंका यथोचित सन्मान करके विदा किया। सब जन लौट गए। व्योमगति विद्याधर भी स्वामीका कार्य सफल करके अपनेको कृतकृत्य मानता हुआ अपने स्थान गया।

रघुराघ कुमारका राजगृही आना।

मगधराज श्रेणिक विशालवतीको लेकर राजगृहीकी तरफ चले। कुमार भी साथ थे। चलते हुए राजाने विन्ध्याचल पर्वतके जंगलको उलंघा। मार्गमें राजा नवीन वधूके साथ वार्तालाप करते हुए जारहे थे। हे मृगनयनी! देख, ये मृग-समूह तेरे नेत्रोंको ईर्षासे देखनेके लिये आए हैं। हे बाले! इन सुंदर हाथीके समूहोंको देख, जिनकी उपमा तेरे गमनको दी जाती है। हे कृश कटिवाली! इस सिंह-नीको देख, जिसको तूने अपनी कमरसे जीत लिया है। हे सुंदर स्तनधारिके! तू इन शूकरोंको देख, जो ऊंचा मस्तक किये हुए हैं। हे विशालाक्षी! इन बन्दरोंके समूहोंको देख, जिनकी चंचलताको तेरे चित्तके चमत्कारने जीत लिया है। हे कोकिलवचनी! इन कोयलोंकी ध्वनि सुन, तेरी वाणीने उनके स्वरोंको तिरस्कार कर दिया है।

वनकी शोभा।

हे मृदुभाषिणी! इस तरफ तू हंसका रुदन सुन जो हंसनीसे मिलनेके लिये उसे याद कर रहा है। हे सुन्दरी! सरोवरके तटोंपर बगलोंकी

पंक्तिको देख। तेरे कंठमें मोतियोंकी माला जैसी है वैसे वे शोभते हैं। हे चकोर नयनी! उस चक्र-युगलको देख जो चंद्रमाके उदयकी शंकासे तेरे मुखको देख रहा है। स्नेह बढ़ानेवाली चातककी ध्वनि सुन जो परम प्रीतिसे प्रिये प्रिये, कहकर रटन लगा रही है। हे मनमोहने! आम्र वृक्षोंमें लगी हुई पीली पीली मंजरीको देख, जो तेरे कर्णके सुवर्ण आभूषणोंके साथ स्पर्श कर रही है। इस वनके भीतर भ्रमर समूह गुंजार कर रहे हैं। मानो तेरे गुणके स्तोत्र रूपमें अक्षरोंको ही लिख रहे हैं। मोरोंकी ध्वनिको सुन, जो दूरसे होरही है वे सेनाकी रजसे आकाशको छाया हुआ देखकर मेघकी ही शंका कर रहे हैं। हे कमलनयने! इन कमलोंकी पंक्तिको देख, जो भ्रमरोंसे शोभायमान है। तेरे मुखकी शोभा उनको जीत रही है। हे प्रिये! कोमल पत्तोंसे शोभित वेलोंको देख, जिसके पत्ते तेरे हाथके स्पर्शसे स्पर्श कर रहे हैं। अर्थात् तेरे हाथका स्पर्श पत्तोंके स्पशसे भी अधिक कोमल है। हे कांते! इन पुष्पोंकी बहारको देख, जो तेरे मुखको देखकर आनंदमें भरकर प्रफुल्लित होरहे हैं। इस तरह अपनी प्रिया विशालवतीको भोगकी शोभा बताते हुए राजा श्रेणिक राजगृह नगर पहुंच गए।

सुधर्माचार्यका दर्शन।

राजगृहके उपवनमें राजा श्रेणिक सेना सहित कुछ देर ठहरे। देखते क्या है कि उस वनमें पांचसौ शिष्य मुनियोंसे वेष्टित सुधर्माचार्य मुनि धर्मोपदेश देते हुए विराजमान हैं। महा भाग्यवान

राजाने सस्त्रीक कुमार सहित तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराजको नमस्कार किया। राजा श्रेणिक गुरुमहाराजका दर्शन पाकर अपना जन्म सफल मानने लगा। दर्शन करके राजा श्रेणिक सेना सहित अपने राजमहलमें जानेके लिये नगरके भीतर चल पड़ा। राजलक्ष्मी व जयलक्ष्मीको लिये हुए राजाने बड़ी शोभाके साथ राजमन्दिरमें प्रवेश किया। कहा है—

धर्मकल्पद्रुमः सेव्यः किमन्यैर्बहुजल्पितैः।

यत्पाकादर्थकामादिफलं स्यात्पावनं महत् ॥ १४५ ॥

भावार्थ-और अधिक क्या कहें-धर्म कल्पवृक्षके समान चिंतित फलदायक है, इसकी सेवा सदा करनी चाहिये। धर्मके ही फलसे धनकी व कामादि भोगोंकी प्राप्ति होती है। धर्महीसे महान पुण्यबन्ध होता है और फलता है।

आठवा अध्याय।

जंबूस्वामी विवाहोत्सव।

(श्लोक ११८ का भावार्थ।)

धर्मकी सिद्धिके लिये धर्म तीर्थके स्वामी श्री धर्मनाथ तीर्थंकरकी स्तुति करता हूं तथा आठ कर्मोंकी शांतिके लिये श्री शांतिनाथको नमस्कार करता हूं।

जम्बूकुमारका पूर्वजन्म वृत्त श्रवण।

श्री जम्बूकुमारने अपने मनमें विचार किया कि किस पुण्यके उदयसे मैंने यश और लक्ष्मी प्राप्त की है, तब इस प्रश्नका समाधान पानेके लिये वह श्री सुधर्माचार्यके पास आया और विनयपूर्वक नमस्कार करके बैठ गया। अवसर पाकर कहने लगा—हे मुनिनाथ! कृपाकर मेरा संशय छेद कीजिये। मैं किस पुण्यके उदयसे यहां जन्मा हूं, मैं कौन था, कहांसे आकर जन्मा हूं। हे स्वामी! आप तो वीतरागी हैं, सुख दुःखमें समान हैं, आप शत्रु मित्रमें समदर्शी हैं, जीवन मरणमें सम हैं, स्तुति व निंदामें सदृश हैं, हरिचन्दनकी सुगन्धके समान शांत हैं। तौभी आपके मुखारविंदसे अपने पूर्वजन्मका वृत्तांत सुनना चाहता हूं। हे मुनिराज! आप भक्तवत्सल हैं, संसार सागरसे तारनेवाले हैं, आप जीवनमुक्त हैं, व सर्व जंतुओंपर दयालु हैं। तब धर्माचार्य सौधर्म मुनि कहने लगे—हे वत्स! तेरे पूर्वजन्मका वर्णन करता हूं. तू सुन।

इसी मगध देशमें वर्द्धमान नामका बड़ा ग्राम था। उसमें दो निकट भव्य ब्राह्मण रहते थे। बड़ेका नाम भावदेव था और छोटेका नाम भवदेव था। क्रमसे दोनोंने सर्व सुखदायी जैन धर्मकी दीक्षा धार ली। समाधिमरणसे वे दोनों मरके सनत्कुमार स्वर्गमें देव उत्पन्न हुए। आयुके अंत होनेपर वहांसे च्युत होकर बड़े भाई भावदेवका जीव वज्रदंत राजाका पुत्र सागरचंद्र हुआ। छोटा भवदेवका जीव महापद्म चक्रवर्तीका पुत्र शिवकुमार पैदा हुआ। दोनोंहीने घोर तप व व्रत पाले। दोनों समाधिसे मरके छट्ठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देव हुए। भवदेवका जीव श्रीप्रभ विमानमें और भावदेवका जीव जलकांत विमानमें देव हुआ। वहां १० सागरकी आयु भोग करके दोनोंमेंसे भावदेवका जीव भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुआ। यही मगध देश अनेक नगरोंसे शोभायमान है। यह जैन धर्मका स्थान है। वहां निरन्तर मुनिविहार करते हैं। इस देशमें संवाहनपुर सुन्दर नगर है, जहां उत्तम महिकाओंसे शोभित पंक्तिवन्द घर हैं। उस नगरका राजा सुप्रतिष्ठ था, जो जैन धर्म कमलके भीतर भ्रमरके समान आसक्त था। उसकी धर्मात्मा पटरानी रूपवती थी। वह शीलवती थी व सुन्दरता व गुणकी खान थी। भावदेवका जीव वह देव छट्ठे स्वर्गसे आकर इस पटरानीके सौधर्म नामका पुत्र हुआ, जो क्रमसे बढ़कर थोड़े ही वर्षोंमें सर्व शास्त्रोंका ज्ञाता होगया। कुमार-वयमें ही घरमें दीपक समान शोभता था।

एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा पटरानी सहित श्री महावीर भगवानके

समवशरणमें वंदनाके लिये पधारे। श्री वर्द्धमान भगवानके मुखकमलसे धर्मोपदेश सुना। सुनकर उसका मन भोगोंसे उदास होगया। अपने मनमें विचारने लगा कि यह संसार असार है, चंचल है, धनादि सब जलके बुद् बुदके समान क्षणिक हैं। उसी दिन उस राजाने आठ कर्मोंको नाश करनेके लिये सर्व परिग्रह त्याग कर स्वर्ग व मोक्ष-सुखको देनेवाली निर्ग्रंथकी दीक्षाको ग्रहण कर लिया। कुछ दिनोंके पीछे सुप्रतिष्ठ मुनि सर्व श्रुतके पारगामी होगए। तथा वर्द्धमान जिनेश्वरके ग्यारह गणधरोंमें चौथे गणधर हुए। अपने पिता गणधरको एक दिन देखकर सौधर्मने भी कुमार वयमें वैराग्यवान हो, मुनिपदको स्वीकार कर लिया। वह फिर श्री वीर भगवानका पांचमा गणधर होगया। वही मैं तेरे सामने भावदेवका जीव सुधर्म नामका बैठा हू और तू भवदेवका जीव है। ऐसा तू अपने पूर्व जन्मका वृतांत जान। हे वत्स! संसारी जीव कर्मोंके आधीन होकर अपने कर्म विनाशक वीतराग भावको न पाते हुए संसारमें भ्रमण किया करते हैं। तुम छट्ठे स्वर्गमें विद्युन्माली देव थे, सो वहांसे आकर सेठ अर्हदासके सुखकारी पुत्र हुए हो। तेरी स्वर्गकी चारों देवियां भी वहांसे च्युत होकर सागरदत्त आदि श्रेष्ठियोंकी चारों पुत्रियां जन्मी हैं। उन चारोंके साथ तेरा विवाह होगा। वे पूर्व स्नेहवश ही तेरी चार भार्या होंगी।

जम्बूकुमारका वैराग्य।

मुनिराजके मुखसे अपना भवांतर सुनकर जंबुस्वामी कुमारके

मनमें तीव्र वैराग्य बढ़ गया। विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगा कि मैं संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होगया हूं। आप मेरे विनाकारण परम बंधु हैं। आप मेरा संसारसागरसे उद्धार कीजिये। कृपा करके मुझे निर्ग्रन्थ दीक्षा प्रदान कीजिये, मेरी इच्छा भोगोंमें नहीं है, आत्माके दर्शनकी ही भावना है। कुमारकी वाणीको सुनकर महामुनि समाधानकारी वचन साम्य मुखसे कहने लगे। वह अवधिज्ञानके बलसे जान गए कि वह अति निकट भव्य है। भाषा समितिकी शुद्धिसे कोमल वाणी प्रगट करने लगे। हे वत्स! तेरी अवस्था क्रीड़ा करने योग्य है। कहां तेरी वय और कहां तेरा यह कठिन दीक्षाका श्रम जो महान पुरुषोंसे भी कठिनतासे पालने योग्य है। यदि तेरे मनमें दीक्षा लेनेकी तीव्र उत्कंठा है तो तू अपने घरमें जा। वहां बंधुवर्गोंको पूछकर उनका समाधान करके परस्पर क्षमाभाव करादे, फिर लौटकर उस कर्म क्षयकारी निर्ग्रंथ दीक्षाको ग्रहण कर। यही पूर्वाचार्योंके द्वारा बताया हुआ दीक्षा लेनेका क्रम है।

सौधर्मसूरिके वचनोंको सुनकर जंबूकुमार विचारने लगा कि यदि मैं अपने भीतरी हठसे घर नहीं जाता हूं तो गुरुकी आज्ञाका लोप होना ठीक नहीं होगा। इससे मुझे शीघ्र ही अपने घर अवश्य जाना चाहिये। पीछे लौटकर मैं अवश्य इस दीक्षाको ग्रहण करूंगा। ऐसा मनमें निश्चय करके कुमारने सौधर्म गुरुको नमस्कार किया और अपने घर प्रस्थान किया। घर पहुंचकरके कुमारने अपनी माता जिनमतीको विना किसी गुप्त बातको रक्खे हुए अपने

मनका सर्व हाल जैसाका तैसा कह दिया। हे माता! मैं अवश्य इस संसारसे वैराग्यवान हुआ हूं, अब तो मैं अपनी हथेलीमें रक्खा हुआ ही आहार ग्रहण करूंगा।

इस वार्तालापको सुनकर सती जिनमती कांपने लगी जैसे मानो पवनका झोका लगा हो। फलैसे कमलिनी मुरझा जाती है इसतरह जिनमती उदास होगई। कहने लगी—हे पुत्र! ऐसे वज्रपातके समान कठोर वचन क्यों कहे? इस कार्यके होनेमें अकस्मात् क्या कारण हुआ है सो कह। तब कुमारने समाधान करते हुए जो कुछ सुधर्माचार्यने वर्णन किया था सो सब कह दिया।

जंबूकुमारके पूर्वजन्मकी वार्ता सुनकर जिनमतीके भीतर धर्मबुद्धि उत्पन्न हुई। चित्तको समाधान करके उसने सेठ अरहदासके आगे सर्व वृत्तान्त कह दिया कि यह चरमशरीरी कुमार है यह जैन दीक्षाको लेना चाहता है। अर्हदास इस वचनको सुनते ही मूर्छित होगया, महा मोहका उदय आगया, हाहाकार शब्द रटने लगा। किन्हीं उपायोंसे सेठजीने मूर्छा छोड़ी, फिर उठकर इसतरह आकुल हो विलाप करने लगा कि उसका कथन कौन कवि कर सक्ता है। फिर समाधान-चित्त होकर अर्हदासने एक चतुर दूतको भेजा कि वह यह सब बात समुद्रदत्त आदि सेठोंको कहे। वह दूत शीघ्र ही पहुंचा और चारों सेठोंको एकत्र कर विवाहका निषेधक निवेदन किया। अंतमें कहा कि आपके समान सज्जनोंका समागम बडे भाग्यसे मिला था सो हमारा दुर्भाग्य है कि अकस्मात् विघ्न आ खडा हुआ।

शस्त्रपातके समान दुःखदाई इन कठोर वचनोंको सुनते ही चारों सेठ कांपने लगे, मनमें आश्चर्य हो आया। शोचसे आंखोंमें पानी आगया, आकुलित होकर कहने लगे। क्या कुमार कहीं अन्य कन्यासे विवाह करना चाहते हैं, या कोई और कारण है सो सच सच कहो। तब दूतने बड़ी चतुराईसे यह सच बात कह दी कि अहो जम्बूस्वामी तो संसारसमुद्रसे शीघ्र तरना चाहते हैं। वह संसारके दुःखोंसे भयभीत हैं। निश्चयसे कामभोगोंसे उदासीन हैं, उनके भीतर मुक्तिरूपी कन्याके लाभकी भावना है। वे अवश्य जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करेंगे। इस बातको सुनकरके चारों सेठ उदास होगए। और घरके भीतर जाकर उन कन्याओंको बुलाया और उनको समझाने लगे। वे कन्या मन, वचन, कायसे कुलाचार व शीलव्रतको पालनेवाली थीं। हे पुत्री! सुनाजाता है, जंबुकुमार भोगोंसे उदास होगये हैं व मोक्षलाभके लिये तप पूर्वक व्रत लेना चाहते हैं। जैसी उनकी इच्छा, उनको कौन रोक सक्ता है? अभी तक हमारी कोई हानि नहीं है, तुम्हारे लिये दूसरा वर देखलिया जायगा। कहा है—

तद्गृह्णातु यथा ऽऽमं का नो हानिस्तु सांप्रतम्।
भवतीनां समुद्वाहे भवेच्चाद्य वरोऽपरः ॥ ७० ॥

कन्याओंकी विवाहकी दृढ़ता।

पिताके इन वचनोंको सुनकर पद्मश्री उसी तरह कांपने लगी जैसे कोई योगीके प्रमादसे प्राणीकी हत्याके होजानेपर योगीका तन कंपित होजाता है। पद्मश्री कहने लगी—हे पिता! ऐसे लज्जाकारी अशुभ वचन

आपको नहीं कहने चाहिये। महात्माओंका धर्म है कि प्राण जानेपर भी लोक मर्यादाको कभी न तोड़े। जैसे सम्यग्दृष्टी महात्माके लिये सर्व दोष रहित एक अरहन्त आप ही देव हैं व एक जिन धर्म ही पूजनेयोग्य है वैसे ही मेरे तो एक जंबूकुमार ही भर्तार हैं। मेरा तो यह पक्का नियम है कि उनके सिवाय मेरा पति कोई नहीं होसक्ता है। इन्द्रजालके समान विषयभोगोंको धिक्कार हो कि पति तो दीक्षा ले जावे और हम उपपतिमें रत हों। कहा है—

एक एव यथा देवः सर्वदोषविवर्जितः।
अर्हन्निति त (स) दाख्यातो धर्मश्चैको महात्मनाम् ॥ ७३ ॥
तथा जम्बूकुमारोऽयं भर्ता चैको हि मामकः।
नापरः कश्चिदेवातो नियमो मे निसर्गतः ॥ ७४ ॥
धिग्भोगान्विषयोत्पन्नानिन्द्रजालोपमानिह।
पतौ गच्छति दीक्षायै वयं तूपपतौ रताः ॥ ७५ ॥

(नोट–यहां आदर्श चारित्र झलकाया है। जब किसीका विवाह सम्बन्ध पक्का होजाता है, तब मनसे या वचनसे विवाह हो जाता है। केवल काल द्वारा सम्बन्ध बाकी रहता है। इसलिये आदर्श शील पालनेवाली कन्याएं सिवाय जंबूकुमारके औरको अपना स्वामी बनाना शीलमें दोष समझती हैं।) यदि हमको भोग सम्पदा भोगनी होगी तो हमारे भाग्यके उदयसे वह कुमार अवश्य ही घरमें रुक जांयगे। यदि मेरे कर्मोंके उदयसे भोगोंका अन्तराय होगा, तो बहुत उपायोंसे मना करने पर भी वह अवश्य तपोवनको जांयगे।

तो भी मेरे मनको कोई संताप न होगा क्योंकि जो बात होनेवाली है, इसे कोई औरकी और नहीं कर सक्ता है, यह मुझको निश्चय है। और अधिक क्या कहूं। हे पिताजी! आप इस संबन्धमें अधिक न कहे। मेरे पति तो सर्वथा जम्बूस्वामीकुमार ही हैं।

पुत्रीके वचन सुनकर सागरदत्त सेठने बाहर आकर यह सब वर्णन दूतको कह दिया। दूत तुर्त ही अरहदास सेठके घर गया, और जो कुछ कन्याकी कथा थी, सो सर्व सेठको कह दी। इतने-हीमें सूर्य अस्ताचलको चला गया। संध्याका समय होगया सो ठीक है। संत पुरुष परकी विपत्तियां देख नहीं सक्ते। अर्हदास सेठ यह न समझ सका कि क्या करना चाहिये। कुमारके पास जाकर प्रार्थना करने लगा कि एक दिन भी आप ठहर जावें, विवाहके पीछे एक दफे भी उन कन्याओंके साथ सहवास करना चाहिये। हे पुत्र! मेरी इस प्रार्थनाको निष्फल न कर, पीछे जो तुम्हें रुचे सो करना।

यद्यपि कुमारको विवाहकी इच्छा नहीं थी। तथापि पिताके अति आग्रहसे उसने यह बात स्वीकार कर ली। कहा कि हे पिताजी! चित्तमें शोक न करो, जो आपकी इच्छा है वह पूर्ण होगी।

विवाहोत्सव।

तब इसी समय चारों सेठोंको खबर दी गई। अब अर्हदास सेठके यहां व उन चारो सेठोंके घरोंमें मांगलीक बाजे बजने लगे, आनंदभेरी बजने लगी। युवती स्त्रियां प्रसन्न होकर मंगल गीत गाने लगीं।

कुमार घोड़ेपर चढ़ गये। विवाहके योग्य सब सामग्री व सामान साथ लिया। अनेक वादित्रोंके साथ कुमार मार्गमें चलने लगे। बंदीजन जम्बुकुमारका यश गान करते जाते थे। नगरके नर-नारी जगह जगह कुमारको देखकर हर्षित होते थे। शनैः २ कुमार सागरदत्त सेठके महलपर पधारे। घोड़ेसे उतरे, विवाह मण्डपमें जाकर मौन सहित बैठ गये। विवाह क्रिया होने लगी। विना इच्छा होते हुए भी कुमारने पाणिग्रहणके लिये अपना हाथ दे दिया। विवाहके पीछे सागरदत्तादि सेठोंने सुवर्ण–रत्नादि सामग्री हर्षपूर्वक दी। नानाप्रकारके सुन्दर वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, पलंग आदि वस्तु सेठोंने दीं। हाथी, घोड़े, धन, धान्य, दास, दासी आदि जो कुछ उत्तम वस्तु थीं सो सब स्वामीको भेट कीं। उन चारों कन्याओंके साथ गठजोड़ा बांधे हुए कुमार रातको ही स्त्रियोंको लेकर बड़े उत्सवके साथ पधारे।

उस समय वर-वधूके घर आनेपर जो कुछ उचित क्रिया थी सो सब अर्हदास सेठने की। जिसको जो कुछ देना था सो बड़े स्नेहसे दिया। जिनमतीने भी अपनी सखियोंको व मान्य स्त्रियोंको वस्त्र दिये। अपने घरमें जितने आए थे सबका यथायोग्य सन्मान किया। इतनेमें निद्रा सबकी आंखोंमें आने लगी। सब शयन करनेको चले गए। सखियोंने हर्षित नेत्रोंसे कुमारको एकान्त भवनमें चारों स्त्रियोंके साथ बिठा दिया। सुन्दर प्रकाशमान दीपक जलते थे। हंसके समान सफेद रुईकी बुनी शय्यापर कुमार चारों स्त्रियोंके साथ बैठ गए। स्वामी मौनसे विरक्त भावसे बैठे हैं। जैसे

कमलका पत्ता जलमें अलिप्त रहता है वैसे स्वामी संसारसे विरक्त थे। न तो स्वामी कुछ कहते हैं, न उन स्वरूपवती स्त्रियोंकी ओर देखते हैं, स्वामी तो तरङ्ग रहित समुद्रके समान परम निश्चल हैं। जैसे आकाशमें तारागणोंका समूह निर्मल शोभता है वैसे ही चारों स्त्रियोंका दल मोतियोंका हार आदि आभूषणोंसे वेष्टित शोभता था।

जम्बूस्वामी शयनागारमें।

उन चार युवतियोंके परिणामोंमें कामकी अग्नि प्रज्वलित होने लगी तब वे परस्पर वार्तालाप करने लगीं, अपने कामके अंगोंको दिखाने लगीं, कभी हंसने लगीं, स्त्रियोंके हावभाव विलास प्रदर्शित करने लगीं, मनोहर गीत गाने लगीं, नानाप्रकार कामकी चेष्टाओंसे उद्यम किया कि स्वामीका मन विचलित हो परन्तु स्वामीको जरा भी न डिगा सकीं। स्वामी कैसे थे, कहा है—

इतिसुकृतविपाकात्स्वामिजम्बूकुमारः।
सकलसुखनिधानो मारमातंगसिंहः॥
कृतपरिणयकर्मा धर्ममूर्तिर्विरक्तो।
विषयविरतचेताः स्यात्समासन्नभव्यः॥ ११८॥

भावार्थ-स्वामी जम्बूकुमार पूर्वकृत पुण्यके उदयसे सर्व सांसारिक सुख सामग्रीको लाभ कर चुके थे। विवाहकर्म भी पिताके आग्रहसे कर चुके थे परन्तु वे अति निकट भव्य थे, धर्ममूर्ति थे, कामदेव रूपी हाथीको जीतनेके लिये सिंहके समान थे, संसारसे विरक्त थे, इंद्रियोंके विषयभोगोंसे अत्यन्त उदासीन थे।

नौवां अध्याय।

जम्बूकुमारका चारों स्त्रियोंसे वार्तालाप व विद्युच्चरका समागम।

(श्लोक २३१ का भावार्थ।)

कुंथु आदि क्षुद्र जंतुओंके दयालु व धर्मतीर्थके विधाता श्री कुन्थुनाथको तथा मुक्ति-वधूके वर अरनाथ तीर्थंकरको कर्म-शत्रुओंके नाशके लिये मैं वंदना करता हूं।

जम्बूस्वामीको वैराग्यभाव।

इन चारों स्त्रियोंकी कायकी विक्रियाको देखकर जम्बूस्वामी परम ज्ञानी वैराग्यकी भावना भाने लगे, मोहनीय कर्मके उदयसे होनेवाले इस अज्ञानको धिक्कार हो, जिसके वशमें पड़कर संसारी प्राणी दुःखको ही सुख मान लेते हैं। जैसे वनके मृग प्यासे होकर मरीचिकाको अर्थात् चमकती हुई बालू या घासको जल जानकर पीनेको दौडते हैं वैसे संसारी प्राणी इंद्रियोंके विषयोंमें सुख जानकर विषयोंकी इच्छा करते हैं। जैसे खुजलीका रोगी अपने कठोर नाखूनोंसे खुजाता हुआ अपने शरीरके दुःखको भूलकर अच्छा मान लेता है वैसे ये प्राणी इंद्रियोंके भोगोंमें सुख मान लेते हैं। इन्द्रि-याधीन सुख सुख नहीं है, सुखसा दिखता है। यह इन्द्रिय सुख पराधीन है, बाधा सहित है, क्षणभंगुर है व बन्धका कारण है, इसी

लिये महात्माओंने इसे छोड़ने योग्य कहा है। सच्चा सुख इन्द्रियोंकी पराधीनतासे रहित स्वाधीन अतीन्द्रिय है, बाधा रहित है, नित्य है, आकुलता रहित है, स्वात्मसुखके प्रेमी साधुको निरन्तर स्वादमें आता है।

इस आत्मीक आनन्दको न जानकर अज्ञानी जन अपनी अविवेकपूर्ण बुद्धिके दोषसे विषयोंमें आसक्त होकर सुख है ऐसा कहता है। ऐसा जीव स्त्रियोंके जालसे दृढ़ बंधा हुआ इस इन्द्रिय सुखमें मग्न होकर उसी तरह दुर्गतिमें जाकर क्लेश भोगता है जैसे मृग शिकारीके जालमें पकड़ा जाकर दुःख उठाता है। कोई लोग आशीविष सर्पको, कोई दंदशूक सर्पको भयानक कहते हैं। मैं तो स्त्रियोंको उनसे भी अधिक भयानक मानता हूं। इन स्त्रियोंके कटाक्ष मात्रसे कामी पुरुष पीड़ित होकर कामकी अग्निसे जला करते हैं, जैसे मृग बाणके लगनेसे पीड़ित हो तडफडता है। बडे खेदकी बात है कि मूर्ख प्राणी अपने ही स्वाधीन अतीन्द्रिय सुखको छोड़कर क्यों इस असार स्त्रीके शरीरमें मोहित होकर मदिरापायीके समान कष्ट पाते हैं। इस जगतमें जो सबसे निंदनीय वस्तु है वह स्त्रीका शरीर है। यह शरीर मल, मूत्र, रुधिर, मांस, हाड़ आदिके समूहसे भरा है। दूसरी जो कोई वस्तु स्वभावसे सुंदर व पवित्र होती है वह इस शरीरके संसर्गसे क्षणमात्रमें दुर्गंधमय होजाती है। हलाहल विषधारी सर्पके समान ये सर्व ही स्त्रियां हैं। विधाता कर्मने प्राणियोंको बांधनेके लिये जालरूपमें इनको बनाया है।

पद्मश्रीकी वार्ता।

स्वामी मनमें ऐसा विचार ही रहे थे कि इतनेमें पद्मश्री दूसरी तीन स्त्रियोंसे कहने लगी—अरी सखी! इस निर्गुण पुरुषकी खुशामदसे क्या लाभ! नपुंसकमें कामके बाण क्या असर पैदा कर सकते हैं। अंधेके सामने नाचनेसे क्या, बहिरेके सामने गानेसे क्या, कायरके पास खड्ग होनेसे क्या, कृपणके पास लक्ष्मीसे क्या? ये सब वृथा हैं। हे सखी! विदित होता है कि यह पूर्व तपके फलसे प्राप्त भोगोंको छोड़कर फिर तप करके उपभोगोंको प्राप्त करना चाहते हैं। जैसे किसी मूर्ख मनुष्यके घरमें भोजन तैयार है, उसको तो छोड़दे, अज्ञान व प्रमादसे घर२ भीख मांगता फिरे। तपका फल सांसारिक सुख है, वह चाहे स्वर्गमें मिलो, चाहे मध्य-लोकमें मिलो। खेदकी बात है कि मूर्ख इस प्रत्यक्ष बातको भूल जाता है। हम सब लक्ष्मीके समान स्त्रियां हैं। यह घर स्वर्गके समान है, सुन्दर शरीर है, घरमें सम्पदा है, सर्व दुर्लभ वस्तु है। इससे अधिक क्या चाहिये। जो कोई इस सर्व प्राप्त स्वाधीन सामग्रीको छोड़कर आगेकी आशासे तप करना चाहता है कदाचित् आगे भोग न प्राप्त हुए तो वह मानव मूर्ख व विवेक रहित ही कहा जायगा। हे सखियो! इसी बातकी दृष्टांतरूप एक रमणीक कथा है वह मैं कहती हूं, आप सब सावधान होकर सुनें।

पद्मश्रीकी कथा।

पद्मश्री धनदत्तकी कथा कहने लगी। एक धनदत्त नामका

किसान था। उसकी स्त्रीका नाम भी धनदत्ता था। उनका एक युवान पुत्र था जो गृहकार्यकी सम्हाल करनेमें समर्थ था। कर्मोंके उदयसे किसानकी स्त्रीका देहांत होगया। जैसे—किसीको स्वप्नमें लक्ष्मी मिले, आंख खोले तब जाती रहे।

फिर किसानने अपने बडे लड़केका विवाह कर दिया। परन्तु स्वयं कामातुर होकर साठ वर्षका होनेपर भी सोलह वर्षकी लड़कीके साथ विवाह कर लिया। एक रातको वह अपनी स्त्रीके साथ बैठा था। वह स्त्री यकायक क्रोध करके रूठ गई, मान करके बैठ गई। वह किसान मीठे वाक्योंको कहकर उसको मनाने लगा, खुशामदके भरे वचन कहने लगा—हे प्रिये! मेरी तरफ देख। और कहा—तेरे अकस्मात् क्रोध करनेका क्या कारण है? अपने पतिको अपने अनुकूल देखकर वह कहने लगी—तू मुझे स्पर्श न कर, तू मेरी बातको स्वीकार नहीं करता है, तूने अज्ञानसे मेरे प्रेमको खंडित कर दिया। नीतिका श्लोक है:—

"पानीयं च रसः शीतं परान्नं सादरं रसः।
रसो गुणयुता भार्या मित्रश्चान्तरो रसः" ॥ ३६ ॥

भावार्थ—पानी ठंडा तो रसयुक्त होता है, दूसरेके यहां भोजन आदर सहित मिले तो रसीला होता है, गुणवती स्त्री रसवती होती है, जिसके साथ कोई भेद न रक्खा जाय वही मित्र रसयुक्त होता है।

ऐसा सुनकर वह किसान कहने लगा—हे प्रिये! तू अपने मनकी बात कह। जब बहुत विनती करी तब वह पापका अभिप्राय

मनमें धारकर कहने लगी–तुम्हारा पुत्र बलवान है, इसको निश्चयसे मार डालना चाहिये। इस भयंकर बातको सुनकर किसान कांपने लगा और बोला–अरे! यह काम बड़ा दुष्ट है। मैं कैसे कर सक्ता हूं ? तू मुझे बता, उसके मारनेसे क्या भला होगा। विना किसी उद्देश्यके मन्द बुद्धि भी कोई काम नहीं करता है। वह स्त्री बड़ी चतुराईसे बात बनाकर कहने लगी–उसके मार डालनेसे बहुत भला होगा। सुनो–मेरे उदरसे जो पुत्र पैदा होंगे उन सबको इसका दासपना करना पड़ेगा। इसमें कोई संशय नहीं है। इसलिये इसका वध करना सर्वथा उचित है। हे स्वामी! इस कामको कर डालो।

इन वचनोंसे उसका मन कुछ विचलित हुआ। मनमें कुछ दया भी थी। किसानने कहा–मेरा पुत्र निरपराध है, उसका मैं कैसे वध कर सक्ता हूं। यही एक इस घरका सब बोझा ढोता है, सर्व घरका निर्वाह करता है। यदि मैं उसको मार डालूं तो राजा मुझको दंड देगा। सर्व बांधव भी मुझे दोषी कहेंगे। फिर वह दुष्ट चित्तधारिका भामिनी कहने लगी–इसका वध तो करना ही होगा, नहीं तो हम दोनोंको सुख नहीं होसक्ता। इसके मर जानेके बाद मेरे गर्भसे जो पुत्र पैदा होंगे वे बुढापेमें हमारी सेवा भले प्रकार करेंगे। मैं तुझे ऐसा उपाय भी बताती हूं जिससे उसका वध भी होजावे, न राजाका भय हो, न बांधव क्रोध करें।

खेतमें जाकर जब वह धीरे धीरे हल चलाता हो, तब तुम भी उसीके पीछे हल चलाना, उसमें कठोर सींगवाले मारनेवाले बैल जोड़ना,

मार कर जोरसे चलाना तब बैल सींग उसके शरीरमें भोंक देंगे, तुम भी पीछेसे मारना, वह मर जायगा। ऐसा करनेसे बैलका दोष होगा, न राजा तुमको दंड देगा, न बंधुजन तुम्हें दोषी बताएंगे। अपनी स्त्रीकी इस बातको कामसे अंधे किसानने मान ली। उसको संतोषित किया कि मैं ऐसा ही करूंगा, तब उसके साथ काम क्रीडा करने लगा। उसका पुत्र पासके ही घरमें सोता था। उसने उन दोनोंकी सब बातें सुन ली थीं। वह बड़े सबेरे ही उठकर खेतमें हल लेकर चला गया। पीछेसे वह किसान भी पुत्र बधके भावसे खेतमें पहुंचा। उसके पुत्रने धान्य पके हुए खेतमें हल चलाना प्रारम्भ किया, तब किसानने देखा कि धान्यका खेत पका खड़ा है यह उसको नाश कर रहा है। अपने पुत्रसे कहा—अरे! तू बड़ा मूर्ख है, तू इन पके धान्यको नाश क्यों कर रहा है? क्या तू बावला होगया है? सुनकर पुत्र कहने लगा कि यह धान्य खेत पुराना पड़ गया है, उसको उखाड़ कर नवीन धान्य बोऊंगा, जिससे आगे सुख होगा। इन वचनोंको सुनकर किसानने कहा—हे पुत्र! तेरी बुद्धि ठीक नहीं है, जो तू पके खेतको नाश करके नवीन खेतीकी इच्छा करता है। पिताके छलको जाननेवाला पुत्र कहने लगा—हे पिता! रात्रिको जो बात तुमने कही थी उसे स्मरण करो। तुम अपनी स्त्रीके साथ सुखभोग करनेके लिये मुझ समर्थ पुत्रको मारकर भावी पुत्रकी आशा करते हो, तुम्हारी बुद्धि कैसी हो गई है? पुत्रके वचन सुनकर पिताकी बुद्धि ठिकाने आगई। उसने खेद बताया व अपनी भूलको स्वीकार किया।

हे सखियो ! वह मूर्ख किसान तो समझ गया परन्तु हमारे स्वामी बड़े दुराग्रही हैं। इनको समझाना बड़ा कठिन है। हमारे स्वामी अज्ञानीके समान चेष्टा कर रहे हैं। वर्तमान स्वाधीन सम्पदाओंको छोड़कर आगेके लिये इच्छा करते हैं। आगे ऐसी संपत्ति मिले या न मिले सन्देहकी बात है।

यद्यपि जंबूस्वामी विरक्त थे तौभी बड़े बुद्धिमान थे। इस कथाको सुनकर संबोधनेके लिये उसी तरह धर्म कथा कहने लगे जैसे कोई योगी कहता है। मैं भी आप सबको सम्यग्ज्ञान देनेवाली एक कथा कहता हूं, सो सब ध्यान देकर सुनो।

जम्बूस्वामीकी कथा।

विंध्याचलके महावनमें एक हाथी मर गया। वर्षा बहुत हुई इससे वह फिर नर्मदा नदीमें बहने लगा। उस हाथीके मांसको एक काग खारहा था सो उसके मस्तकपर बैठा हुआ ही मांसका लोभी नदीमें आगया। काक सहित हाथीका कलेवर बहते बहते समुद्रमें पहुंच गया। तब समुद्रके मच्छादि जलचर जंतुओंने उस हाथीके कलेवरको शीघ्र ही भक्षण कर लिया। तब काक उड़ा। महासमुद्रमें इधर उधर उड़ते उड़ते चारों तरफ देखता है, न कहीं ग्राम है न वृक्ष है न पर्वत है, कोई स्थान विश्रामके लिये न दीख पड़ा। जब तक शक्ति रही तबतक उडता रहा। फिर उस समुद्रमें गिर पड़ा। मुखसे कांओ कांओ करता हुआ वह विचारा मर गया। जैसे इस मांस-लोलुपी काकको अकस्मात् विपत्ति आपड़ी, वैसे मैं

मार कर जोरसे चलाना तब बैल सींग उसके शरीरमें भोंक देंगे, तुम भी पीछेसे मारना, वह मर जायगा। ऐसा करनेसे बैलका दोष होगा, न राजा तुमको दंड देगा, न बंधुजन तुम्हें दोषी बनाएंगे। अपनी स्त्रीकी इस बातको कामसे अंधे किसानने मान ली। उसको संतोषित किया कि मैं ऐसा ही करूंगा, तब उसके साथ काम क्रीडा करने लगा। उसका पुत्र पासके ही घरमें सोता था। उसने उन दोनोंकी सब बातें सुन ली थीं। वह बड़े सवेरे ही उठकर खेतमें हल लेकर चला गया। पीछेसे वह किसान भी पुत्र बधके भावसे खेतमें पहुंचा। उसके पुत्रने धान्य पके हुए खेतमें हल चलाना प्रारम्भ किया, तब किसानने देखा कि धान्यका खेत पका खड़ा है यह उसको नाश कर रहा है। अपने पुत्रसे कहा— अरे! तू बड़ा मूर्ख है, तू इन पके धान्यको नाश क्यों कर रहा है? क्या तू बावला होगया है? सुनकर पुत्र कहने लगा कि यह धान्य खेत पुराना पड़ गया है, उसको उखाड़ कर नवीन धान्य बोऊंगा, जिससे आगे सुख होगा। इन वचनोंको सुनकर किसानने कहा— हे पुत्र! तेरी बुद्धि ठीक नहीं है, जो तू पके खेतको नाश करके नवीन खेतीकी इच्छा करता है। पिताके छलको जाननेवाला पुत्र कहने लगा—हे पिता! रात्रिको जो बात तुमने कही थी उसे स्मरण करो। तुम अपनी स्त्रीके साथ सुखभोग करनेके लिये मुझ समर्थ पुत्रको मारकर भावी पुत्रकी आशा करते हो, तुम्हारी बुद्धि कैसी हो गई है? पुत्रके वचन सुनकर पिताकी बुद्धि ठिकाने आगई। उसने खेद बताया व अपनी भूलको स्वीकार किया।

हे सखियो ! वह मूर्ख किसान तो समझ गया परन्तु हमारे स्वामी बड़े दुराग्रही हैं। इनको समझाना बड़ा कठिन है। हमारे स्वामी अज्ञानीके समान चेष्टा कर रहे हैं। वर्तमान स्वाधीन सम्पदाओंको छोड़कर आगेके लिये इच्छा करते हैं। आगे ऐसी संपत्ति मिले या न मिले सन्देहकी बात है।

यद्यपि जंबूस्वामी विरक्त थे तौभी बड़े बुद्धिमान थे। इस कथाको सुनकर संबोधनेके लिये उसी तरह धर्म कथा कहने लगे जैसे कोई योगी कहता है। मैं भी आप सबको सम्यग्ज्ञान देनेवाली एक कथा कहता हूं, सो सब ध्यान देकर सुनो।

जम्बूस्वामीकी कथा।

विंध्याचलके महावनमें एक हाथी मर गया। वर्षा बहुत हुई इससे वह फिर नर्मदा नदीमें बहने लगा। उस हाथीके मांसको एक काग खारहा था सो उसके मस्तकपर बैठा हुआ ही मांसका लोभी नदीमें आगया। काक सहित हाथीका कलेवर बहते बहते समुद्रमें पहुंच गया। तब समुद्रके मच्छादि जलचर जंतुओंने उस हाथीके कलेवरको शीघ्र ही भक्षण कर लिया। तब काक उड़ा। महासमुद्रमें इधर उधर उड़ते उड़ते चारों तरफ देखता है, न कहीं ग्राम है न वृक्ष है न पर्वत है, कोई स्थान विश्रामके लिये न दीख पड़ा। जब तक शक्ति रही तबतक उडता रहा। फिर उस समुद्रमें गिर पड़ा। मुखसे कांओ कांओ करता हुआ वह विचारा मर गया। जैसे इस मांस-लोलुपी काकको अकस्मात् विपत्ति आपड़ी, वैसे मैं

हे स्त्रियो ! वही विपत्तिमें पड़ना चाहता हूं। यदि मैं तुमसे संसर्ग करके भोग भोगूं, और मोहसे कर्म बांधूं—जब कर्मोंका उदय होगा और मैं भवसागरमें डूबूंगा तब मुझे कौन उद्धार करेगा ?

इस दृष्टांतसे पद्मश्रीकी कथाका खण्डन होगया।

कनकश्रीकी कथा।

तब कनकश्री कौतूहलसे पूर्ण कथा कहने लगी—रमणीक कैलाश पर एक बन्दर रहता था। एक दिन वह पर्वतकी चोटीपर चढ़ गया। यकायक वह गिर गया। शरीरके खण्ड खण्ड होगए। शांत भावसे अकाम निर्जरासे मरकर एक विद्याधरका पुत्र हुआ। एक दफे बड़ी आयु पानेपर विद्याधरने मुनि महाराजसे नमन करके अपना पूर्व भव पूछा। मुनि महाराजने अवधिज्ञान नेत्रसे देखकर कह दिया कि पूर्व जन्ममें तुम बन्दर थे। कैलाशसे गिरकर पुण्यके फलसे विद्याधर हुए हो। इस बातको सुनकर विद्याधरने कुमति ज्ञानसे यह मनमें निश्चय कर लिया कि जिस स्थानसे मरकर मैं कपिसे विद्याधर हुआ हूं, उसी स्थानसे गिरकर यदि मैं फिर मरूंगा तो अवश्य देव हो जाऊंगा। इसलिये मुझे अवश्य जाकर कैलाशके शिखरसे गिरकर मरना चाहिये। एक दिन विद्याधरने अपनी स्त्रीसे अपने मनकी बात कही कि हे प्रिये ! कैलाशके शिखरसे गिरकर मरनेसे स्वर्ग मोक्षके फल मिलते हैं, इससे मैं कैलाशसे पडूंगा। उसकी स्त्री सुनकर दीनमन हो दुःखित होकर रुदन करने लगी व कहने लगी—हे स्वामी ! आप बड़े बुद्धिमान

हैं, आप क्यों मरण चाहते हैं, आप तो विद्याधर हैं, आपको किस बातकी कमी है? उस मूर्खने स्त्रीकी बातपर ध्यान नहीं दिया—जाकर कैलाशके शिखरसे पड़ा तो आर्तध्यानसे मरकर फिर वही लाल मुखका बन्दर पैदा होगया। हे सखियो! जैसे मूर्ख विद्याधरने स्वाधीन सम्पदाको छोड़कर मरण करके पशु पर्याय पाई वैसे हमारे स्वामीका व्यवहार है। महारमणीक सर्व संपदाओंको छोड़कर आगेकी वांछासे तप करने जाते हैं, फिर ये संपदाएं मिले या न मिले, क्या भरोसा है।

जम्बूस्वामीकी कथा।

जम्बूस्वामी कनकश्रीकी कथाको सुनकर उसको उत्तर देनेके लिये एक कथा कहने लगे। विन्ध्याचल पर्वतपर एक बलवान कोई बंदर था। वह बड़ा कामी था। वह वनके बंदरोंको मार डालता था। ईर्षावान भी बहुत था। अपनी बंदरीसे जो बच्चे होते थे उनको भी मार डालता था। अकेला ही काम क्रीड़ा करते हुए तृप्त नहीं होता था। एक दफे उसीका एक बंदर पुत्र हुआ, वह उसके जाननेमें न आया। किसी तरह बच गया। जब वह पुत्र युवान हुआ, तब कामातुर होकर अपनी माताको स्त्री मानकर रमण करनेको उद्यत हुआ। तब उसके पिता बंदरने देख लिया और उसके मारनेको क्रोध करके दौड़ा। उस युवान बंदरने पिताको दांतोंसे व नाखूनोंसे काटा। दोनों पितापुत्र बहुत देरतक परस्पर नख व दांतोंसे काटकाटकर युद्ध करने लगे। घबड़ाकर बूढ़ा बंदर भाग निकला

तब युवान बंदरने उसका पीछा किया। जब वह बहुत दूर निकल गया तब युवान बंदर लौट आया। वृद्ध बंदरको बहुत प्यास लगी। वह पानी पीनेको कीच सहित पानीमें घुसा। मैले पानीको पी लिया। परन्तु कीचड़में ऐसा फंस गया कि निकल न सका। मूर्ख विषयवासनासे आतुर होता हुआ मर गया। हे प्रिये! मैं इस बंदरके समान इस संसारमें विषयोंके भीतर यदि फंस जाऊं तो मुझे कौन उद्धार करेगा? जंबूस्वामीके इस उत्तरके बलसे कनकश्री मुरझा गई, तब कथा कहनेमें चतुर तीसरी विनयश्री बोली—

विनयश्रीकी कथा।

एक कोई दरिद्री पुरुष था, जिसका नाम संख था। वह रोज सवेरे बनमें लकड़ी काटने जाया करता था। ईंधन लाकर विक्रय करके बड़े कष्टसे असाताके उदयसे पेट पालता था। एक दफे लकड़ीका दाम बाजारमें अधिक मिला। तब भोजनमें खर्च करनेके पीछे एक रुपया बच गया। तब अपनी स्त्रीके साथ सम्मति करके उस रुपयेको भूमिमें गाड़ दिया कि कभी आपत्ति पड़ेगी तो वह काम आयगा। कुछ दिन पीछे एक प्रवासी यात्री उसी बनमें आया। वहां उसने अपना रत्नोंका पिटारा गाड़ दिया और तीर्थ-यात्रादिके लिये चला गया। उस दलिद्री संखने उसे गाड़ते देख लिया था। जब वह प्रवासी चला गया तब संखने उस रत्नभांडको लोभसे दूसरी जगह गाड़ दिया। और मनमें विचारने लगा कि इसमेंसे जब चाहूंगा एक एक रत्न निकालता रहूंगा। घरमें आकर

अपनी स्त्रीसे सर्व हाल कहा कि पुण्यके उदयसे एक रत्नोंका पिटारा मुझे मिल गया। मैंने उसे यत्नपूर्वक गाड़ दिया है। हे प्रिये! यह बात सच है, मैं झूठ नहीं कहता हूं।

इस बातको सुनकर स्त्रीको आश्चर्य हुआ, तो भी हर्षसे फूल गई। हे भद्र! बहुत अच्छा हुआ, तुम चिरकालतक जीओ। मेरी सलाह और मानो। जो एक रुपया तुमने एकत्र किया है उसको भी उस रत्नभांडमें कुशलतासे घर दो। हम तुम दोनों अपना नित्य कर्म बराबर करते रहें। मोहके कारण स्त्रीके वचनोंको दरिद्रीने मान लिया कि तूने ठीक कहा—दरिद्रीने वैसा ही किया। दोनों ही जने वनसे काष्ठ ले जाते थे और विक्रय करके पेट भरते थे। कुछ दिनोंके बाद रत्नभांडका स्वामी पीछे उसी वनमें आया। अपने रत्नभांडको जहां रक्खा था वहां न पाकर इधर उधर भूमि खोदकर ढूंढ़ने लगा। बहुत देरके परिश्रमके बाद पुण्यके योगसे उसको वह रत्न पिटारा मिल गया। उसको लेकर वह आनन्दसे अपने घर चला गया। पुण्यके बलसे चंचला लक्ष्मी गई हुई भी सुखसे मिल जाती है। उस दरिद्रीने एक घड़ेके भीतर रत्न पिटारी रखकर रुपया रख दिया था। एक दिन वह वहां आकर खोदता है तो घड़ेको खाली पाता है। रत्न पिटारा भी गया व एक रुपया भी गया। वह मूर्ख हावभाव करके सिरको पीट पीटकर रोने लगा। हा! रत्न पिटारेके साथ मेरा पहला संचय किया हुआ रुपया भी चला गया। हा! पापके उदयसे मैं ठगा गया। मैंने प्राप्त धनको

न भोगमें लगाया न दानमें लगाया। जिसके स्वाधीन लक्ष्मी हो फिर भी वह उसका भोग न करे तो वह पीछे उसी तरह पछताएगा जैसे संख दरिद्रीको पछताना पड़ा।

जम्बूस्वामीकी कथा।

विनयश्रीकी कथा सुनकर जम्बूस्वामीने फिर एक कथाके बहाने उत्तर दिया। लब्धदत्त नामका एक बनिया था। व्यापारके लिये बाहर गया था, सो मार्गमें एक भयानक वनमें आ पड़ा। पापके उदयसे उसके पीछे एक भयानक हाथी क्रोधित हो उसको मारनेको दौड़ा। उससे भयभीत होकर वह बनिया भागा और यकायक एक कूपके ऊपर वटवृक्षकी शाखा पकड़कर लटक गया। उस शाखाकी जड़को दो चूहे एक सफेद एक काले काट रहे थे। वणिक देखकर विचारने लगा कि क्या किया जाय। यह शाखा कटी कि कूपके भीतर अवश्य गिर जाऊँगा, शरीरके शतखण्ड हो जांयगे। ऐसा विचारते हुए नीचे देखा तो कूपमें एक बड़ा अजगर बैठा हुआ है, देखकर कांपने लगा। फिर देखा तो चारों कोनोंसे निकले हुए भयानक सांप कूपमें बैठे हैं। उस समय उस वणिकको जो संकट हुआ वह कहा नहीं जा सक्ता। हाथी क्रोधमें होकर उस वटवृक्षको अपने कन्धेसे उखाड़नेका उद्यम करने लगा व ध्वनि करने लगा। जहां वह वणिक लटक रहा था उसके ऊपर एक मधु मक्खियोंका छत्ता था। यकायक मधुकी बूँद उस वणिकके मुखमें आपड़ी। उस बूँदके स्वादसे वह बड़ा राजी होगया।

इतनेहीमें एक विद्याधर आकाश मार्गसे जारहे थे उसने वणिकको कूपके ऊपर लटकते देखकर वह विमानसे उतरा और बोला—हे मूढ़! मैं विद्याधर हूँ, मैं तुझे निकाल सक्ता हूँ। मेरी भुजाको पकड़, तू निकल जा, संकटसे बच जा। सुनकर वह मधुके रसके स्वादका लोलुपी कहने लगा—थोड़ी देर ठहर जाओ, जबतक एक मधुकी बूँद मेरे मुखमें और न आजावे। दयावान विद्याधरने फिर भी कहा कि रे मूढ़! तेरा मरण निकट है, बिंदु मात्रके लोभसे कूपमें प्राण न गमा। तू हलाहल विष खाकर जीना चाहता है सो ठीक नहीं है। मेरी भुजा पकड़, देर न कर। इस तरह बहुत वार समझाया परन्तु वह रसना इन्द्रियके लोभवश नहीं समझा। विद्याधरने उसे मूर्ख समझा और वह अपने मार्गसे चला गया। थोड़ी देरमें मूषकोंके द्वारा शाखा कटनेसे वह कूपमें गिर पड़ा और अजगरने उसे भक्षण कर लिया। जिस तरह लब्धदत्त वणिक मधु-बिंदुके लोभसे काल ग्रसित हुआ वैसे मैं इस तुच्छ विषयसुखके लिये महा भयानक कालके मुखमें प्रवेश करना नहीं चाहता हूं।

विनयश्री स्वामीसे वचन सुनकर मूढ़तारहित होगई।

अब चौथी स्त्री रूपश्री कथा कहने लगी—

नियश्रीकी कथा।

एक दफे मनोहर वर्षाकाल आगया। मेघ छा गए। पानीकी वर्षासे तलैया तलाव भर गए, बिजली चमकने लगी। मार्गमें कीचड़से आना जाना कठिन होगया। दिनमें अन्धकार छागया।

ऐसे समयमें एक कृकलास (किरला) भूखी होकर अपने बिलसे निकली। वह घूमती थी। उसने एक काले भयानक दंदशूक सर्पको देखा। ऐसे भयानक कालस्वरूप सर्पको देखकर वह भयसे चिंतातुर हो भागी और नदीमें एक नकुलके बिलमें चली गई। वह सर्प भी उसीके पीछे पीछे उसी बिलमें घुस गया। वहां सर्पने उसको तो छोड़ दिया। और बिलके भीतर बहुत इसका कुटुम्ब मिलेगा उसको पकडूंगा इस आशासे चला गया। नकुलोंने सर्पको देखकर क्षुधासे आतुर हो उसे मारडाला और खा लिया।

जैसे इस सर्पकी दशा हुई वैसे हमारे स्वामी विवेक रहित हैं जो सामने पड़ी लक्ष्मीको छोड़कर आगेकी आशा करके पथभ्रष्ट हो रहे हैं। रूपश्रीकी कथा सुनकर जम्बूकुमार उसे समझानेके लिये एक सुंदर कथा कहने लगे—

जम्बूकुमारकी कथा।

इस पृथ्वीपर एक शृगाल था। रातको वह नगरके भीतर गया, वहां एक बूढे बैलको मरा हुआ देखकर प्रसन्न होगया कि अब मेरे मनका मनोरथ सिद्ध होगा, वह शृगाल उस बैलके हाड़पिंजरके भीतर घुस गया। मांसको खाते खाते तृप्त नहीं हुआ। इतनेमें रात चली गई। सबेरा होगया तब नगरके लोगोंने उस शृगालको देख लिया, वह उस अस्थिके पंजरसे निकलकर भाग न सका, चित्तमें व्याकुल होगया कि आज मेरा मरण अवश्य होगा। इतनेमें किसी नागरिकने शृगालके दोनों कान व उसकी पूंछ किसी औषधि बनानेके

लिये फाट ली। फिर वह विचारने लगा कि इसतरह भी जीता बचे तो ठीक है, अभी तो कुछ बिगड़ा नहीं है। इतनेमें किसीने पत्थर लेकर उसके दांत तोड़कर निकाल लिये कि इनसे घर जाकर वशीकरण मंत्र सिद्ध करूंगा। तब भी शृगाल विचारने लगा कि इसी तरह जान बचे तो वनमें भाग जाऊं। इतनेमें कुत्तोंने आकर क्षणमात्रमें मार डाला। रसना इन्द्रियके वश वह शृगाल जैसे मारा गया व कुत्तोंसे खाया गया वैसे मैं विषयोंके मोहमें अंधा होकर नष्ट होना नहीं चाहता हूं। कौन बुद्धिमान जान बूझकर कुमार्गमें पड़ेगा। यदि मैं इन्द्रियोंके विषयोंके वशमें निर्बल होकर फंस जाऊं तो फिर मेरा कौन उद्धार करेगा? हे प्रिये! तुम्हारे वचन परीक्षा में उचित नहीं बैठते हैं।

इसतरह उन चारों महिलाओंकी नाना प्रकारकी वार्तालापोंसे महात्मा कुमारका मन किंचित् भी शिथिल नहीं हुआ।

विद्युच्चरका आगमन।

इधर कुमारके साथ स्त्रियां वार्तालाप कर रही थीं, उधर उस रात्रिको विद्युच्चर नामका एक चोर कामलता वेश्याके घरसे चोरी करनेको निकला। कोतवालसे अपनी रक्षा करता हुआ वह चोर उस रातको अर्हद्दास सेठके घर चोरी करनेको आया। जहां कुमारका शयनालय था वहांपर आगया। कुमारका अपनी स्त्रियोंसे जो वार्तालाप होरहा था उसको सुनकर विचारने लगा कि पहले इस कौतुकको देखूं कि रत्नोंको चुराऊं? सुननेकी दृढ़ आकांक्षा होगई।

यही निश्चय कर लिया कि पहले सब सुनना चाहिये फिर धनको चुराऊंगा। वह ध्यानसे उनकी वार्ताको सुनने लगा। वर व कन्याओंकी कथाओंको सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगा कि कुमारके धैर्यकी महिमा कौन कह सक्ता है। इन वधुओंने किंचित भी कुमारके मनको नहीं डिगाया। उधर जंबूकुमारकी माता घबड़ाई हुई मकानमें इधर उधर फिर रही थी। बारबार कुमारके शयनालयके द्वारपर आकर देखती थी कि इन स्त्रियोंके मोहमें कुमार आया कि नहीं।

यकायक भीतके पास खड़े हुए चोरको देखकर भयभीत हो बोली—यह कौन है? तब विद्युच्चरने कहा कि माता! घबड़ा नहीं, मैं प्रसिद्ध विद्युच्चर नामका चोर हूं। मैं तेरे नगरमें नित्य चोरी किया करता हूं। अबतक मैंने बहुतोंका धन चुराया है। तेरे घरसे भी सुवर्णरत्न चुराये हैं। और क्या कहूं। इसीलिये आज भी आया हूं। कुमारकी माता कहने लगी—हे वत्स! तुझे जो चाहिये सो मेरे घरसे ले जा। तब विद्युच्चरने जिनमतीसे कहा—हे माता! मुझे आज धन लेनेकी चिंता नहीं है, किंतु मैं बहुत देरसे यह अपूर्व कौतुक देख रहा हूं कि युवती स्त्रियोंके कटाक्षोंसे इस युवानका मन किंचित् भी विचलित नहीं हुआ है। हे माता! इसका कारण क्या है सो कह। अब तू मेरी धर्मकी बहन है, मैं तेरा भाई हूं। तब जिनमती धैर्य धारकर कहने लगी—एक ही मेरा यह कुलदीपक पुत्र है। मैंने मोहसे इसका आज विवाह कर दिया है। परन्तु यह

विरक्त है व तप लेना चाहता है। सूर्यके उदय होते ही वह नियमसे तप ग्रहण करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। उसके वियोगरूपी कुठारसे मेरे मनके सैकड़ों खंड होरहे हैं। इसीलिये मैं घबड़ाई हुई हूं और वारवार इस घरके द्वारपर आकर देखती हूं कि कदाचित् पुत्रका संगम अपनी वधुओंके साथ होजावे।

जिनमतीके वचन सुनकर विद्युच्चरके मनमें दया पैदा होगई, कहने लगा—हे माता! मैंने सब हाल जान लिया। तू भय न कर, मुझसे इस कार्यमें जो हो सकेगा मैं करूंगा। तू मुझे जिस तरह बने कुमारके पास शीघ्र पहुंचा दे। मैं मोहन, स्तंभन, वशीकरण मंत्र तंत्र सब जानता हूं। उन सबसे मैं प्रयत्न करूंगा। आज यदि मैं तेरे पुत्रका संगम वधुओंसे न करा सकूंगा तो मेरी यह प्रतिज्ञा है, जो उसकी गति होगी वह मेरी गति होगी। ऐसी प्रतिज्ञा करके यह विद्युच्चर बाहर खड़ा रहा। माताने धीरे२ द्वार खटखटाया। हाथकी अंगुलीसे द्वारपर थपकी दी, परन्तु लज्जावश मुखसे कुछ नहीं बोली। कुमारने शीघ्र किवाड़ खोल दिये। कुमारने नमन किया, माताने आशीर्वाद दिया।

तब जंबूकुमारने विनयसे पूछा—हे माता! यहां इस समय आनेका क्या कारण है? तब जिनमती कहने लगी कि जब तुम गर्भमें थे तब मेरा भाई—तुम्हारा मामा वाणिज्यके लिये परदेश गया था। आज वह तेरे विवाहका उत्सव सुनकर यहां आया है—तुम्हारे दर्शनकी बड़ी इच्छा है, वह बहुत दूरसे पधारा है। जिनमतीके वचन

सुनकर कुमारने कहा कि मेरे मामाको शीघ्र यहां बुलाओ। पुत्रकी आज्ञा होनेपर माता शीघ्र विद्युच्चरको जंबूकुमारके पास ले गई। जम्बूकुमार मामाको देखकर पलंगसे उठे और आदर सहित स्नेह पूर्ण हो गले मिले। स्वामीने पूछा-इतने दिन कहां २ गए थे, मार्गमें सब कुशल रही ना?

सुनकर विद्युच्चरने भानजेकी बुद्धिसे कहा कि हे सौम्य! सुन, मैंने इतने दिन कहां कहां व्यापार किया।

दक्षिण दिशामें समुद्र तक गया हूं चंदनके वृक्षोंसे पूर्ण ऊंचे मलयागिर पर, सिंहलद्वीपमें (वर्तमान सीलोन) केरलदेशमें, मंदिरोंसे पूर्ण व जैनोंसे भरे हुए द्राविड़देश (तामीलमें), चीणमें, कर्णाटकमें, काम्बोजमें, अति मनोहर बांकीपुरमें, कौंतलदेशमें होकर उन्नत सह्य पर्वतके वहां आया। फिर महाराष्ट्र देशमें गया। वहांसे अनेक वनोंसे शोभित वैदर्भदेश बरारमें गया। फिर नर्मदा नदीके तटपर विंध्य पर्वतके वहां पहुंचा। विंध्याचलके वनोंको लांघकर आगे आहीर देशमें, चउलदेशमें, भृगुकच्छ (भरोंच)के तटपर आया। वहां धवल सेठका पुत्र श्रीपाल राजा राज्य करता है। कोंकणनगरमें होकर किष्किंध्य नगरमें आया। इत्यादि बहुतसे नगर देखे, फिर पश्चिममें जाकर सौराष्ट्र देश (काठियावाड़) देखा। श्री गिरनार पर्वत पर आया। श्री नेमिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणकोंके स्थान व वह स्थान देखा जहां श्री नेमनाथने राजीमतीको छोड़कर तप किया था। उसी गिरनार पर्वतसे यदुवंश शिरोमणि नेमनाथ मोक्ष प्राप्त हुए हैं।

भिल्लमाल विशाल देशमें गया। अर्बुदाचल (आबू) पर प्राप्त हुआ। महा रमणीक संपत्ति पूर्ण लाट देशको देखा। चित्रकूट पर्वत होकर मालवादेशमें गया। इस अवंतीदेशके जिन मंदिरोंकी महिमा क्या वर्णन करूं। फिर उत्तर दिशामें गया। शाकंभरी पुरी गया, जो जिन मंदिरोंसे पूर्ण है व मुनियोंसे शोभित है। काश्मीर, कंधार, सिंधुदेश आदिमें होकर मैं व्यापार करता हुआ पूर्वदेशमें आया। कनौज, गौड़देश, अंग, बंग, कलिंग, जालंधर, बनारस व कामरूप (आसाम)को देखा। जो जो मैंने देखा मैं कहांतक कहूं।

इस तरह परम विवेकी जंबूकुमार स्वामी जगतपूज्य जयवंत हो जो विरक्तचित्त हो पर पदार्थके ग्रहणसे उदास हो स्त्रियोंके मध्यमें बैठे चोरकी बात सुन रहे हैं।

दशवां अध्याय ।

जंबूस्वामी विद्युच्चर वार्तालाप ।

(श्लोक १५९ का सारांश ।)

मोहरूपी महायोद्धाको जीतनेवाले मल्लिनाथकी तथा सुव्रतोंको बतानेवाले मुनिसुव्रत तीर्थंकरकी स्तुति करता हूं ।

विद्युच्चरका समझाना व कथा कहना ।

अब विद्युच्चर मामाके रूपमें श्री जंबूकुमार स्वामीको कोमल वचनोंसे समझाता हुआ कहने लगा—हे कुमार ! तुम बड़े भाग्यवान हो, ऐश्वर्यवान हो, कामदेवके समान तुम्हारा रूप है । वज्रधारी इन्द्रके समान बलवान हो, चंद्रमाकी किरण समान यशस्वी व शांत हो, मेरु पर्वतके समान धीरवीर हो, समुद्रके समान गंभीर हो, सूर्यके समान तेजस्वी हो, कमलपत्रके समान नम्र स्वभावधारी हो, शरणागतकी रक्षा करनेको बलवान हो । जो जगतमें दुर्लभ भोग सामग्री है सो पूर्व बांधे हुए पुण्यके उदयसे तुमने प्राप्त की है । किनही को दुर्लभ वस्तु मिल जाती है, परन्तु वे भोग नहीं कर सक्ते हैं, जैसे भोजन सामने होनेपर भी रोगी खा नहीं सक्ता । किसीको भोजनकी शक्ति तो है, परन्तु भोगादि सामग्री नहीं मिलती है । जिसके पास मनोज्ञ भोग सामग्री भी हो व भोगनेकी शक्ति भी हो, फिर भी वह भोग न करे तो उसको यही कहा जायगा कि वह दैवसे

ठगा गया है। जैसे किसीके पास स्त्रियां हों, परन्तु उसके काम-भोगका उत्साह न हो। या किसीको काम-भोगका उत्साह हो, परन्तु स्त्रियां न हों। किसीको दान करनेका उत्साह तो है परन्तु घरमें द्रव्य नहीं है। किसीके घरमें द्रव्य है परन्तु दान करनेका उत्साह नहीं है। दोनों बातोंको पुण्यके उदयसे पाकर जो नहीं भोगता है उसे मूर्ख ही कहना चाहिये। मूर्ख मानव खरगोशके सींगको व वंध्याके पुत्रको मारना चाहता है सो उसकी मूर्खता है। जिसके लिये चतुर पुरुष तप करनेका क्लेश करते हैं। वह सब सर्वांग पूर्ण सुख तेरे सामने उपस्थित है, उसको छोड़कर और अधिककी इच्छासे जो तुम तप करना चाहते हो सो यह तुम्हारा विचार उचित नहीं है। दृष्टांतरूपमें मैं एक कथा कहता हूं। सो हे भागिनेय ! ध्यानसे सुन—

एक युवान ऊंट था, वह वनमें इच्छानुसार बहुतसे वृक्षोंको खाता फिरता था। एक दिन वह एक वृक्षके पास आया जो कूपके पास था। उसके पत्तोंको गलेको ऊँचा करके खाने लगा। उसके स्वादिष्ट पत्तोंको खाते खाते उसके मुखमें एक मधुकी बूंद पड़ गई। मधुके रसका स्वादका लोभी हो वह विचारने लगा कि इस वृक्षकी सबसे ऊँची शाखाको पकड़नेसे बहुत अधिक मधुका लाभ होगा। मधुका प्यासा होकर ऊपरकी शाखापर वारवार गलेको उठाने लगा तो पग उठ गए, यकायक वह विचारा कूपमें गिर पड़ा। उसके सब अङ्ग टूट गए। जैसे महा लोभके कारण इस ऊँटकी दशा

हुई; वैसे ही तुम्हारी दशा होगी, जो तुम अज्ञानसे मोहित होकर प्राप्त संपदाको छोड़कर आगेके भोगोंके लाभके लिये तप करना चाहते हो।

जम्बूस्वामीकी कथा।

तब जम्बूस्वामी कहने लगे कि हे मामा! आपके कथनके उत्तरमें मेरी कथा भी सुनो—

एक वणिक पुत्र घरके कार्यमें लीन था। एक दिन व्यापारके लिये स्वयं परदेश गया। मार्ग भूलकर वह एक भयानक वनमें फंस गया। प्यास भी बहुत लगी। पानी न पाकर पश्चाताप करने लगा कि मैं घरसे वृथा ही आकर इस वनके भीतर फंस गया। यदि जल न मिला तो प्याससे मेरा मरण अवश्य होजायगा। ऐसा विचार करते हुए बैठा था कि चोरोंने आकर उसका माल लूट लिया। धनकी हानिके शोकसे व प्याससे पीड़ित होकर वह एक पग भी चल न सका। एक वृक्षके नीचे सोगया, वहां सोते हुए उसने एक स्वप्न देखा कि वनमें एक सरोवर है, उसका पानी मैं पीरहा हूं, जिह्वासे पानीका स्वाद लेरहा हूं। इतनेमें जाग उठा तो देखता है कि न कहीं सरोवर है, न कहीं जल है। हे मामा! स्वप्नके समान सब सम्पदाओंको जानो। यकायक मरण आता है, सब छूट जाता है। ऐसे स्वप्नके समान क्षणभंगुर भोगोंमें महान् पुरुषोंका स्नेह कैसे होसक्ता है?

विद्युच्चरकी कथा।

कुमारकी कथाको सुनकर वास्तवमें वह उसी तरह निरुत्तर होगया जैसे एकांत मतवादी स्याद्वादीके सामने निरुत्तर होजाते हैं। फिर भी वह विद्युच्चर दूसरी कथा कहकर उद्यम करने लगा।

एक कोई वृद्ध बनिया था, वह अपनी स्त्रीसे प्रेम करता था परन्तु उसकी स्त्री नवयौवन व्यभिचारिणी व दुष्टा थी। एक दिन वह घरसे सुवर्णादि लेकर निकल गई। वह काम–लंपटी इच्छानुसार भोगोंमें रत होना चाहती थी। जाते हुए किसी धूर्त ठगने देख लिया, देखकर उसको मीठे वचनोंसे रिझाने लगा।

हे सुंदरी! तुझे देखकर मेरे मनमें स्नेह पैदा होगया है कि न जाने क्या कारण है। जन्मांतरका तेरे साथ स्नेह है ऐसा विदित होता है। वह कहने लगी कि यदि तेरे मनमें मेरी तरफ प्रेम है तो आजसे तुमही मेरे भर्तार हो, दूसरा नहीं है। इस तरह परस्पर स्नेहवान हो वे पति पत्नीके समान रहने लगे, इच्छानुसार कामक्रीडा करने लगे। इस तरह दोनोंका बहुतसा काल वीत गया। एक दिन वह दूसरे कामी पुरुषके साथ स्नेहवर्ती होगई, वह निर्लज्ज घृणा रहित माया व मिथ्या भावसे भरी हुई कामभावसे जलती हुई दोनों हीके साथ रतिकर्म करने लगी। वास्तवमें स्त्रियोंके मनमें कुछ और होता है, वचन कुछ कहती हैं। पण्डितोंको कभी भी स्त्रियोंका विश्वास न करना चाहिये।

एक दिन दुष्टबुद्धिधारी प्रथम जार पुरुष दूसरे पुरुषका आना

जानकर विचारने लगा कि किसीतरह स्त्रीसे उसका पिंड छुड़ाना चाहिये।

उसने जाकर कोतवालसे कहा—कि रात्रिको कोई आकर मेरी स्त्रीके साथ रमण करता है, उसे रात्रिको आकर पकड़ ले तो तुझे सुवर्णका लाभ होगा। ऐसा कह कर वह घर आगया। रात्रि होने पर पहला पति जागता हुआ ही सो गया कि मैं इस स्त्रीके खोटे चारित्रको देखूं। इतनेमें रात्रिको दूसरा जार पति आगया तब वह व्यभिचारिणी पहले पतिके पाससे उठ कर दूसरेके पास चली गई। जब वह दूसरा जार कामातुर हो स्त्रीभोग करनेको ही था कि कोतवाल उसके पकडनेको आगया। कोलाहल होने पर वह दुष्टा पहले जारके साथ आके सोगई। रुद्र स्वभावधारी सिपाहियोंने कहा कि यहां वह जार चोर कहां है। इतनेमें दूसरा जारपति बोल उठा कि मैं तो निन्द्रामें था, मैं नहीं जानता हूं। इधर उधर देखते हुए व स्त्रीके साथ पूर्वपतिको देखकर पूर्वपतिको पकड़ लिया कि यही वह जार है, तथा यही वह स्त्री है। जिसने पकड़ाना चाहा था वही पकड़ा गया। सिपाहियोंने मारते मारते बड़ी निर्दयतासे उसे कोतवालीमें पहुंचाया।

इस बातको देखकर वह स्त्री डरी, कदाचित् मुझे भी सिपाही पकड़ लें। इसलिये उसने भागना निश्चय किया तब उसने दूसरे जारको समझा दिया कि हम दोनों मिलकर यहांसे निकल चलें। उस स्त्रीने घरके वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य वस्तु ले ली और जारके साथ घरसे निकली।

मार्गमें गहरी नदी मिली। तब यह दूसरा जार मायाचारसे

ठगनेके लिये बोला कि हे प्रिये ! वस्त्राभूषणादि सब मुझे दे दे, मैं पहले पार जाकर एक स्थानमें इनको रखकर पीछे आकर तुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर भले प्रकार पार उतार दूंगा। स्वयं वह धूर्त थी ही, उसने उस धूर्तका विश्वास कर लिया। उसने पति जानकर अपने सब गहने कपड़े उतार कर दे दिये। आप नग्न होकर इस तटपर बैठी रही। वह दुष्ट ठग नदी पार करके लौट कर नहीं आया। यह अकेली यहां बैठी रही, तब स्त्रीने कहा—हे धूर्त ! तू लौट कर आ। मुझे छोड़कर चला गया ? उस ठगने कहा कि तू बड़ी पापिनी है। वहीं बैठी रह। इतनेमें एक शृगाल आगया। जिसके मुखमें मांसपिंड था, पूछ ऊंची थी। उस शृगालने पानीमें उछलते हुए एक मछलीको देखा। तब वह अपने मुखके मांसको पटककर महा लोभसे मछलीके पकड़नेको दौडा। इतनेमें वह खूब गहरे पानीमें चला गया, तब वह लोभी स्यार उसी मांसको लेकर दूसरे वनमें भाग गया, वह स्त्री ऐसा देखकर हंसी कि स्यारको मछली नहीं मिली। उसने विना विचारे काम किया। स्वाधीन मांसको छोडकर पराधीन मांस लेनेकी इच्छा की। वह धूर्त चोर भी दूसरे पारसे कहने लगा—हे मूर्खे ! तूने क्या किया, तू अपनेको देख। यह पशु तो अज्ञानी है, हित अहितको नहीं जानता है, तू कैसी अज्ञानी है कि अपने पतिको मारकर दूसरेके साथ रति करने लगी।

इतना कहकर वह धूर्त ठग अपने घर चला गया तब वह स्त्री लज्जाके मारे नीचा मुख करके बैठ रही।

हे भागिनेय! तुम अपने पासकी लक्ष्मीको छोडकर आगेकी इच्छाको करके मत जाओ नहीं तो हास्यके पात्र होंगे।

जम्बूकुमारकी कथा।

तब फिर जंबूकुमार अपने दांतोंकी कांतिको चमकाते हुए कहने लगे—

एक व्यापारी जहाजका काम करता था। एक दिन जहाज-पर चढकर वह दूसरे द्वीपमें गया। वहां सर्व माल वेचकर एक रतन खरीद लिया। तब वह बनिया अपने घरको लौटा। मार्गमें अपने हाथमें रतन रखकर व बारबार देखकर यह विचारने लगा। समुद्रतट पहुंचकर मैं इस महान् रत्नको बेच डालूंगा और हाथी घोडे आदि नाना प्रकारकी वस्तु खरीदूंगा, फिर राजाके समान होकर अपने नगरको जाऊंगा। लक्ष्मीसे पूर्ण हो मंत्री व नौकर चाकर रखूंगा। मैं घरमें रह कर स्वस्त्रीके साथ सुखसे जीवन विताऊंगा। मुसकराते हुए स्त्रियोंको देखूंगा। पुत्र पौत्रादि होंगे उनको देख कर प्रसन्न हूंगा। ऐसा मनमें विचारता जारहा था कि पापके उदयसे व प्रमादसे वह रतन हाथसे समुद्रमें गिर पड़ा, तब उसके मनके सब मनोरथ वृथा रह गए। रतन न दीखने पर हाहाकार करके रोने लगा।

हे मामा! मैं इस तरह नहीं हूंगा कि धर्मके फलको छोड़कर वर्तमान विषयभोगोंमें फंस कर दुःख भोगूं।

स्वामीके इस उत्तरको सुनकर वह चोर निरुत्तर होगया तथापि वह एक और कथा कहने लगा, जैसे मृदंगको मारनेसे वह ध्वनि निकालता ही है।

विद्युच्चरकी कथा।

एक धनुषधारी शिकारी भील विंध्याचल पर्वत पर रहता था। उसका नाम दृढ प्रहारी था। उसने एक दिन एक वनके हाथीको जो सरोवरमें प्यासा होकर पानी पीने आया था जानसे मार डाला। पापके उदयसे उसी क्षण एक सर्पने भीलको डंस दिया, भील भी मर गया। वह सांप भी धनुषके लगनेसे घायल होकर मर गया। वहां हाथी, भील और सांप तीनों मृतक पड़े थे, इतनेमें एक भूखा स्यार वहां आगया। वहां पर हाथी, भील, सांप व धनुषको पडा हुआ देखकर लोभके कारण बहुत हर्षित हुआ। वह स्यार मनमें विचारने लगा कि इस मरे हुए हाथीको छः मासतक निश्चिंत हो खाऊँगा। उसके पीछे एक मासतक इस मनुष्यका शरीर भक्षण करूँगा। उसके पीछे सांपको एक दिनमें खा जाऊंगा। इन सबको छोड़कर आज तो मैं इस धनुषकी रस्सीको ही खाता हूं। उसमें बाण लगा था वह बाण उसके तालमें घुस गया। पापके उदयसे वह डोरी खाते हुए बहुत कष्टसे मरा।

हे कुमार! जैसे बहुत सुखकी इच्छा करनेसे स्यारका मरण होगया वैसे तुम इस सांसारिक वर्तमानके सुखको छोड़कर अधिक सुखके लिये घरको छोड़ जाओगे तो हास्यको पाओगे।

जम्बुकुमार मामाकी कथाको सुनकर उत्तर देनेके लिये एक रमणीक कथा कहने लगे—

जम्बूस्वामीकी कथा।

एक अति दरिद्री मजदूर था जो वनसे ईंधन लाकर व वेचकर पेट भरता था। एक दिन वनसे कंधेपर भारी बोझा लाया था। दोपहरको उस भारको घरमें रखकर अपने घरमें ठहरा। वह बिचारा बहुत प्यासा था। तालू सूख गए थे। बोझा लानेका भी कष्ट था। भार रखकर एक वृक्षके नीचे शांतिको पाकर क्षण मात्रके लिये सो गया। नींदमें उस मजदूरने स्वप्न देखा कि वह राज्यपदपर बिराजित है। मणि मोतीसे जड़े हुए सिंहासनपर बैठा है। वारवार चमर ढर रहे हैं। बन्दीजन विरद बखान रहे हैं। हाथी, घोड़े आदि बहुत परिवार हैं। फिर देखा कि राजमहलमें बैठा है। चारों तरफ स्त्रियां बैठी हैं। उनके साथ हास्य-विनोद होरहा है। इतनेहीमें उसकी भूखसे पीड़ित स्त्रीने लकड़ीसे व पैरोंसे ताडकर उसको जगाया। यकायक उठा। उठकर विचारने लगा कि वह राज्यलक्ष्मी कहां चली गई! देखते देखते क्षण मात्रमें नाश होगई!

हे मामा! इसी तरह स्त्री आदिका संयोग सब स्वप्नके समान क्षणमात्रमें छूटनेवाला है व इनका संयोग प्राणीके प्राणोंका अप-हरण करनेवाला है। ऐसा समझकर कौन बुद्धिमान दुःखोंके स्थानमें अपनेको पटकेगा।

विद्युचरकी कथा।

जंबूस्वामीकी कथा सुनकर बुद्धिमान विद्युच्चर चौथी कथा कहने लगा। रात्रिका अंतिम प्रहर हो चला था। एक कोई नट था जो बड़ा चतुर व कलाविज्ञानका जाननेवाला था। बड़ा विख्यात था। उसका नाम कुतूहली था। एक दिन राजाके सामने बड़ी चतुराईसे नृत्य दिखाया, साथमें कई नृत्यकारिणी भी आभूषण पहरे नाच रहीं थीं। नृत्यको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। इनाममें सुवर्णादि व वस्त्रादि दिये। राजाके दिये हुए प्रसादको पाकर वे सब नट निद्राके वशीभूत होकर वहीं सोगए। रात्रिको जागकर जा नहीं सके। नर्तकी आदि सब गाढ़ नींदमें सोगए। तब प्रधान नट पाप बुद्धिसे जागता ही रहा और मनमें विचारने लगा कि मैं इन सबको यहीं छोड़कर सर्व सुवर्णादि लेकर क्षणमें भाग जाऊं। जैसे वह सर्व द्रव्य लेकर भागने लगा वैसे ही सब नर्तकी जाग पड़ीं और उस प्रधान नटको चोरीके अपराधमें राजाके पास लेगईं। राजाने देखकर क्रोध किया व उचित दंड दिया।

वैसे ही हे भागिनेय जंबूस्वामी! तुम तो बहुत बुद्धिमान हो, बहुत द्रव्यके लाभके लिये इस सम्पदाको छोड कर मत जाओ, पीछे पछताना पड़ेगा।

इस कथाको सुनकर प्रभावशाली जंबूकुमार इस कथाके उत्तरमें एक रमणीक कथा कहने लगे—

जम्बूस्वामीकी कथा।

बनारस नगरमें एक महान राजा प्रसिद्ध लोकपाल नामका था जो राज्यका भार सहन करनेमें चतुर था। उसकी पटरानी महासुन्दर मनोरमा नामकी थी। एक दिन राजा वनमें शिकार खेलनेके लिये गया था तब उसकी रानीके परिणाम कामभावसे पीड़ित होगए। उसने एक चतुर दूतीको बुलाकर अपने मनका हाल कह दिया कि हे माता! मैं कामकी बाधा सहनेको असमर्थ हूं, तू ही मेरी रक्षा करनेवाली है, तू शीघ्र किसी सुन्दर तरुण पुरुषको यहां ला। वह महापापिनी दूती कहने लगी—हे सुंदरी! तू शोच न कर, मेरे होते तेरी इच्छा पूर्ण होगी। मैं अपनी बातोंसे कामभावसे विरक्त योगियोंको भी मोहित कर सक्ती हूं तो दूसरे साधारण कामसे पीड़ित मानव कीटोंकी तो बात ही क्या है। वह रानी अपने महल पर बैठी हुई मार्गमें देख रही थी। उसने एक चंग नामके सुनारको जाते देखा, देखकर उस पर मोहित होगई। दूतीको कहा कि मेरे जीवनके लिये इस पुरुषको किसी उपायसे बुलालो। दूती गई व अपनी मायासे उस चंगको मनोरमाके पास ले आई। जैसे ही वह रानी उस पुरुषको लेकर अपने कमरेमें गई व रतिक्रीड़ाके लिये शय्यापर बैठी थी कि इतनेमें राजा हाथीपर चढ़े हुए आगए। राजाको आते देखकर सुनार घबड़ाकर भयभीत हो कांपने लगा। रानीने एक छिपे हुए गहरे गढेमें उस चंगको छिपा दिया और आप राजाके सामने जाकर उसे स्नेह सहित घरमें लाई। वह चंग छः मासतक उसी गढ़ेमें

वास करता रहा व मनोरमाके साथ कामभोग करता रहा। मनोरमा झूठन फेंकनेके बहानेसे उसको भोजन पहुंचा देती थी। छः मास वहां रहनेसे उसके शरीरमें कोढ़का रोग होगया। एक दफे राजाकी आज्ञासे उस गहरे गढ़ेको पानीसे धोया जाने लगा। तब वह उसकी मोरीसे बाहर निकलकर भागकर नदीके किनारे पर आया। जब उसके जानकार लोगोंने पूछा कि तुम्हारा शरीर तो सुवर्णके ही समान था, ऐसा कोढ़ी कैसे होगया? उसने बात बनाकर कह दी कि मेरी सुंदरताको देखकर पाताल लोककी कन्याएं (देवियां) मुझे बड़े आदरसे लेगईं। जब मैं अपने घर लौटने लगा तब उन दुष्टाओंने क्रोध करके मेरे शरीरको बिगाड़ दिया। लोग स्वभावसे ही सत्य नहीं बोलते हैं तो जब कोई कारण हो तब न बोले तो क्या आश्चर्य? यही दशा सुनारकी हुई, वह धीरे२ अपने घरमें आया। वहां पैसोंके द्वारा सुगंध द्रव्योंसे उबटन किये जानेपर वह सुन्दर-शरीर फिर होगया। एक दफे वह किसी कामसे मार्गमें जारहा था, वह राजमहलके पास पहुंचा तब उसे उसी मनोरमाने देख लिया और संकेतसे उसे बुलाने लगी। तब चंगने कहा—हे दुष्टा! तेरे साथ अब स्नेह नहीं करना है, तेरे घरसे जो दुःख पाया है उसे मैं एक क्षण भी भूल नहीं सक्ता हूं। अभी भी मेरे शरीरसे दुर्गंध नहीं निकलती है। अब मैं कष्टसे छूटा हूं, फिर मैं इस विचार रहित कामको नहीं करूंगा।

इसी तरह हे मामा! मैं इस तुच्छ इन्द्रिय सुखके किये

तिर्यंच आदि गतियोंमें जाकर दुःख उठाना नहीं चाहता हूं। बहुत प्रलापसे क्या? आप ठीक समझलो, मैं कदापि इन्द्रिय सुखका भोग नहीं चाहता हूं। चाहे आप सैकड़ों कथाओंसे मेरा समाधान करो।

विद्युच्चरचोरने निश्चय कर लिया कि कुमारका मन दृढ़ है। यह भी स्वयं निकट भव्य था, स्वयं वैराग्यवान होगया। और कुमारकी दृढ़ताकी प्रशंसा करने लगा—हे स्वामी! आप बड़े बुद्धिमान हैं, आप तीन लोकमें धन्य हैं। आप देवोंसे भी पूज्य हैं, मेरी क्या बात, हे महामतिमान्! आप संसार-समुद्रसे पार होगये हैं। आप धर्मरूपी कल्पवृक्षके मूल हैं। आप अवश्य कर्मरूपी पर्वतोंके मेटनेवाले हैं। इस प्रकार बहुत स्तुति करके विद्युच्चरने अपना सर्व वर्णन चोरी आदि करनेका सच्चा २ कह दिया। इतनेमें सूर्योदयका समय होगया। दिशाएं लाल वर्णकी होगईं। मानो उस समय जंबूकुमारके भीतरका राग ही निकलकर आकाशमें छागया। इस समय कितने ही सम्यग्दृष्टी भव्यजीव बड़े आदरसे कायोत्सर्ग करते हुए ध्यानमें लीन होगये। कितने ही श्री जिनेन्द्रकी पूजा करनेका उद्यम करने लगे। जल, चंदन, धूपादि सामग्री एकत्र करने लगे, इतने हीमें उदयाचलसे सूर्यका उदय होगया, मानो यह सूर्य अपनी किरणोंको फैलाकर स्वामीका दर्शन ही कर रहा है। जिस धर्मके प्रसादसे महापुरुष अविनाशी सुख भोगते हैं या इन्द्र व चक्रवर्तीका सुख भोगते हैं, उस धर्मका सेवन धर्मात्माओंको करते रहना चाहिये।

अध्याय ग्यारहवां।

श्री जम्बूस्वामी निर्वाण।

(श्लोक १५० का भावार्थ।)

पञ्चकल्याणकके भागी नव इन्द्रादि देवोंसे नमस्कृत श्री नमि-तीर्थंकरको तथा जगतके गुरु व धर्मरूपी रथकी धुर के समान श्री नेमिनाथ तीर्थंकरको नमन करता हूं।

जम्बूस्वामीकी दीक्षा।

सवेरा होते ही अर्हदास सेठके घरमें क्या हुआ सो कहता हूं—

श्री जंबूस्वामीके वृत्तान्तको राजा श्रेणिकने नहीं सुना था, इसलिये सवेरे ही अर्हदास सेठ सर्व हाल कहनेको स्वयं राज्यमहलमें गया। राजा श्रेणिकने सर्व हाल सुना। क्षणभर विचारमें पड़ा फिर जंबूस्वामीके वैराग्यसे आनन्दपूर्ण हो राजा धर्मबुद्धिवश सेठके स्नेहवश अर्हदासके घर चला। राजाकी आज्ञासे दुंदुभि बाजे बजने लगे, ये बाजे इस विजयके सूचक थे जैसे कि श्री जंबूकुमारको केवलज्ञानके साम्राज्यकी प्राप्ति होगी। जिसतरह तीर्थंकरोंके कल्याणकोंमें देवगण आकाशमार्गमें आते हैं वैसे श्रेणिकराजा मृदंगादि बाजोंकी ध्वनिके साथ बड़े उत्साहसे सेठके घर स्नेहसे पूर्ण कुटुंब सहित श्री जंबूकुमारके चरणकमलकी वन्दनाको आया। राजा श्रेणिकने स्वामीके विकार रहित नेत्रोंसे व मुखादिकी चेष्टासे जान लिया कि स्वामी वैराग्यमें आरूढ़ वीर योद्धाके समान हैं। यद्यपि स्वामी

वैरागी थे तथापि अपनी भावशुद्धिके लिये प्रभावनाके अर्थ स्वामीको नवीन वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया। चंदनादिसे अंगको चर्चा, मस्तकपर मुकुट रक्खा। जैसे इन्द्र सुमेरु पर्वतपर जिनेन्द्र तीर्थंकरको लेजाता है वैसे राजाने दीक्षावनमें जंबूकुमारको लेजानेकी शोभा की। स्वामी ऐसे शोभने लगे मानो मुक्तिरूपी कन्याके स्वयंवरके लिये तय्यार हुए हैं। फिर कुमारकी अनुमति पाकर राजा और सेठने अपने हाथोंसे स्वामीको पालकीमें स्थापित किया। जिस समय स्वामी वनमें जानेको तपके लिये तय्यार हुए, सर्व नागरिक दर्शन करनेको आदरपूर्वक आए, जनसमुदाय अपने २ घरका काम छोड़कर ऐसा दौड़ा मानो किसी अदृष्टको देखनेके कौतुकसे आरहे हैं। सर्व नगरके लोग परस्पर कहने लगे—"धन्य हैं स्वामी जो चारों स्त्रियोंको छोड़कर सिद्धिके सुखकी अभिलाषासे दीक्षित होने जारहे हैं, राजघरानेमें भी हाहाकार होगया। कितने ही दुःखित होकर स्नेहके भारसे मूर्छित होगए। इसी मध्यमें सती जिनमती माता आंसू निकालती व गद्‌गद् वचन बोलती आई—हे पुत्र! क्षणभर अपनी माताकी तरफ देख। ऐसा दीन वचन कहती हुई मोहसे मूर्छा खाकर गिर पड़ी, चेष्टा रहित होगई। अपनी सासको मूर्छित देखकर चारों वधुएं महा मोहसे व शोकसे पूर्ण हो वाणी निकालती हुई रुदन करने लगीं।

हे नाथ! हे प्राणनाथ! हे कामदेव! हम अनाथ होरहे हैं। हमें छोड़ क्यों जारहे हैं? दैवको धिक्कार हो जिसने तपके लिये

आपकी बुद्धि बना दी है। दैवने हमारे महादुःखको देखते हुए भी करुणा नहीं की।

हे कृपानाथ! अब भी प्रसन्न हो, परिणाम कोमल करो। नानाप्रकार भोगोंको भोगो। हे नाथ! हम तुम्हारे विना दीन हो, कैसे शोभाको पायेंगी, जैसे चंद्रमाके विना रात्रि शोभाको नहीं पाती है। वे स्त्रियां दीन वचन कह रही थीं। उधर चंदनादि पदार्थ छिडक कर जिनमती माताको होशमें लाया गया। सावधान होकर फिर सती जिनमती माता खेदसे वीर वैराग्यमें आरूढ़ स्वामीसे कहने लगी—हे पुत्र! कहां तेरा केलेके पत्तेके समान कोमल शरीर और कहां खड़गकी धाराके समान जैनका कठिन तप? यदि कोई हाथके अंगूठेसे अग्निको जलावे तो उसके मस्तकपर पहुंच ही जाती है। उससे भी कठिन काम तप है। हे बालक! तू दुःखदाई भूमिशयन कैसे करेगा? बाहुको लम्बायमान करके तू रातको कायोत्सर्ग ध्यान कैसे करेगा? अपने वृद्ध माता पिताको दुःखी छोड़कर तू वनमें क्यों जाता है? तेरे विना ये चारों वधूएं दुःखी होंगी व अकेली उसी तरह शोभा नहीं पायेगी जैसे भाव शून्य क्रिया शोभाको नहीं पाती है। कहा है—

इमा वध्वश्चतस्रोऽपि त्वामृते दुःखपूरिताः।
एकाकिन्यो न शोभंते भावशून्याः क्रिया इव ॥३०॥

इस तरह बहुत प्रकारसे विलाप करती हुई माताको देखकर दृढ संकल्पधारी जम्बूस्वामी कहने लगे—हे माता! शीघ्र ही शोकको

छोड़, कायरपना त्याग। इस संसारकी अवस्था सब अनित्य है, ऐसी मनमें निरन्तर भावना कर। हे माता! मैंने इन्द्रियोंके विषयोंका सुख बहुतबार भोग करके झूठनके समान छोड़ा है। ऐसे अतृप्तिकारी सुखकी हमें इच्छा नहीं करनी चाहिये।

यह प्राणी स्वर्गोंके महाभोगोंसे भी तृप्त न भया तो यह स्वप्नके समान मध्यलोकके तुच्छ भोगोंसे कैसे तृप्त होगा? मैं न मालूम कितनी बार नारकी, देव, तिर्यंच तथा मनुष्य हुआ हूं। कहा है—

कति न कति न वारान् भूपतिर्भूरिभूतिः।
कति न कति न वारानत्र जातोऽस्मि कीटः॥
नियतमिति न कस्याप्यस्ति सौख्यं न दुःखं।
जगति तरलरूपे किं मुदा किं शुचा वा।

भावार्थ- मैं कितने ही दफे बड़ी विभूति सहित राजा हुआ हूं। कितने ही दफे मैं कीट हुआ हूं। इस चंचल संसारमें किसी भी प्राणीको न कभी निश्चलतासे सुख होता है न दुःख होता है। इसलिये सुखमें हर्ष व दुःखमें शोक करना वृथा है।

इत्यादि अमृतमई उचित वाक्योंसे माताको संबोध करके जम्बूस्वामी शीघ्र ही घरसे निकले। घरसे विमुख होकर वनकी ओर जाते हुए स्वामी ऐसे शोभते थे जैसे बन्धन तुड़ाकर स्वच्छन्द महा गजराज शीघ्र वनको जाता हुआ शोभता है। जम्बूकुमारको जाते हुए सर्व ही निकट भव्यजीव स्तुति करने लगे। देखो! राज्य समान लक्ष्मीको तृणके समान मानके कुमार जारहे हैं। इस तरह आनन्द-

सहित श्रेणिक आदि राजा स्वयं पालकीको कंधोंपर व हाथों हाथ लेते हुए वनकी तरफ पहुंचे।

यह वन अकालमें ही फलफूलोंसे भरा हुआ था, बड़ा ही सुगंधित था, पवनके योगसे शाखाओंके अग्रभाग हिल रहे थे। मानो स्वामीके आनेपर हर्षसे नृत्य कर रहे हैं। पालकीसे उतरकर जंबूकुमार सौधर्म आचार्यके निकट गए। तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया।

फिर मुनि महाराजके सामने योग्य स्थानपर खड़े होगए। फिर कुमारने दोनों हाथजोड़ मस्तक नमाकर बड़े आदरसे विनयकी कि दयासागर! यथार्थ चारित्रवान मैं नानाप्रकारके हजारों दुःखोंसे भरी हुई कुयोनिरूपी संसारसमुद्रके आवर्तोंमें डूब रहा हूं। मेरा उद्धार इस भवसागरसे कीजिये। आज मुझे कृपा करके संसार–हरण करनेवाली पवित्र, उपादेय, कर्मक्षय समर्थ मुनिदीक्षा प्रदान कीजिये। आचार्यने आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर विरक्तचित्त स्वामी जम्बूकुमारने गुरु महाराजके सामने अपने शरीरसे सर्व आभूषण उतार दिये। अपने मुकुटके आगे लटकनेवाली फूलोंकी माला इस तरह दूर करदी, मानो कामदेवके बाणोंको ही बलपूर्वक दूर किया हो। रत्नमई मुकुट भी शीघ्र ही उतारा। मानो मोहरूपी राजाके सर्व मानको ही जीत लिया है। फिर हार आदि गहनोंको उतारा। रत्नमई अंगूठियें उंगलीसे दूर कीं। फिर अपने शरीरसे सुन्दरताके समान वस्त्रोंको उतार दिया। मानो चतुर पुरुषने मायाके पटलोंको ही फेंक दिया हो। मणियोंसे वेष्टित पड़े हुए कमरकी करधनीको

इस तरह तोड़ डाला, मानो संसारसे वैरागीने संसारका दृढ़ बन्धन ही तोड़ डाला। फिर कानोंके दोनों कुण्डल निकाल दिये, मानो संसाररूपी रथके दोनों पहियोंको ही तोड़ डाला।

फिर स्वामीने दोनों हाथोंसे शास्त्रकी पद्धतिसे लीला मात्रमें पांच मुष्ठिसे अपने केशोंका लोंच कर डाला। उस समय ॐ नमः मंत्र उच्चारण किया। फिर श्री गुरुकी आज्ञासे क्रमसे शुद्ध अट्ठाईस मूलगुणोंको ग्रहण किया। वे २८ मुलगुण नीचे प्रकार हैं—

२८ मूलगुण।

५ महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग।

५ समिति—ईर्या (भूमि निरखकर चलना), भाषा (शुद्ध वाणी कहना), एषणा (शुद्ध आहार लेना), आदान निक्षेपण (देखकर रखना उठाना), प्रतिष्ठापन—(मलमूत्र निर्जंतु भूमि पर करना।)

५ इंद्रिय निरोध-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, इनके विषयोंकी इच्छाओंको रोकना।

६ आवश्यक क्रिया—नित्य छः काम अवश्य करना—सामायिक, प्रतिक्रमण (गत दोषका पश्चात्ताप), प्रत्याख्यान (आगे दोष न लगानेकी प्रतिज्ञा), स्तुति (२४ तीर्थंकर स्तवन), वंदना (किसी एक तीर्थंकरकी वन्दना), कायोत्सर्ग (ममत्व त्याग)।

७ फुटकर नियम—

(१) केशोंका लोंच, (२) अचेलकपना—(वस्त्र त्याग, यह शुद्ध चारित्रका कारण है), (३) स्नान त्याग—(अहिंसा महाव्र-

त्तके लिये स्नान न करना), (४) प्राशुक भूमिमें शयन—(वैराग्यादिकी वृद्धिके लिये), (५) काष्ठादिसे दंतवन त्याग—(वैरागियोंको दांतोंकी शोभाकी आवश्यक्ता नहीं है), (६) स्थिति भोजन—(कायोत्सर्गसे खड़े होकर भिक्षा लेना), (७) एकवार भोजन—(दिवसमें एकवार भोजन शरीरकी स्थितिके लिये हाथमें लेना, भोगोंके लिये कदापि न लेना ।)

२८ मूल गुण—

श्री जिनेन्द्रोंने ये अट्ठाईस मूल गुण साधुओंके लिये बताए हैं। इन्हींके उत्तर भेद (सूक्ष्म भेद) चौरासीलाख हैं।

इन सब नियमोंको मोक्षके चाहनेवाले साधुओंको मरण पर्यंत पालना चाहिये। इन सबके समूहका नाम मुनिका चारित्र है।

गुणोंमें गम्भीर व श्रेष्ठ गुरुसे मुनिका चारित्र सुनकर शुद्ध बुद्धिधारी जंबूकुमारने सर्व व्रत व नियम ग्रहण कर लिये। जिस समय स्वामीने नग्न होकर मुनिव्रत धारण किये उस समय श्रेणिक आदि सर्व राजाओंने व सर्व नगरवासियोंने आनन्दभावसे जय जय शब्द किये। उस समय कितने ही शुद्ध सम्यक्तके धारी राजाओंने भी यथाजात दिगम्बर स्वरूप धारण करके मुनिपद स्वीकार किया। कोई चारित्र मोहके उदयसे मुनिका चारित्र पालनेको असमर्थ थे उन्होंने श्रावकके व्रतोंको बड़े आदरसे ग्रहण किया।

विद्युच्चर मुनि।

विद्युच्चर चोर भी संसार शरीर भोगोंसे वैरागी होगया था।

उसने भी सर्व परिग्रहका त्याग कर मुनिव्रत ग्रहण किया। विद्युच्चरके साथ प्रभव आदि पांचसौ राजकुमार चोरी करते थे वे सब ही पांचसौ मुनि होगए।

जम्बूकुमार परिवार दीक्षा।

फिर अर्हद्दास श्रेष्ठी भी वैराग्यवान होगये। स्त्री सहित सर्व घरके परिग्रहको छोड़कर मुनिराज होगये। जिनमती माता भी संसारको असार जानकर सुप्रभा आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रतोंसे विभूषित होगईं। पद्मश्री आदि चारों युवती स्त्रियोंने भी संसारकी क्षणिक अवस्था जानकर सुप्रभा गुराणीके पास आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये।

फिर श्रेणिक आदि राजाओंने सौधर्म आदि सर्व मुनीश्वरोंको नमस्कार करके अपने घरकी ओर जानेका उद्यम किया।

जम्बूस्वामी सम्यक्चारित्रसे विभूषित हो अपनेको कृतार्थ मानने लगे। उपवास ग्रहणकर मौन सहित वनमें ध्यानमें लीन होगए। विद्युच्चर आदि मुनियोंने भी यथाशक्ति उपवास ग्रहण किया और सब ध्यानमें तन्मय होगए। उपवास पूर्ण होनेपर समाधिके अन्तमें महामुनि जंबूस्वामीने सिद्ध भक्ति पढ़ी, फिर पारणाके लिये प्राशुक मार्गमें ईर्या समितिसे चलने लगे।

जम्बूस्वामीका प्रथम आहार।

संयमी जम्बूकुमारने राजगृह नगरमें प्रवेश किया। नगरवासियोंने दूरसे देखा कि कोई पवित्रात्मा पुण्य मूर्ति आरहे हैं।

सर्वजन देखते ही दूरसे विनय सहित नतमस्तक हो नमस्कार करने लगे। कितने ही लोग चित्रके समान दर्शन करके आश्चर्य सहित परस्पर कहने लगे–जो पूर्वमें सबसे मुख्य थे वे ही आज मुनीश्वर होगये हैं।

अहो! दैवका विचित्र माहात्म्य है। कर्मोंके उदयसे कौन जानता है क्या किस तरह भावी है? कितने ही श्रावक दान देनेके उत्सुक मार्गमें स्वामीके प्रतिग्रहण करनेके लिये अलग अलग खड़े हुये राह देख रहे थे। कोई कहने लगे–स्वामी! यहां कृपा करो, अपने चरणकमलकी रजसे मेरा घर पवित्र करो। हे जंबूस्वामी! महामुनि हमारे घरमें तिष्ठो तिष्ठो, शुद्धप्राशुक अन्न है, हम भक्तिपूर्वक देना चाहते हैं, आप ग्रहण करो। श्रावकजन वारवार कह रहे हैं–स्वामी! पधारिये, हमारे घरमें पधारिये। कितने ही कहने लगे–स्वामीका शरीर कामदेवके समान है, वय छोटी है, सुकुमार शरीर है, कठिन तप किस तरह करेंगे? कितने ही वन्दनाके बहाने कामदेवके समान रूपवान निष्काम स्वामीको देखनेके लिये सामने आगये। इसतरह श्रावकके जन नानाप्रकारकी बातें कह रहे थे। इतनेमें स्वामी विना किसी चिंताके जिनदास सेठके घरपर खड़े होगये। जिनदासने स्वामीको पड़गाहा। स्वामीने मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे नवकोटि शुद्ध आहार ग्रहण किया। तब सेठके आंगनमें दानके अतिशयसे पुष्पवृष्टि आदि पांच आश्चर्य हुए। आहार लेकर शुद्धात्मा स्वामी सांसारिक वांछासे रहित होकर भी दयाके भावसे

भूमि निरख कर वनकी ओर चल पड़े। ईर्यापथ शुद्धिसे चल करके धीरे २ जंबू मुनि वनमें श्री सौधर्माचार्यके निकट आये। महान् तेजस्वी जम्बू मुनिको एक निर्वाण लाभकी ही भावना थी, इसीलिये तपकी सिद्धि करना चाहते थे।

कुछ सालके पीछे सौधर्म आचार्यको स्वाभाविक केवलज्ञानका लाभ होगया। अनंत स्वभावधारी सर्वज्ञ केवलीके चरणोंमें रहकर जंबूस्वामी महामुनिने कठिन कठिन तपका साधन किया।

जम्बूस्वामीका तप।

स्वामी बारह प्रकारका तप करने लगे। आत्माकी विशुद्धिके लिये एक दो आदि दिनोंकी संख्यासे उपवास करते थे। शांतभाव धारी एक ग्रास दो ग्रास आदि लेकर भी महान् अवमोदर्य तप करते थे। लोभ रहित स्वामी यथा अवसर भिक्षाको जाते हुए घरोंकी संख्या कर लेते थे। इसतरह वृत्तिसंख्यान तीसरा तप साधन करते थे।

इन्द्रियोंको जीतनेके लिये व काम विकारकी शांतिके लिये रस त्याग नामके चौथे तपको करते थे। आत्मवशी जंबू मुनिराज वन पर्वत आदि शून्य स्थानोंमें बैठकर विविक्त शय्यासन नामका पांचमा तप किया करते थे। महान् उपसर्गोंको जीतनेके लिये शास्त्रके समान कायक्लेश नामके छठे तपको करते थे। श्री जंबूस्वामी परम धैर्यके एक महान् पद थे, महान् वीर्यधारी थे, छः प्रकारके बाहरी तपको सहजमें ही साधन करते थे।

इसीतरह स्वामीने छः प्रकारका अंतरङ्ग तप साधन किया।

मन वचन काय सम्बन्धी कोई दोषकी शुद्धिके लिये प्रथम प्रायश्चित्त तपको स्वीकार किया। निश्चयरत्नत्रयरूपी शुद्धात्मीक धर्ममें तथा अरहंत आदि पांच परमेष्ठियोंमें विनय तपको करते थे। मुनिराजोंको नमस्कार व उनकी सेवाको नहीं उलंघन करते हुए तीसरा सुखदाई वैय्यावृत्य तप पालन किया करते थे। शुद्धात्माके अनुभवका अभ्यास करते हुए निश्चय स्वाध्यायरूपी चौथे परम तपका साधन करते थे। शरीरादि परिग्रहमें ममत्व भावको बिलकुल दूर करके स्वामीने पांचमा व्युत्सर्ग तप साधन किया। सबसे श्रेष्ठ तप ध्यान है। सर्व चिंतासे रहित होकर चैतन्य भावका ही आलम्बन करके स्वामीने छठा ध्यान तपका आराधन किया। ये छः अंतरङ्ग शुद्ध तप मोक्षके कारण हैं। वैराग्यभावधारी स्वामीने दोष रहित इन सबोंको पाला। यथाजात स्वरूपके धारी मन, वचन, कायको निरोध करके तीन गुप्तियोंको पालते थे। स्वामीने कषायरूपी शत्रुओंकी सेनाको जीतनेके लिये कमर कस ली। शांतभावरूपी शस्त्रको लेकर उन कषायोंका सामना करने लगे। कामदेवकी स्त्री रतिको तो स्वामीने पहिले ही दूरसे ही भस्म कर दिया था। अब कामदेवरूपी योद्धाको लीला मात्रमें जीत लिया। द्रव्य व भाव श्रुतके भेदसे नाना प्रकार अर्थसे भरी हुई द्वादशांग वाणीके बुद्धिमान जम्बु मुनि पार पहुंच गए थे।

सौधर्माचार्यका निर्वाण।

इस तरह जब जंबुस्वामीको अनेक प्रकार तप करते हुए

अठारह वर्ष एक क्षणके समान बीत गए थे, तब माघ सुदी सप्तमीके दिन सौधर्मस्वामी विपुलाचल पर्वतसे निर्वाण प्राप्त हुए। तब सौधर्म-स्वामीका आत्मा अनंत सुखके समुद्रमें मग्न होगया। वे अनंत बल, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञानके धारी निरंतर शोभने लगे। अपने कल्याणके लिये मैं उनको नमस्कार करता हूं।

जम्बूस्वामीको केवलज्ञान।

उसी दिन जब आधा पहर दिन बाकी था तब श्री जंबूस्वामी मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न होगया। पहले उन्होंने मोह—शत्रुका क्षय किया। फिर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अंतराय कर्मका क्षय कर लिया। वे अनन्त चतुष्टयके धारी अरहंत होगए। पद्मासनसे विराजित थे, तब ही केवलज्ञान लाभकी पूजा करनेके लिये देव-गण अपने परिवार सहित व अपनी विभूति सहित बड़े उत्साहसे आगये। इन्द्रादिदेवोंने स्वामीको तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया जय जय शब्दोंका उच्चारण किया, तथा बड़े हर्षसे प्रभुकी भक्तिपूर्वक अष्टद्रव्यसे पूजा की। इन्द्रोंने अनुपम गद्य पद्य गर्भित स्तुति पढ़ी। उस स्तुतिमें यह कहा—प्रचण्ड कामदेवके दर्परूपी सर्पको नाश करनेके लिये आप गरुड़ हैं, आपकी जय हो। केवल-ज्ञान सूर्यसे तीन लोकको प्रकाश करनेवाले प्रभुकी जय हो। इसप्रकार अंतिम केवली जिनवरकी अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करके अपनेको कृतार्थ मानते हुए देवादि सब अपने२ स्थानपर गये।

विपुलाचलसे जम्बूस्वामीका निर्वाण।

पश्चात् श्री जंबूस्वामी जिनेन्द्रने गंधकूटीमें स्थित हो उपदेश किया। स्वामीने मगधसे लेकर मथुरा तक व अन्य भी देशोंमें अठारह वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश देते हुए विहार किया। फिर केवली महाराज विपुलाचल पर्वतपर पधारे। आठों कर्मोंसे रहित होकर निर्वाणको प्राप्त हुए। नित्य अविनाशी सुखके भोक्ता होगये।

पश्चात् अर्हद्दास मुनीश्वर भी समाधिमरण करके छट्ठे देवलोक पधारे। श्रीमती जिनमती आर्यिकाने स्त्रीलिंग छेद दिया और उत्तम समाधिमरण करके ब्रह्मोत्तर नामके छठे स्वर्गमें इन्द्रपद पाया। चारों वधूएं आर्यिका पदमें चंपापुरके श्री वासपूज्य चैत्यालयमें थीं। वहां प्राण त्यागकर महर्द्धिक देवी हुईं।

विद्युच्चर मुनि मथुरामें।

विद्युच्चर नामके महामुनि तप करते हुए ग्यारह अंगके पाठी होगए। विहार करते हुए पांचसौ मुनियोंके साथ एक दफे मथुराके महान वनमें पधारे। वनमें ध्यानके लिये बैठे कि सूर्य अस्त होगया। मानो सूर्य मुनियोंपर होनेवाले घोर उपसर्गको देखनेको असमर्थ होगया। उसी समय चंद्रमारी नामकी वनदेवीने मुनियोंसे निवेदन किया कि यहां आजसे पांच दिन तक आपको नहीं ठहरना चाहिये। यहां भूत प्रेतादि आकर आपको बाधा करेंगे, आप सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिये आप सब इस स्थानको छोड़कर अन्य स्थानमें विहार कर जाओ। ज्ञानियोंको उचित है कि संयम व

ध्यानकी सिद्धिके लिये अशुभ निमित्तोंको छोड़ दें। ऐसा कहकर चंद्रमारी देवी अपने स्थानको चली गई। मुनियोंके भावोंकी परीक्षा लेनेको विद्युच्चर मुनिराजने कहा कि आप सब वृद्ध हो, विचारशील हो, हठ न करके प्रमाद त्याग करके यहांसे अन्य स्थानको चले जाओ। ऐसा सुनकर सर्व मुनि जो निःशंकित अंगके पालनेवाले थे निःशंक हो बोले–परमागममें योगीको आज्ञा है कि उपसर्ग पड़े तो सहन करे, अब रात्रिका समय है। जो हमारे शुभ व अशुभ कर्मके उदयसे होना होगा सो होगा, हम तो अब यहीं मौन साधकर बैठेंगे। उनके वचनोंको सुनकर विद्युच्चर मुनिको संतोष हुआ। धैर्यवान विद्युच्चर भी सर्व मुनियोंके साथ मौन लेकर योग मुद्रामें लीन होगये।

घोर उपसर्ग।

रात्रि बढ़ गई। अंधेरा चारों तरफ छागया। मुख देखना असमर्थ होगया, आधी रातका समय आगया, तब ही भूत, प्रेत, राक्षस भयानकरूप बनाकर इधर उधर दौड़ते हुए आये। कितने डांस, मच्छर होकर काटने लगे, कितने दंदशुक सर्पके समान होकर फूंकार करने लगे, कितने तीक्ष्ण नख व चोंचधारी मुरगे बन गये व सताने लगे, कितने हीने रक्तसे मस्तक व हाथ रंग लिये, निर्धूम अग्निके समान भयानक मुख बना लिये, कण्ठमें हड्डियोंकी मालाएं बांधलीं, लाल आंख करली, मुखको फाडते हुए आए। कितने हीने हाथोंसे मस्तकके बालोंको छिटका लिया, छातीमें रुण्डमाल डालली, हंसने लगे, इसको मारो ऐसा भयानक शब्द करने लगे। कोई

निर्दयी आकाशमें रूढ़े हुए दूसरोंको प्रेरणा करने लगे। इस तरह पाप कार्यमें रत राक्षसोंने जैसा मुनियोंपर उपसर्ग किया उसका कथन नहीं होसक्ता है। तब महाधीरवीर विद्युच्चर मुनिने अपने मनमें शुद्ध बारह भावनाओंका चिंतवन किया।

जीवनकी आशा छोड़कर शरीरको क्षणभंगुर जानकर बड़े भावसे सन्यास धारण कर लिया। ध्यानमें स्थिर होगए। व उसी तरह अन्य पांचसौ मुनियोंने भी संसारके स्वरूपको विचारकर शांतिसे उपसर्ग सहन किया। कितने स्वरूपके मननमें, कितने ही निश्चल ध्यानमें मेरु पर्वतके समान स्थिर होगये। वे सब ज्ञानी थे, कर्मके विपाकको जानते थे। कहा है–

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः॥

धर्मान्नास्ति परः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
तस्मिन् श्रीजिनधर्मशर्मनिरतैर्धर्मे मतिर्धार्यताम्॥१९०॥

भावार्थ–सर्वसुखका करनेवाला धर्म है, धर्म हितकारी है, बुद्धिमान धर्मका संग्रह करते हैं, धर्मसे ही मोक्ष–सुख प्राप्त होता है। इसलिये यह धर्म नमस्कार करने योग्य है। संसारी प्राणियोंका धर्मसे बढ़कर कोई और मित्र नहीं है। धर्मका मूल अहिंसा धर्म है। जो जिन धर्मके सुखमें लीन होना चाहते हैं उनको ऐसे धर्ममें सदा प्रेमभाव धारना चाहिये।

बारहवा अध्याय।

विद्युच्चर मुनिको सर्वार्थसिद्धि।

(श्लोक १७७ का भावार्थ)

अन्तराय कर्मोंको नाश करनेवाले श्री पार्श्वनाथ भगवानको तथा आत्मीक गुणोंमें वर्द्धमान श्री वर्द्धमान भगवानको मैं नमस्कार करता हूं।

उपसर्ग जब पड़ रहा था तब विद्युच्चरादि सर्व मुनि बारह भावनाओंकी भावना इस तरह करने लगे। उनके नाम हैं—(१) अनित्य, (२) अशरण, (३) संसार, (४) एकत्व, (५) अन्यत्व, (६) अशुचित्व, (७) आस्रव, (८) संवर, (९) निर्जरा, (१०) लोक, (११) बोधिदुर्लभ, (१२) धर्म। जितने संयमी मुनि मोक्ष गये हैं, जारहे हैं व जांयगे, वे सब इन बारह भावनाओंको भाकर गये हैं, जारहे हैं व जांयगे।

अनित्य भावना।

इस लोकमें चर अचर जितने पदार्थ दीखते हैं वे सब विभाव रूपमें दीखते हैं। जितने स्थावर व त्रस जीव हैं वे कर्मोंके उदयसे विभाव पर्यायमें हैं। जबतक कर्मबीजका फल रहता है तबतक वे रहते हैं। जब उनका निर्माण कर्मफलसे है तब वे नित्य कैसे होसक्ते हैं? कर्मोंके उदयसे जितनी शरीरादि बाहरी व रागादि अंतरङ्ग पर्यायें होती हैं वे सब क्षणभंगुर हैं।

स्वानुभूतिके द्वारा अपना आत्मा इन सर्व कर्मजनित दशाओंसे

भिन्न है, ये सर्व कर्मोदयसे होनेवाली अवस्थाएं अनित्य हैं। यह बात प्रमाणसे, शास्त्रसे, आगमसे तथा स्वानुभूतिसे व प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है। इनमें उत्तम बुद्धिधारी मानव कैसे मोह कर सक्ते हैं? जैसे सूर्यका उदय कुछ काल तक ही लगातार रहता है वैसे ही चारों गतियोंमें सर्व जीव किसी कालकी मर्यादाको लेकर उत्पन्न होते हैं। जैसे पका हुआ फल वृक्षसे अलग हो अवश्य भूमिपर गिर पड़ता है वैसे संसारी प्राणी आयुके क्षयसे अवश्य मर जाते हैं। इस लोकमें प्राणीका जीवन जलके बुद्‌बुदके समान चंचल है, भोग रोग सहित हैं, युवानी जरा सहित है, सुन्दरता क्षणमें बिगड़ जाती है, सम्पत्तियां विपत्तिमें बदल जाती हैं, नाशवन्त हैं, सांसारिक सुख मधुकी बूंदके स्वादके समान है, परम्परा दुःखका कारण है। इंद्रियोंका बल, आरोग्य व शरीरका बल सब मेघोंके पटलके समान विनाश होनेवाला है, राज्यमहल व राज्यलक्ष्मी इन्द्रजालके समान चली जानेवाली है। पुत्र, पौत्र, स्त्री आदि, मित्र, बन्धुजन, स्वजनादि सब बिजलीके चमकारके समान चंचल हैं। देखते देखते क्षणमात्रमें नाश होजाते हैं। इस तरह सर्व जगतकी रचनाको अनित्य जानकर सतपुरुषोंको शरीर आदिमें ममता नहीं करनी चाहिये। अपने आत्माको नित्य व सनातन अनुभव करना योग्य है।

अशरण भावना।

इस चार गति रूप संसारमें भ्रमण करते हुए प्राणीको जब मरणरूपी शत्रु पकड़ लेता है तब कोई भी शरण नहीं है। जैसे वनमें

मृगके बच्चेको जब बाघ पकड़ लेता है तब पुण्यके उदय विना कोई और रक्षा नहीं कर सक्ता। आयुके क्षय होनेपर अणिमा आदि शक्तियोंके धारी देवोंको भी स्वर्गसे च्युत होना पड़ता है तो अन्य शरीरधारियोंकी क्या बात? जब यमराज विकराल मुख करके सामने आजाता है तब मणि, मंत्र, औषधि आदि सर्व ही निरर्थक होजाते हैं। जब यमराज क्रोधित होकर इन्द्र, चक्रवर्ती व विद्याधरोंको पकड़ लेता है तब कोई भी बचा नहीं सक्ता। इस जगतमें कोई अपनी आत्माका रक्षक नहीं है। यदि कोई रक्षक है तो वह एक जिन शासन है, उसीको ग्रहण योग्य मानकर बड़े पुरुषार्थसे उस जिनधर्मका साधन करना चाहिये। अर्हन्त भगवान शरण हैं, सिद्ध महाराज शरण हैं, साधु महाराज शरण हैं, अरहंत भाषित धर्म शरण है। बुद्धिमानोंको उचित है कि इन चारोंको ही सर्वदा अपना रक्षक माने। जगतमें एक धर्मको ही रक्षक मानकर बुद्धिमानोंका कर्तव्य है कि व्यवहारनयसे चारित्ररूप धर्मको पालें, निश्चयसे आत्मानुभव रूप धर्मको साधें।

संसार भावना।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव भावरूप भ्रमणकी अपेक्षा यह संसार पांच प्रकार है। सूक्ष्म ज्ञानियोंने द्रव्य संसारको दो प्रकारका कहा है। कर्म योग्य पुद्गलोंके ग्रहणकी अपेक्षा कर्म द्रव्य परिवर्तन व नोकर्म पुद्गलोंके ग्रहणकी अपेक्षा नोकर्म द्रव्य परिवर्तन इस लोकमें तीन प्रकार पुद्गल स्वभावसे हैं—गृहीत, अगृहीत और मिश्र। किसी

विवक्षित जीवने तीनों ही प्रकारके पुद्गलोंको अनंतवार कर्म तथा नोकर्म रूपसे ग्रहण किया है, बारबार ग्रहण कर छोडा है, फिर ग्रहण किया है, जितना काल इसतरह ग्रहणमें लगता है सो द्रव्यसंसार है। ऐसा द्रव्य परिवर्तन इस संसारी जीवने पूर्व अनंतवार किया है।

(नोट-इसका विस्तारसे स्पष्ट कथन गोम्मटसारसे जानना योग्य है।)

आकाशका क्षेत्र जो लोकमें है वह अणुमात्र ही प्रदेशरूप भावसे असंख्यातप्रदेशी है। इस जीवने हरएक प्रदेशमें जन्म व मरण किया है। सुमेरु पर्वतके नीचे लोकाकाशके मध्यमें आठ प्रदेश गोस्तनाकार प्रसिद्ध हैं। कोई जीव उन प्रदेशोंको मध्य देकर वहां जन्मा, आयु भोगकरके मरा, फिर वह कहीं उत्पन्न हुआ सो गिनतीमें न लेकर वहीं फिर एक प्रदेश उल्लंघ करके जन्मे। इसतरह सर्व आकाशके प्रदेशोंको जन्म लेकर व इसीतरह मरकरके पूरा करे। एक जीव द्वारा क्रमसे जन्म मरण करते हुए जितना काल लगता है उस सबके समुदायको क्षेत्र संसार कहते हैं। ऐसे क्षेत्र संसारको भी इस जीवने अनन्तवार किया है।

अंश रहित कालकी पर्याय समय है। जब अविभागी परमाणु एक कालाणुपरसे निकटवर्ती कालाणुपर मन्दगतिसे जाता है तब समय पर्याय उत्पन्न होती है। इस व्यवहार कालके समूहरूप दो काल प्रसिद्ध हैं। उत्सर्पिणी जहां शरीरादि बल सुख अधिक होते हैं। दूसरा अवसर्पिणी जब शरीरादि बल सुख कम होते जाते हैं।

जिनागममें हरएकके छः छः भेद कहे हैं। हरएककी काल मर्यादा दश कोड़ाकोड़ी सागरकी है। कोई जीव किसी उत्सर्पिणीके पहले समयमें जन्मे आयु पूर्णकर मरे, फिर कहीं यह जन्म लेवे, जब कभी किसी अन्य उत्सर्पिणीके दूसरे ही समयमें जन्मे, तब गिनतीमें लिया जावे। इस तरह फिर भ्रमण करते २ कभी किसी उत्सर्पिणीके तीसरे समयमें जन्मे, इस तरह क्रमसे उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ा-कोड़ी सागरके समयोंमें क्रमसे जन्म लेकर तथा क्रमसे मरण करके पूर्ण करे। इसी तरह अवसर्पिणी कालके भी दश कोड़ाकोड़ी साग-रके समयोंको क्रमसे जन्म व मरण करके पूर्ण करे। इन सबका समूहरूप जो काल है वह काल संसार है। ऐसा काल संसार भी इस जीवने पूर्वमें अनन्तबार किया है।

भव संसारमें भव जीवकी कर्म द्वारा प्राप्त अशुद्ध पर्यायको कहते हैं। यह भवसंसार चार प्रकारका है—नारक, देव, तिर्यंच, मनुष्य। देव व नरक गतिमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है व जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है। नरक संसारका स्वरूप यह है कि कोई प्राणी नरककी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी बांधकर नर्कमें नारकी हुआ फिर वह मरके कहीं अन्यत्र पैदा हुआ। जब कभी उतनी ही दश हजार वर्षकी आयु बांधकर फिर नर्कमें पैदा हो तब वह भव गिना जावे। इस तरह दश हजार वर्षके जितने समय हैं उतनी बार दश हजार वर्षकी आयुधारी नारकी होता रहे, फिर एक समय अधिक दश हजार वर्ष धारी नारकी हो। फिर दो समय अधिक, इसतरह

एक एक समय अधिककी आयु क्रमसे धारकर नारकी जन्मे, बीचमें कम व अधिक धारकर जो जन्मे तो गणनामें नहीं आवे। इस तरह नरककी तेतीस सागरकी आयु नरक भव ले लेकर पूर्ण करे। तब एक नरक भव संसारका काल हो। इसी तरह देवगतिमें दश हजारकी आयुधारी देव हो। फिर नरकके समान ही क्रमसे जन्मे, उत्कृष्ट इकतीस सागर तक पूर्ण करे तब एक देव भव संसार हो। क्योंकि नोग्रैवेयिकसे ऊपर सम्यग्दृष्टी ही जाते हैं! इसी तरह तिर्यंच गतिमें जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्तका धारी तिर्यंच हो। फिर जितने समय अंतर्मुहूर्तके है उतनीवार उतनी आयुधारी तिर्यंच हो, फिर एक समय अधिक आयु पाकर तीन पल्यतक क्रमसे आयु पावे। तब एक तिर्यंच भव परिवर्तन हो। इसी तरह मनुष्य भव संसारका स्वरूप है। चारों भव संसारोंका समूहरूप काक भव संसार है। नित्य निगोद जीवको छोडकर और सब संसारी जीवोंने इस भव संसारको भी अनंतवार किया है।

भाव संसारको कहते हैं–जीवके परिणामको भाव कहते हैं। वह भाव शुद्ध व अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है। संसारी जीवके ज्ञानावरणादि कर्मके विपाकसे जो भाव होता है वह अशुद्ध भाव है। सर्व कर्मोंके क्षय होनेपर जीवका निश्चल जो शुद्ध परिणाम है वह शुद्ध भाव है, जैसे अतीन्द्रिय सुख। कर्म सहित होनेसे अशुद्ध भावोंमें ही भावोंका परिवर्तन होता है, शुद्ध भावमें नहीं होता है। क्योंकि वह स्वाभाविक है। जैसे गधेके सींग नहीं होते हैं। कर्मोंकी

स्थिति बंधको कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यव-साय स्थान या कषाय स्थान होते हैं। इसी तरह कर्मोंमें अनुभागको कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान या कषाय स्थान होते हैं। जगत् श्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र योगस्थान होते हैं। उन सबके अविभाग प्रतिच्छेदकी अपेक्षा अनंत भेद होते हैं, उन भेदोंके चार भेद होते हैं—उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अज-घन्य। जघन्य योगस्थानसे लेकर क्रमसे उत्कृष्ट योगस्थान तक योगस्थान पूर्ण होजावे तब एक जघन्य अनुभागाध्यवसाय स्थान पूर्ण हुआ गिनना चाहिये। इसतरह फिर क्रमसे योगस्थान होजावे तब दूसरा अनुभाग स्थान पूर्ण हुआ। इसतरह सर्व अनुभाग स्थान भी पूर्ण होजावे तब जघन्य स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान पूर्ण हुआ। इसतरह फिर योगस्थानको क्रमसे पूर्ण करके अनुभाग स्थान क्रमसे पूर्ण करे तब दूसरा स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान पूर्ण हो। इसतरह जघन्य स्थितिको कारण सर्व स्थिति बन्धध्यवसायस्थान पूर्ण होजावे तब जघन्यके एक समय अधिक स्थितिके लिये ऐसा ही क्रम हो, इस तरह हरएक कर्मकी जघन्यसे उत्कृष्ट स्थितिके लिये योगस्थान, अनु-भाग स्थल व स्थिति बंधाध्यवमायस्थान पूर्ण किये जावें। नित्य निगोदको छोड़कर भव संसारके समान भाव संसार भी अज्ञानी जीवोंने अनंतवार किया है। इसतरह पांच प्रकार संसारका स्वरूप समझकर मोक्ष–सुखके अर्थीको संसार रहित अपने आत्माकी आराधना मन, वचन, कायसे करनी योग्य है।

एकत्व भावना।

यह जीव द्रव्यके स्वभावकी अपेक्षा अनादि अनन्त एक ही स्वयं अकेला है, पर्यायोंकी अपेक्षा अनंत रूप होकर भी चैतन्य स्वरूपकी अपेक्षा एक ही है। यह अज्ञानी जीव मोह कर्मसे घिरा हुआ एकाकी ही इस लोकमें ऊर्ध, मध्य, पाताल, तीनों लोकमें भ्रमण किया करता है। कभी नर्कमें जाता है, वहां भी अकेला दुःख सहता है, कोई भी नर्कमें क्षणमात्रके लिये सहाई नहीं होता है। कभी पुण्यके उदयसे स्वर्गमें जाता है वहां भी अकेला ही स्वर्गके सुख भोगता है। ऐसा ही तिर्यंचगतिमें सहायरहित जन्मता है। ऐसा ही मनुष्यगतिमें पैदा होता है व अकेला ही मरता है। पुत्र पौत्र आदि, मित्र, बन्धु, सज्जन स्त्री आदि कोई भी किसी जीवके साथ नहीं जाता है। त्रस स्थावर कायोंकी नानाप्रकार लाखों योनियोंमें यह प्राणी अकेला भ्रमण करता हुआ नाना क्लेशोंको उठाता है, कोई कहीं क्षणमात्र भी दुःखको बांट नहीं सक्ता है। यह जीव अकेला ही तपरूपी खड्गसे कर्मशत्रुओंका नाश जब पुरुषार्थ द्वारा कर डालता है तब अकेला ही केवलज्ञान लक्ष्मीको पाकर निर्भय परमात्म पदका भागी होता है। इस तरह संसार व मोक्ष दोनों अवस्थाओंमें जीवको अकेला ही समझकर सावधान होकर अनन्त सुख स्वरूप मोक्षको ग्रहण करना चाहिये।

अन्यत्व भावना।

इस जीवसे जब नाशवंत शरीरका ही लक्षण भिन्न है तब

शरीरके सम्बन्धी पुत्र आदि अपने कैसे होसक्ते हैं ? इस जीवके स्वभावसे निश्चय करके पांच इन्द्रियें व मन, वचन, काय सब भिन्न हैं। क्योंकि इनकी उत्पत्ति कर्मके उदयसे होती है। जो ये रागादि विभाव चैतन्य सरीखे दीखते हैं, ये भी मोहनीय कर्मके उदयसे होनेवाले भाव निश्चयसे शुद्ध चैतन्य स्वरूपसे भिन्न हैं। इसी तरह कर्मोंके उदयसे होनेवाले जीव समास, गुणस्थान, बन्धस्थान, योग-स्थान सब इस आत्माके स्वभावसे सर्वथा भिन्न हैं। बन्धके कारण भूत कषायके अध्यवसाय स्थान भी शुद्ध आत्माके स्वरूपसे भिन्न हैं। दोनोंका लक्षण भिन्न २ है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल, पुद्गल, जीव आदि अनन्त जानने योग्य परपदार्थ हैं। वे उस जीवके ज्ञानमें झलकते हैं तथापि उनका द्रव्य क्षेत्र कालभाव इस अपने आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे भिन्न है। मूर्तीक द्रव्यके परमाणु कर्म नोकर्म रूपसे व अन्यरूपसे जहां जीवके प्रदेश हैं वहां अनंत हैं तथापि ज्ञानस्वभावी आत्मासे सब अन्य हैं। वर्ग-रूप परमाणु व उनसे बनी हुई तेईस जातिकी वर्गणाएं वर्गणाओंके स्पर्द्धक, स्पर्द्धकोंकी गुण हानियां ये सब अपनी आत्मासे भिन्न हैं। ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्म व उनके असंख्यात भेद व सर्व प्रकारके नोकर्म अपनी आत्माके चैतन्य स्वरूपसे भिन्न हैं। इसीतरह कर्मसे होनेवाले मतिज्ञानादि क्षयोपशमिक भाव भी निश्चयसे इस जीवके कोई नहीं है। बहुत अधिक क्या कहें, एक चैतन्य मात्र आत्माको छोड़कर सब ही पर हैं, कोई भी पर उपादेय नहीं है।

जो कोई भेदविज्ञानी महात्मा सर्व अन्यको अन्य जानकर केवल अपने आत्माकी ही शरणमें जाता है वह शीघ्र ही अपने लिये साध-नेयोग्य मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

अशुचित्व भावना।

हमारा यह शरीर सर्वांग अशुचि है। इसकी उत्पत्ति शुक्र-शोणित पूर्ण योनिसे है। ये भीतर रुधिर मांस चरबीसे भरा हुआ मल मूत्रसे पूर्ण है। चर्मसे बन्धे हुए हड्डीके पिंजर हैं।

हे भाई! इस शरीरको भयानक, नाशवंत व संतापकारी समझो। यह शरीर ऐसा अपवित्र है कि संसारमें जो जो वस्तु स्वभावसे सुन्दर व पवित्र है वह सब इस शरीरके संयोगसे क्षणमात्रमें अपवित्र होजाती है। जैसे पानीमें शैवाल है जिससे पानी मैला दीखता है, परन्तु पानी शैवालसे भिन्न है। वैसे ही सर्व ही रागादि भाव मोह जनित हैं, ये स्वयं अपवित्र हैं। इसके संयोगसे आत्मा मैला झलकता है। मिथ्या दर्शनरूपी मलसे दूषित स्वर्गके देवोंको भी रागादिके होनेके कारण पवित्रपना नहीं है। इसलिये परम पवित्र तो एक चैतन्य स्वभावी अमूर्तीक शुद्धात्मा है, जो अनन्त गुणमई है व तीनों कालोंमें भी साक्षात् पवित्र है। अथवा दोष रहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र पवित्र है। इसलिये बुद्धि-मानोंको उचित है कि सर्व प्रकारकी अन्तरङ्ग व बहिरंग अशुचिको छोड़कर एक शुचि पदार्थको ग्रहण करना चाहिये। वह शुचि पदार्थ एक चैतन्य लक्षण अपना आत्मा है।

आस्रव भावना।

आस्रवके दो भेद हैं–भाव आस्रव, द्रव्य आस्रव। कर्मोंका आना द्रव्यास्रव है। कर्मोंके आनेके कारण रागादिक भाव भावास्रव हैं। भावास्रवके भेद जिनेन्द्र भगवानने मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय तथा योगको कहा है। इन्हीं भावोंके द्वारा संसारी जीवोंके उसीतरह कर्म पुद्गल आते हैं, जिस तरह जलके बीचमें स्थित छिद्र रहित नावमें जल आता है। तत्वार्थोंका श्रद्धान न होना व औरका और श्रद्धान करना मिथ्यात्व है। आचार्योंने कहा है–उसके अनेक भेद हैं। सामान्यसे मिथ्यात्व एक प्रकारका है। विशेषसे उसके पांच भेद हैं, अथवा असंख्यात लोक मात्र मिथ्यात्वभाव संबंधी अध्यवसाय है। पांच भेद–एकांत, विपरीत, विनय, संशय व अज्ञान है। इनका स्वरूप परमागमसे जानना चाहिये। बुद्धिके अगोचर सूक्ष्म भाव असंख्यात लोक प्रमाण है। जो आत्माको कषन करे, मलीन करे, उनको कषाय कहते हैं। चारित्र मोहनीयके उदयसे होनेवाले कषाय भाव पच्चीस प्रकारके हैं–चार अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, चार अप्रत्याख्यान क्रोधादि, चार प्रत्याख्यान क्रोधादि, चार संज्वलन क्रोधादि, सर्व मिलके षोडश कषाय हैं। नव नोकषाय या ईषत् कषाय हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुँसक वेद, ये सर्व पच्चीस कषाय महान अनर्थ करनेवाले भाव कर्मोंके आस्रवके द्वार हैं। अविरति भाव बारह हैं, वे यद्यपि कषायोंमें गर्भित हैं तथापि भिन्न भी कहे गये हैं। पांच इन्द्रिय व मनका वश न रखना। छः अविरति भाव ये हैं–पांच प्रकार स्थावर

एक त्रस इसतरह छः प्रकार प्राणियोंके प्राणोंकी हिंसा करना। छः ये हैं—

स्वानुभूतिको धर्म कहते हैं। जिससे स्वानुभूतिमें असावधानी होजावे उसको प्रमाद कहते हैं। धर्मः स्वात्मानुभूत्याख्या प्रमादो नवधानता। यह कर्मास्रवका द्वार पन्द्रह प्रकारका है। चार विकथा स्त्री, भोजन, देश व राजा। उनके साथ चार कषाय व पांच इन्द्रिय निद्रा व स्नेह। इनके गुणा करनेसे प्रमादके अस्सी भेद होते हैं। मन, वचन, कायकी वर्गणाओंके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंद होना—हिलना, सो योग तीन प्रकारका है। इनके भेद पन्द्रह हैं—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, मनयोग तथा सत्यादि वचन योग व सात प्रकार काय योग, औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्मण। सब मिलके आस्रव भाव सत्तावन हैं। ५ मिथ्यात्व + १२ अविरत + २५ कषाय + १५ योग = ५७ इनका विशेष स्वरूप गोम्मटसारादि ग्रंथोंसे जानना योग्य है। कर्म स्वरूपसे एक प्रकार है। द्रव्य कर्म व भावकर्मके भेदसे दो प्रकार है। द्रव्यकर्म आठ प्रकार व एकसौ अड़तालीस प्रकार है या असंख्यात लोक प्रकार है। शक्तिकी अपेक्षा उनके भेद उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य। यह सब कथन परमागमसे जानना योग्य है।

संवर भावना।

निश्चयसे सर्व ही आस्रव त्यागने योग्य हैं। आस्रव रहित एक अपना आत्मा शुद्धात्मानुभूति रूपसे ग्रहण करने योग्य है।

आचार्योंने आस्रवके निरोधको संवर कहा है। उसके दो भेद हैं--द्रव्यास्रव और भावास्रव। जितने अंशमें सम्यग्दृष्टियोंके कषायोंका निग्रह है उतने अंशमें भाव संवर जानना योग्य है। कहा है--

येनांशेन कषायाणां निग्रहः स्यात्सुदृष्टिनाम्।
तेनांशेन प्रयुज्येत संवरो भावसंज्ञकः॥ ११३॥

भावार्थ--भाव संवरके विशेष भेद पांच व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जय व पांच प्रकार चारित्र है।

रागादि भावोंके न होनेपर जितने अंश कर्मोंका आस्रव नहीं होता है उतने अंश द्रव्यसंवर कहा जाता है। मोक्षका साधन संवरसे होता है। अतएव इसका सेवन सदा करना चाहिये। निश्चयसे भाव संवरका अविनाभावी शुद्ध चैतन्य भावका अनुभव है सो सदा कर्तव्य है।

निर्जरा भावना।

निर्जरा भी दो प्रकारकी है--भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा। द्रव्य निर्जरा सम्यग्दृष्टीसे लेकर जिन पर्यंत ग्यारह स्थानोंके द्वारा असंख्यात गुणी भी कही गई है। जिस आत्माके शुद्ध भावसे पूर्वबद्ध कर्म शीघ्र अपने रसको सुखाकर झड़ जाते हैं उस शुद्ध भावको भाव निर्जरा कहते हैं। आत्माके शुद्ध भावके द्वारा तपके अतिशयसे भी जो पूर्वबद्ध द्रव्यकर्मोंका पतन होना सो द्रव्य निर्जरा है।

जो कर्म अपनी स्थितिके पाक समयमें रस देकर झडते हैं वह सविपाक निर्जरा है। यह सर्व जीवोंमें हुआ करती है। यह

सविपाक निर्जरा मिथ्यादृष्टियोंके बंधपूर्वक होती है। क्योंकि तब मोहका उदय होता है। इसलिये यह निर्जरा मोक्षसाधक नहीं है। सम्यग्दृष्टियोंके सविपाक या अविपाक निर्जरा संवर पूर्वक होती है। यह मोक्षकी साधक है। ऐसी निर्जरा मिथ्यादृष्टियोंके कभी नहीं होती है। कहा है–

इयं मिथ्यादृशामेव यदा स्याद्वंधपूर्विका।
मुक्तये न तदा ज्ञेया मोहोदयपुरःसरा॥ १३०॥
सविपाका विपाका वा सा स्यात्संवरपूर्विका।
निर्जरा सुदृशामेव नापि मिथ्यादृशां क्वचित्॥१३१॥

मोक्षकी सिद्धि चाहनेवालोंको उचित है कि निर्जराका लक्षण जानकर उस निर्जराके लिये सर्व प्रकार उद्यम करके शुद्धात्माका आराधन करें।

लोक भावना।

इस छः द्रव्योंसे भरे लोकके तीन भाग हैं–नीचे वेत्रासन या मोढेके आकार है। मध्यमें झालरके समान है, ऊपर मृदंगके समान है, अधोलोकमें सात नरक हैं जिनमें नारकी जीव पापके उदयसे छेदनादिके घोर दुःख सहन करते हैं। कोई जीव पुण्यके उदयसे ऊर्द्धलोकमें स्वर्गोंमें पैदा होकर सागरोंतक सुख सम्पदाको भोगते हैं। मध्यलोकमें तिर्यंच व मनुष्य होकर पुण्य व पापके उदयसे कभी सुख कभी दुःख दोनों भोगते हैं। लोकके अग्रभागके ऊपर मनुष्य लोकके ढ ईद्वीप प्रमाण पैतालीस लाख योजन चौड़ा सिद्धक्षेत्र

है, जहां अनन्त सुखको भोगते हुए सिद्ध परमात्मा बसते हैं। इस तरह तीन लोकका स्वरूप जानकर महाऋषिगण मोहको क्षयकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई मार्गके द्वारा लोकके ऊपर जो सिद्धालय है उसमें जानेका साधन करते हैं।

बोधिदुर्लभ भावना।

एकाग्रमन होकर आत्माका अनुभव करना सो बोधि है, इस बोधिका लाभ जीवोंको बहुत दुर्लभ है यह विचारना बोधि दुर्लभ भावना है। अनादि नित्य निगोदरूप साधारण वनस्पतियोंमें अनंतानंत जीवोंका नित्य स्थान है। अनन्तकाल रहनेपरभी कोई जब कभी वहांसे निकलते हैं। और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पतिके किसी तरह जन्म प्राप्त करते हैं। नित्यनिगोदके सम्बन्धमें कहा है—

अनंतानंतजीवानां सद्मानादिवनस्पतौ।
निःसरंति ततः केचिद्गतेऽनंतेऽप्यनेहसि ॥ १४० ॥

भावार्थ—अशुभ कर्मोंके कम होनेपर व अज्ञान अंधकारके कुछ मिटनेपर एकेन्द्रियसे निकलकर द्वेन्द्रियादि तिर्यंच होते हैं उनमें पर्याप्तपना पाना बहुत कठिन है। प्रायः अपर्याप्त जीव बहुत होते हैं जो एक श्वास (नाड़ी) के अठारहवें भाग आयुको पाकर मरते हैं। इनमें भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच होना बहुत कठिन है। असैनी पंचेन्द्रियसे सैनी पंचेंद्रिय फिर मनुष्य होना बहुत दुर्लभ है। कदाचित् कोई मनुष्य भी हुआ तब आर्यखण्डमें जन्मना कठिन है। आर्यखण्डमें

उच्च कुलमें जन्मना जहां जैनधर्मका समागम हो बहुत कठिन है। जैन कुलमें जन्म लेकर दीर्घ आयु, शरीरकी निरोग्यता पाना बहुत दुर्लभ है। ये सब कठिनतासे पानेवाली बातें पुण्योदयसे मिल जावें तौभी विषयोंमें अंधपना होजाना सहज है। धर्मकी ओर बुद्धिका होना कठिन है। धर्मबुद्धि भी कदाचित् प्राप्त हुई तो धर्ममें प्रवीणपना होना दुर्लभ है। धर्ममें निपुणता होनेपर भी गुरुका उपदेश मिलना कठिन है। गुरुका उपदेश मिलनेपर भी कषायोंका निरोध अति दुर्लभ है। कषाय निरोध होनेपर भी कर्मोंका नाश करनेवाला संयमका लाभ कठिन है। संयमका लाभ होनेपर भी काललब्धिके वशसे शुद्ध चैतन्यका अनुभव होना अतिशय दुर्लभ है। क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, चार लब्धि तो कईवार पाईं, करणलब्धिका पाना कठिन है। जो अवश्य सम्यक्तको उत्पन्न कर देती है। तात्पर्य यह है कि परमार्थकी इच्छा करनेवालोंको दुर्लभ स्वानुभूतिके प्राप्त होजानेपर फिर स्वानुभवके भवनमें प्रमाद कभी नहीं करना चाहिये।

धर्म भावना।

धर्म शब्दके अनेक अर्थ हैं, तौभी एक अर्थमें लिया जावे तो यह कहा जायगा कि जो जीवको नीचपदसे निकालकर उच्चपदमें धारण करे वह धर्म है। निश्चयसे धर्म आत्मवस्तुका स्वभाव है। वह धर्म साम्यभावमें स्थित चिदात्माका शुद्ध चारित्र है। इसीसे कर्मोंका क्षय होसक्ता है। कहा है—

धर्मो वस्तुस्वभावः स्यात्कर्मनिर्मूलनक्षमः ।
तच्चैव शुद्धचारित्रं साम्यभावचिदात्मनः ॥ १५४ ॥

भावार्थ-व्यवहार नयसे संयमका पालन धर्म है, जिनका मूल सर्व प्राणीमात्रपर दयाभाव है तथा शील सहित तप है। यह धर्म आश्रयके भेदसे दो प्रकारका है-एक साधुका दूसरा गृहस्थका। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके भेदसे तीन प्रकारका है। दशलक्षणके भेदसे दश प्रकारका है। वे दशलक्षण हैं:-उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य।

धर्म इस लोक व परलोकमें खर्ची या पाथेय है, सदा सहायक है, नित्य उपकार करनेवाला है। यही प्राणियोंका सच्चा पिता है, सच्ची माता है, सच्चा बन्धु है, सच्चा देव है। ऐसा मानकर बुद्धिमानोंको सदा धर्मसाधनमें बुद्धि रखनी चाहिये। कभी भी संतोषी होकर धर्मसाधन रोकना न चाहिये। प्राणियोंके लिये धर्म विना सर्व दिशाएं शून्य हैं। ऐसा जानकर सावधान हो सदा अपना हित करना चाहिये।

इसतरह विद्युच्चर साधु व अन्य साधु बारह भावनाओंको चिन्तवन करते थे, जब उनपर घोर उपसर्ग होरहा था। देहसे भिन्न मेरा चैतन्यमई आत्मा है जो केवल स्वानुभवगोचर है, इस भावनाके बलसे विद्युच्चर मुनिने सर्व परिषहोंको जीत लिया। उपसर्ग दूर

होनेपर मुनिराज ऐसे सोहने लगे जैसे मेघरहित तेजस्वी सूर्य सोहे। प्रातःकाल होते होते सन्यासविधिके अंतमें चार प्रकार आराधना आराधके मुनिराजका आत्मा शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिंद्र उत्पन्न हुआ। वहां तेईस सागरकी बड़ी आयु है।

तबतक अहमिन्द्र पदमें वह जीव निरंतर वचन अगोचर सुख भोगते हैं, जो अल्प पुण्यवालोंको दुर्लभ है। वहांसे च्युत होकर अंतिम शरीर पाकर केवलज्ञानको प्राप्त कर वे परम गतिको पहुंचेंगे अनंत सुखमई, अनंत वीर्यमई व केवलज्ञानमई शुद्धात्मारूपी सूर्यको वारवार नमस्कार हो।

प्रभव आदि पांचसौ मुनीश्वर भी सन्यास मरण करके परिणामोंके अनुसार यथायोग्य स्वर्गमें जाकर देव हुए।

मुझ तुच्छ बुद्धि (राजमल्ल) ने इस जंबूस्वामी जिनेन्द्रके उत्तम चरित्रको जैनागमके अनुसार कहा है। हे जगत् वंद्य सरस्वती माता! यदि प्रमादसे स्वर, व्यंजन, संधि आदिमें कोई भूल होगई हो तो क्षमा करना उचित है। शास्त्र समुद्र अपार है, परम गंभीर है, दुस्तर है। पृथ्वीमें बड़ा भारी विद्वान हो, वह भी भूल कर सकता है।

जो कोई भव्यजीव इस मुनिवर श्री जंबुस्वामी महाराजके समान ऐसा तप करेगा, जो तप पांच इन्द्रियरूपी शत्रुके विशाल कामभावरूपी भयानक वनको जलानेको दावानलके समान है वह परम सुखका भाजन होगा, ऐसा जानकर बुद्धिमानोंको रातदिन

अपने ऊपर दयावान हो चित्तमें तपकी भावना करनी चाहिये। यदि मोक्षके उत्तम सुखकी वांछा है तो प्रमाद न करना चाहिये।

जो कोई इस श्री जम्बूस्वामी मुनिराजके नाना चित्र विचित्र कथाओंसे विभूषित व ज्ञानप्रद चरित्रको सुनेंगे उनको बहुत पुण्य कर्मका बन्ध होता, बुद्धि स्वयं बढ़ेगी, वे सर्व सांसारिक सुखकी आशाको छोड़कर शीघ्र धर्मात्मा होजांयगे। यह चरित्र रोमांचजनक है। मुनिराजोंको भी पढ़ना या पढ़ाना चाहिये। हे सरस्वतीदेवी! यदि मैंने प्रमादसे व अज्ञानसे कुछ कम व अधिक कहा हो तो तू मुझे क्षमा प्रदान करना। श्री वीर भगवानके पीछे अंतिम केवली श्री जम्बूस्वामी जिनराज हुए हैं। हे भव्यजीवो! वे तुम सबको सदा मंगलकारी हों।

इसतरह श्री वीर भगवानके उपदेशके अनुसार स्याद्वाद निर्दोष गद्य पद्य विद्यामें विशारद पंडित राजमलने साधुपासाके पुत्र साधु टोडरकी प्रार्थना करनेसे यह श्री जम्बूस्वामी चरित्र रचा है

टीका समाप्त की दाहोद पंचमहल गुजरातमें, दिगम्बर जैन धर्मशालामें, भादों सुदी १४ रविवार वीर सं० २४६३ वि० सं० १९९३ ता० ४ सितम्बर १९३७ ई० को।

तत्वप्रेमी–ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जैन।

संस्कृत ग्रन्थकारकी लिखित प्रशस्तिका भाव।

विक्रम संवत १६३२ चैत्र सुदी ८ पुनर्वसु नक्षत्रमें जब अर्गलपुर या आगरेके किलेमें पातिसाह जलालुद्दीन अकबर शाहका राज्य था। तब काष्ठासंघ माथुरगच्छमें पुष्करगणमें लोहाचार्यके अन्वयी भट्टारक श्रीमलयकीर्तिदेवके पदपर भ० गुणभद्र और उनके पदपर श्रीभानुकीर्ति तथा उनके पदपर भट्टारक श्री कुमारसेन हुए हैं, उनकी आम्नायमें अगरवाल जाति गर्ग गोत्रधारी भटानिया-कोलके निवासी श्रावक साधु श्रीनन्दन उनके भ्राता साधु श्री आसू उसकी स्त्री सरो उसके तीन पुत्र हुए। बड़े पुत्र साहू रूपचन्द भार्या जिनमती, उनके पुत्र भी तीन, प्रथम पुत्र साधु जसरथ भार्या गावो व उसके भी पुत्र तीन, प्रथम पुत्र साह लोरचन्द भार्या प्यारी, इसके पुत्र साह गरीबदास भार्या हमीरदे। इसके पुत्र पांच प्रथम साह हेमराज, भार्या...., साह जसरथके दूसरे पुत्र साधु श्रीछल्लू भार्या भवानी उसके पुत्र साधु भोजसाल भार्या बूवो, साह जसरथके तीसरे पुत्र साधु चौहथ भार्या भागमती, उसके पुत्र दो, प्रथम साधु भोवाल भार्या पारो, पुत्र लालचन्द।

साधु चौहथके दूसरे पुत्र जारपदास भार्या...., साधु रूपचंदके

दूसरा पुत्र साधु रायमल भार्या चिरो, पुत्र साह नथमल भार्

चांदनदे। साधु रूपचन्दके तृतीय पुत्र साधु श्रीपासा भार्या घो

पुत्र साधु टोडर, भार्या कसूँभी, पुत्र तीन प्रथम साधु श्री ऋषभ

भार्या कालमती दूसरे पुत्र मोहनदास भार्या मधुरी, तीसरे

चिरंजीवी रूपमांगद। इन सबके मध्यमें परम श्रावक साधु श्री टोड

जंबूस्वामी चरित्र लिखवाया व करवाया व कर्मक्षयके नि

लिखवाया। लिखा गंगादासने।

हिन्दी टीकाकारकी प्रशस्ति ।

मंगल श्री अरहंत हैं, मंगल सिद्ध महान ।
आचारज उवझाय मुनि, मंगलमय सुखदान ॥ १ ॥
युक्तप्रांत लखनौ नगर, अग्रवाल कुल जान ।
मंगलसेन महागुणी, जिनधर्मी मतिमान ॥ २ ॥
जिन सुत मक्खनलालजी, गृही धर्ममें लीन ।
तृतीय पुत्र सीतल यही, जैनागम रुचिकीन ॥ ३ ॥
विक्रम उन्निस पैतिसे, जन्म सु कार्तिक मास ।
बत्तिसवय अनुमानमें, घरसे भयो उदास ॥ ४ ॥
श्रावक धर्म सम्हालते, विहरे भारत ग्राम ।
उन्निससै तैरानके, दाहोदे विश्राम ॥ ५ ॥
शत घर जैन दिगंबरी, दसा हूमड़ जाति ।
त्रय मंदिर उत्तम लसै, शिखरबंद बहु भांति ॥ ६ ॥
नसियां लसत सुहावनी, शाला बाला बाल ।
सन्तोषचन्द जीतमल, लुणानी चुन्नीलाल ॥ ७ ॥
सूरजमल औ राजमल, उच्छवलाल सुजान ।
पन्नालाल चतुर्भुज, आदि धर्मिजन जान ॥ ८ ॥

सुखसे वर्षाकालमें, ठहरा शाला धर्म।
ग्रन्थ कियो पूरण यहां, मंगलदायक पर्म ॥ ९ ॥
वीर चौवीस त्रेसठे, भादव चौदश शुक्र।
रवि दिन संपूरण भयो, वंदू श्री जिन शुक्र ॥ १० ।
विद्वानोंसे प्रार्थना, टीकामें हो भूल।
क्षमाभाव धर शोधियो, देखो संस्कृत मूल ॥ ११ ।

वीरभक्त–ब्र० सीतल।